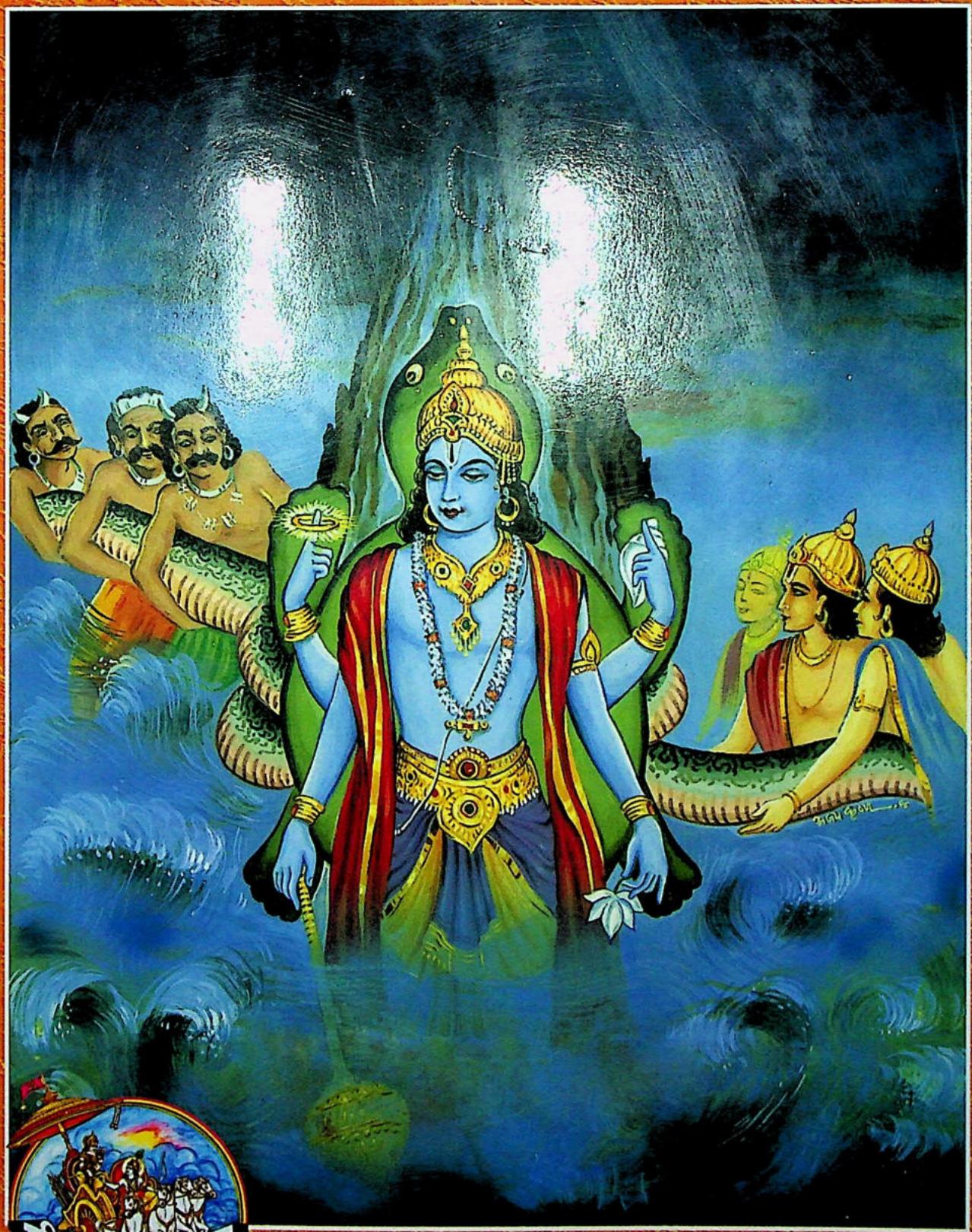


# कूर्मपुराण

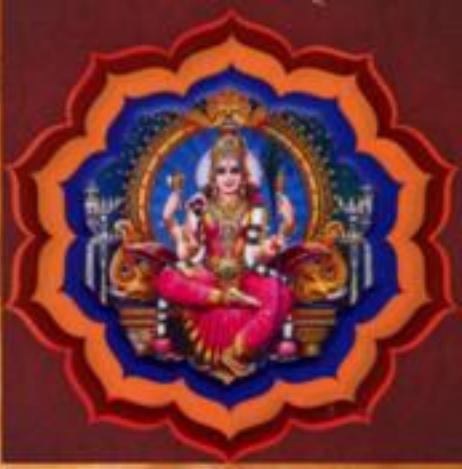
[ सचित्र, हिन्दी-अनुवादसहित ]



GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

In Public Domain. Digitized by Sarvagya Sharda Peeth

गीताप्रेस, गोरखपुर

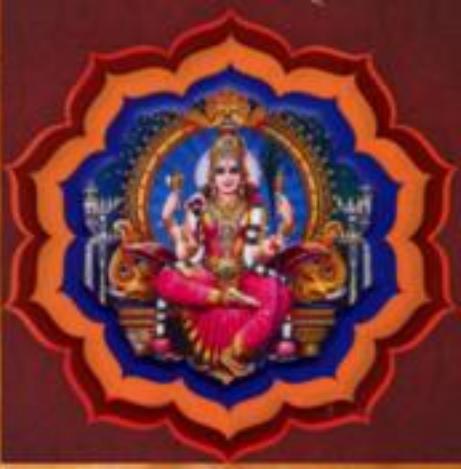


**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with  
By  
  
**Avinash/Shashi**

I creator of  
hinduism  
server!



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with  
By  
  
**Avinash/Shashi**

I creator of  
hinduism  
server!

॥ श्रीहरि ॥

1131

# कूर्मपुराण

(सचिव, हिन्दी-अनुवादसंहित)



गीताप्रेस, गोरखपुर



# कूर्मपुराण

( सचित्र, हिन्दी-अनुवादसहित )

त्वमेव माता च पिता त्वमेव  
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।  
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव  
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०७५ दसवाँ पुनर्मुद्रण ₹,०००  
कुल मुद्रण ₹५,५००

❖ मूल्य—₹ १५०  
( एक सौ पचास रुपये )

प्रकाशक एवं मुद्रक—

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

( गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान )

फोन : ( ०५५१ ) २३३४७२१, २३३१२५०, २३३१२५१

web : [gitapress.org](http://gitapress.org) e-mail : [booksales@gitapress.org](mailto:booksales@gitapress.org)

गीताप्रेस प्रकाशन [gitapressbookshop.in](http://gitapressbookshop.in) से online खरीदें।

## नम्र निवेदन

पुराण भारतीय संस्कृतिकी अमूल्य निधि है। यह एक ऐसा विश्वकोश है, जिसमें धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक आदि सभी विषय अति सरल एवं सुगम भाषामें वर्णित हैं। वेदोंमें वर्णित विषयोंका रहस्य पुराणोंमें रोचक उपाख्यानोंके द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसीलिये इतिहास-पुराणोंके द्वारा वेदोपबृंहणका विधान किया गया है। पुराणोंके परिज्ञानके बिना वेद, वेदाङ्ग एवं उपनिषदोंका ज्ञाता भी ज्ञानवान् नहीं माना गया है। इससे पुराण-सम्बन्धी ज्ञानकी आवश्यकता और महत्ता परिलक्षित होती है।

महापुराणोंकी सूचीमें पंद्रहवें पुराणके रूपमें परिणित कूर्मपुराणका विशेष महत्त्व है। सर्वप्रथम भगवान् विष्णुने कूर्म अवतार धारण करके इस पुराणको राजा इन्द्रद्युम्नको सुनाया था, पुनः भगवान् कूर्मने उसी कथानकको समुद्र-मन्थनके समय इन्द्रादि देवताओं तथा नारदादि ऋषिगणोंसे कहा। तीसरी बार नैमित्तारण्यके द्वादशवर्षीय महासत्रके अवसरपर रोमहर्षण सूतके द्वारा इस पवित्र पुराणको सुननेका सौभाग्य अट्ठासी हजार ऋषियोंको प्राप्त हुआ। भगवान् कूर्मके द्वारा कथित होनेके कारण ही इस पुराणका नाम कूर्मपुराण विख्यात हुआ।

रोमहर्षण सूत तथा शौनकादि ऋषियोंके संवादके रूपमें आरम्भ होनेवाले इस पुराणमें सर्वप्रथम सूतजीने पुराण-लक्षण एवं अठारह महापुराणों तथा उपपुराणोंके नामोंका परिणामन करते हुए भगवान्‌के कूर्मावतारकी कथाका सरस विवेचन किया है। कूर्मावतारके ही प्रसंगमें लक्ष्मीकी उत्पत्ति और माहात्म्य, लक्ष्मी तथा इन्द्रद्युम्नका वृत्तान्त, इन्द्रद्युम्नके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति, वर्ण, आश्रम और उनके कर्तव्यका वर्णन तथा परब्रह्मके रूपमें शिवतत्त्वका प्रतिपादन किया गया है। तदनन्तर सृष्टिवर्णन, कल्प, मन्वन्तर तथा युगोंकी काल-गणना, वराहावतारकी कथा, शिवपार्वती-चरित्र, योगशास्त्र, वामनावतारकी कथा, सूर्य-चन्द्रवंशवर्णन, अनसूयाकी संतति-वर्णन तथा यदुवंशके वर्णनमें भगवान् श्रीकृष्णके मंगलमय चरित्रिका सुन्दर निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें श्रीकृष्णके द्वारा शिवकी तपस्या तथा उनकी कृपासे साम्बनामक पुत्रकी प्राप्ति, लिङ्गमाहात्म्य, चारों युगोंका स्वभाव तथा युगधर्म-वर्णन, मोक्षके साधन, ग्रह-नक्षत्रोंका वर्णन, तीर्थ-माहात्म्य, विष्णु-माहात्म्य, वैवस्वत मन्वन्तरके २८ द्वापरयुगोंके २८ व्यासोंका उल्लेख, शिवके अवतारोंका वर्णन, भावी मन्वन्तरोंके नाम, ईश्वरगीता, व्यासगीता तथा कूर्मपुराणके फलश्रुतिकी सरस प्रस्तुति है। हिन्दूधर्मके तीन मुख्य सम्प्रदायों—वैष्णव, शैव एवं शाक्तके अद्वृत सम्बन्धके साथ इस पुराणमें त्रिदेवोंकी एकता, शक्ति-शक्तिमानमें अभेद तथा विष्णु एवं शिवमें परमैक्यका सुन्दर प्रतिपादन किया गया है।

'कल्याण' वर्ष ७१के विशेषाङ्कके रूपमें पूर्व प्रकाशित इस पुराणके विषय-वस्तुकी उपयोगिता एवं पाठकोंके आग्रहको दृष्टिगत रखते हुए अब इसको पुराणके रूपमें सानुवाद प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। आशा है, प्रेमी पाठक गीताप्रेससे प्रकाशित अन्य पुराणोंकी भाँति इस पुराणको भी अपने अध्ययन-मनन तथा संग्रहका विषय बनाकर हमारे श्रमको सार्थक करेंगे।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरि: ॥

## विषय-सूची ( पूर्वविभाग )

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-	सूतजीकी उत्पत्ति, उनके रोमहर्षण नाम पड़नेका कारण, पुराणों तथा उपपुराणोंका नाम-परिगणन, समुद्र-मन्थनसे उत्पन्न विष्णुमायाका वर्णन, इन्द्रद्युम्नका आख्यान और कूर्मपुराणकी महिमा .....	११		उनका विवाह, धर्म तथा अधर्मकी संतानोंका विवरण .....	५०
२-	विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माका प्रादुर्भाव, रुद्र तथा लक्ष्मीका प्राकट्य, ब्रह्माद्वारा नौ मानस पुत्रों तथा चार वर्णोंकी सृष्टि, वेदज्ञानकी महिमा, ब्रह्म-सृष्टिका वर्णन, वर्ण और आश्रमों-के सामान्य तथा विशेष धर्म, गृहस्थाश्रमका माहात्म्य, चतुर्विध पुरुषार्थोंमें धर्मकी महिमा, आश्रमोंका द्वैविध्य, त्रिदेवोंका पूजन, त्रिपुण्ड्र, तिलक तथा भस्म-धारणकी महिमा .....	२२	९-	शेषशायी नारायणकी नाभिसे कमलकी उत्पत्ति तथा उसी कमलसे ब्रह्माका प्राकट्य, विष्णु-मायाद्वारा ब्रह्माका मोहित होकर विष्णुसे विवाद करना, भगवान् शंकरका प्राकट्य, विष्णुद्वारा ब्रह्माको शिवका माहात्म्य बताना, ब्रह्माद्वारा शिवकी स्तुति तथा शिव और विष्णुके एकत्वका प्रतिपादन .....	५२
३-	आश्रमधर्मका वर्णन, संन्यास ग्रहण करनेका क्रम, ब्रह्मार्पणका लक्षण तथा निष्काम-कर्मयोगकी महिमा .....	३२	१०-	विष्णुद्वारा मधु तथा कैटभका वध, नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति तथा उनके द्वारा सनकादिकी सृष्टि, ब्रह्मासे रुद्रकी उत्पत्ति, रुद्रकी अष्टमूर्तियों, आठ नामों तथा आठ पत्नियोंका वर्णन, रुद्रके द्वारा अनेक रुद्रोंकी उत्पत्ति तथा पुनः वैराग्य ग्रहण करना, ब्रह्माद्वारा रुद्रकी स्तुति तथा माहात्म्य-वर्णन, रुद्रद्वारा ब्रह्माको ज्ञानकी प्राप्ति, महादेवका त्रिमूर्तित्व और ब्रह्माद्वारा अनेक प्रकारकी सृष्टि .....	५९
४-	सांख्य-सिद्धान्तके अनुसार ब्रह्माण्डकी सृष्टिका क्रम, पञ्चीकरण-प्रक्रिया तथा परमेश्वरके विविध नामोंका निरूपण .....	३४	११-	सती और पार्वतीका आविर्भाव, देवी-माहात्म्य, हैमवती-माहात्म्य, देवीका अष्टेत्तरसहस्रनाम-स्तोत्र, हिमवान्द्वारा देवीकी स्तुति एवं हिमवान्को देवीद्वारा उपदेश, देवीसहस्रनाम-स्तोत्र-जपका माहात्म्य .....	६६
५-	ब्रह्माजीकी आयुका वर्णन, युग, मन्वन्तर तथा कल्प आदि कालकी गणना, प्राकृत प्रलय तथा कालकी महिमाका वर्णन ...	४०	१२-	महर्षि भृगु, मरीचि, पुलस्त्य तथा अत्रि आदिद्वारा दक्ष-कन्याओंसे उत्पन्न संतान-परम्पराका वर्णन, उनचास अग्नियों, पितरों तथा गङ्गाके प्रादुर्भावका वर्णन .....	८९
६-	'नारायण' नामका निर्वचन, वराहरूपधारी नारायणद्वारा पृथ्वीका उद्घार, सनकादि ऋषियोंद्वारा वराहकी स्तुति .....	४२	१३-	स्वायम्भुव मनुके वंशका वर्णन, चाक्षुष मनुकी उत्पत्ति, महाराज पृथुका आख्यान, पृथुका वंश-वर्णन, पृथुके पौत्र 'सुशील'का रोचक	
७-	नौ प्रकारकी सृष्टि, ब्रह्माजीके मानस पुत्रोंका आविर्भाव, ब्रह्माजीके चारों मुखोंसे चारों देवोंकी उत्पत्ति इत्यादिका वर्णन .....	४४			
८-	सृष्टि-वर्णनमें ब्रह्माजीसे मनु और शतरूपाका प्रादुर्भाव, स्वायम्भुव मनुके वंशका वर्णन, दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंका वर्णन तथा				

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	आख्यान, सुशीलको हिमालयके 'धर्मपद' नामक वनमें महापाशुपत श्वेताश्वतर मुनिके दर्शन तथा उनसे पाशुपत-ब्रतका ग्रहण, दक्षके पूर्वजन्मका वृत्तान्त तथा पुनः दक्ष प्रजापतिके रूपमें आविर्भाविकी कथा, दक्षद्वारा शंकरका अपमान, सतीद्वारा देह-त्याग तथा शंकरका दक्षको शाप.....	११		वर प्राप्त करना, अदितिके गर्भमें विष्णुका प्रवेश, विष्णुका वामनरूपमें आविर्भाव, बलिके यज्ञमें वामनका प्रवेश तथा तीन पग भूमिकी याचना, तीसरे पगसे नापते समय ब्रह्माण्ड-भेदन, गङ्गाकी उत्पत्ति तथा भक्तिका वर प्राप्तकर बलि आदिका पातालमें प्रवेश .....	१२२
१४-	हरिद्वारमें दक्षद्वारा यज्ञका आयोजन, यज्ञमें शंकरका भाग न देखकर महर्षि दधीचद्वारा दक्षकी भर्त्सना तथा यज्ञमें भाग लेनेवाले ब्राह्मणोंको शाप, देवी पार्वतीके कहनेपर शंकरद्वारा रुद्रों, भद्रकाली तथा वीरभद्रको प्रकट करना, वीरभद्राद्वारा दक्षके यज्ञका विध्वंस, शंकर-पार्वतीका यज्ञस्थलमें प्राकट्य, भयभीत दक्षद्वारा शंकर तथा पार्वतीकी स्तुति और वर प्राप्त करना, ब्रह्मद्वारा दक्षको उपदेश और शिव-विष्णुके एकत्वका प्रतिपादन तथा दक्षद्वारा शिवकी शरण ग्रहण करना.....	१६	१७-	बलिपुत्र बाणासुरका वृत्तान्त, दक्ष प्रजापतिकी दनु सुरसा आदि कन्याओंकी संतानोंका वर्णन .....	१२८
१५-	दक्ष-कन्याओंकी संतति, नृसिंहावतार, हिरण्य-कशिपु एवं हिरण्याश्व-वधका वर्णन, पृथ्वीका उद्धार, प्रह्लाद-चरित, गौतमद्वारा दास्वननिवासी मुनियोंको शाप, अन्धकके साथ महादेवका युद्ध एवं महादेवद्वारा अपने स्वरूपका उपदेश, अन्धकद्वारा महादेवकी स्तुति तथा महादेव (शंकर)-द्वारा अन्धकको गाणपत्य-पदकी प्राप्ति, अन्धकद्वारा देवीकी स्तुति और देवीद्वारा अन्धकको पुत्र-रूपमें ग्रहण करना तथा विष्णुद्वारा उत्पन्न माताओंसे अपनी तीनों मूर्तियोंका प्रतिपादन .....	१०४	१८-	महर्षि कश्यप तथा पुलस्त्य आदि ऋषियोंके वंशका वर्णन, रावण तथा कुम्भकर्ण आदिकी उत्पत्ति, वसिष्ठके वंश-वर्णनमें व्यास, शुकदेव आदिकी उत्पत्तिकी कथा, भगवान् शंकरका ही शुकदेवके रूपमें आविर्भूत होना.....	१२९
१६-	सनत्कुमारद्वारा आत्मज्ञान प्राप्तकर प्रह्लाद-पुत्र विरोचनका योगमें संलग्न होना, विरोचन-पुत्र बलिद्वारा देवताओंको पराजित करना, देवमाता अदितिका दुःखी होना तथा विष्णुसे प्रार्थनाकर पुत्ररूपमें उनके उत्पन्न होनेका		१९-	सूर्यवंश-वर्णनमें वैवस्वत मनुकी संतानोंका वर्णन, युवनाश्वको गौतमका उपदेश, महातपस्वी राजा वसुमनाकी कथा, वसुमनाके अश्वमेध-यज्ञमें ऋषियों तथा देवताओंका आगमन, ऋषियोंद्वारा तपस्याकी आज्ञा प्राप्तकर वसुमनाका हिमालयमें जाकर तप करना और अन्तमें उसे शिवपदकी प्राप्ति.....	१३१
			२०-	इक्ष्वाकु-वंश-वर्णनके प्रसंगमें श्रीराम-कथाका प्रतिपादन, श्रीरामद्वारा सेतु-बन्धन और रामेश्वर-लिंगकी स्थापना, शंकर-पार्वतीका प्रकट होकर रामेश्वर-लिंगके माहात्म्यको बतलाना, श्रीरामको लव-कुश पुत्रोंकी प्राप्ति तथा इक्ष्वाकु-वंशके अन्तिम राजाओंका वंश-वर्णन .....	१३७
			२१-	चन्द्रवंशके राजाओंका वृत्तान्त, यदुवंश-वर्णनमें कार्तवीर्यार्जुनके पाँच पुत्रोंका आख्यान, परम विष्णुभक्त राजा जयध्वजकी कथा, विदेह दानवका पराक्रम तथा जयध्वजद्वारा विष्णुके अनुग्रहसे उसका वध, विश्वामित्रद्वारा विष्णुकी आराधनाका जयध्वजको उपदेश करना और	

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२२-	जयध्वजको विष्णुका दर्शन .....	१४१			
	आख्यान, महामुनि कण्वद्वारा दुर्जयको वाराणसीके विश्वेश्वर-लिंगका माहात्म्य बतलाना, दुर्जयका वाराणसी जाकर पाप-मुक्त होना तथा सहस्रजित्-वंशका वर्णन.	१४७			
२३-	यदुवंश-वर्णनमें क्रोष्टुवंशी राजाओंका वृत्तान्त, राजा नवरथकी कथा, सत्त्वतवंश-वर्णनमें अक्रूरकी उत्पत्ति, राजा आनकदुन्दुभिका आख्यान, कंस एवं वसुदेव-देवकीकी उत्पत्ति, वसुदेवका वंश-वर्णन, देवकीके अन्य पुत्रोंकी उत्पत्ति, रोहिणीसे संकर्षण-बलराम तथा देवकीसे श्रीकृष्णका आविर्भाव, वासुदेव कृष्णका वंश-वर्णन .....	१५०			१७२
२४-	पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्या करने-हेतु भगवान् श्रीकृष्णका महामुनि उपमन्युके आश्रममें जाना, महामुनि उपमन्युद्वारा उन्हें पाशुपत-योग प्रदान करना, तपस्यामें निरत कृष्णको शिव-पार्वतीका दर्शन और श्रीकृष्णद्वारा उनकी स्तुति करना, शिवद्वारा पुत्रप्राप्तिका वर देना तथा माता पार्वतीद्वारा अनेक वर देना और शिवके साथ श्रीकृष्णका कैलास-गमन .....	१५६			१७४
२५-	श्रीकृष्णका कैलास पर्वतपर विहार करना, श्रीकृष्णको द्वारका बुलानेके लिये गरुड़का कैलासपर जाना, श्रीकृष्णका द्वारका-आगमन, द्वारकामें श्रीकृष्णका स्वागत तथा उनका दर्शन करनेके लिये देवताओं तथा मार्कण्डेय आदि मुनियोंका आना, कृष्णके द्वारा महर्षि मार्कण्डेयको शिव-तत्त्व तथा लिङ्ग-तत्त्वका माहात्म्य बतलाना तथा स्वयं शिवका पूजन करना, ब्रह्मा-विष्णुद्वारा शिवके महालिङ्गका दर्शन तथा लिङ्गस्तुति, लिङ्गाचर्चनका प्रवर्तन.....	१६४			१८४
२६-	श्रीकृष्णको महेश्वरकी कपासे साम्ब नामक				

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	लिङ्गका पूजन तथा वहाँ रहते हुए शिवाराधना, एक दिन भिक्षा न मिलनेपर क्रोधाविष्ट व्यासजीका वाराणसीके निवासियोंको शाप देनेके लिये उद्यत होना, उसी समय देवी पार्वतीका प्रकट होना, देवीका व्यासको वाराणसी त्यागनेकी आज्ञा, पुनः स्तुतिसे प्रसन्न देवीके द्वारा चतुर्दशी तथा अष्टमीको वहाँ (वाराणसीमें) रहनेकी अनुमति देना	१९९		नाडियोंका वर्णन तथा उनका कार्य, बारह महीनोंके बारह सूर्योंके नाम तथा छः ऋतुओंमें उनका वर्णन, आठ ग्रहोंका वर्णन, सोमके रथका वर्णन, देवोद्वारा चन्द्रकलाओंका पान करना, पितरोंद्वारा अमावस्याको चन्द्रमाकी कलाका पान, बुध आदि ग्रहोंके रथका वर्णन .....	२२१
३४-प्रयागका माहात्म्य, मार्कण्डेय-युधिष्ठिर-संवाद, प्रयागमें संगम-स्नानका फल .....	२०२	४२-महः आदि सात लोकों तथा सात पातालोंका और वहाँके निवासियोंका वर्णन, वैष्णवी तथा शाम्भवी शक्तियोंका वर्णन .....	२२४		
३५-प्रयाग-माहात्म्य, प्रयागके विभिन्न तीर्थोंकी महिमा, त्रिपथगा गङ्गाका माहात्म्य, गङ्गास्नानका फल .....	२०६	४३-सात महाद्वीपों और सात महासागरोंका परिमाण, जम्बूद्वीप तथा मेरुपर्वतकी स्थिति, भारत तथा किंपुरुष आदि वर्षोंका वर्णन, वर्षपर्वतोंकी स्थिति, जम्बूद्वीपके नाम पड़नेका कारण, जम्बूद्वीपके नदी एवं पर्वतोंका और वहाँके निवासियोंका वर्णन .....	२२६		
३६-प्रयाग-माहात्म्य, माघमासमें संगमस्नानका फल, त्रिमाघीकी महिमा, प्रयागमें प्राण-त्याग करनेका फल .....	२०९	४४-ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि देवताओंकी पुरियोंका तथा वहाँके निवासियोंका वर्णन, गङ्गाकी चार धाराओं और आठ मर्यादापर्वतोंका वर्णन .....	२२९		
३७-प्रयाग-माहात्म्य, यमुनाकी महिमा, यमुनाके तटवर्ती तीर्थोंका वर्णन, गङ्गामें सभी तीर्थोंकी स्थिति, मार्कण्डेय-युधिष्ठिर-संवादकी समाप्ति .....	२१०	४५-केतुमाल, भद्राश्व, रम्यकर्व तथा वहाँके निवासियोंका वर्णन, हरिर्वर्षमें स्थित विष्णुके विमानका वर्णन, जम्बूद्वीपके वर्णनमें भारत-वर्षके कुलपर्वतों, महानदियों, जनपदों और वहाँके निवासियोंका वर्णन, भारतवर्षमें चार युगोंकी स्थितिका प्रतिपादन .....	२३२		
३८-भुवनकोश-वर्णनमें राजा प्रियव्रतके वंशका वर्णन, प्रियव्रतके पुत्र राजा अग्नीध्रके वंशका वर्णन, जम्बू आदि सात द्वीपोंका तथा वर्षोंका वर्णन, जम्बूद्वीपके नौ वर्षोंमें राजा अग्नीध्रके नाभि, किंपुरुष आदि नौ पुत्रोंका आधिपत्य....	२१२	४६-विभिन्न पर्वतोंपर स्थित देवताओंके पुरोंका वर्णन तथा वहाँके निवासियों, नदियों, सरोवरों और भवनोंका वर्णन, जम्बूद्वीपके वर्णनका उपसंहार .....	२३५		
३९-'भू' आदि सात लोकोंका वर्णन, ग्रह-नक्षत्रोंकी स्थितिका वर्णन तथा उनका परिमाप, सूर्यरथका वर्णन, पूर्व आदि दिशाओंमें स्थित इन्द्रादि देवोंकी अमरावती आदि पुरियोंका नाम-निर्देश, सूर्यकी महिमा .....	२१५	४७-प्लक्ष आदि महाद्वीपों, वहाँके पर्वतों, नदियों तथा निवासियोंका वर्णन, श्वेतद्वीपमें स्थित नारायणपुरका वर्णन, वहाँ वैकुण्ठमें रहनेवाले लक्ष्मीपति शेषशायी नारायणकी महिमाका ख्यापन .....	२४०		
४०-सूर्य-रथ तथा द्वादश आदित्योंके नाम, सूर्य-रथके अधिष्ठात् देवता आदिका वर्णन, सूर्यकी महिमा .....	२१९				
४१-सूर्यकी प्रधान सात रश्मियोंके नाम, इनके द्वारा ग्रहोंका आप्यायन, सूर्यकी अन्य हजारों					

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
४८-	पुष्करद्वीपकी स्थिति तथा विस्तारका वर्णन, संक्षेपमें अव्यक्तसे सृष्टिका प्रतिपादन .....	२४५		भगवत्ताका और इस ज्ञानसे मुक्तिकी प्राप्तिका निरूपण करना .....	२७४
४९-	स्वारोचिष्ठसे वैवस्वत मन्वन्तरतकके देवता, सत्त्विं, इन्द्र आदिका वर्णन, नारायणद्वारा ही विभिन्न मन्वन्तरोंमें सृष्टि आदिका प्रतिपादन, भगवान् विष्णुकी चार मूर्तियोंका विवेचन, विष्णुका माहात्म्य .....	२४७	७-	ईश्वर (शंकर)-द्वारा अपनी विभूतियोंका वर्णन तथा प्रकृति, महत् आदि चौबीस तत्त्वों, तीन गुणों एवं पशु, पाश और पशुपति आदिका विवेचन .....	२७८
५०-	अद्वाईस व्यासोंका वर्णन, अद्वाईसवें कृष्णद्वैपायन-द्वारा वेदसंहिताका विभाजन तथा पुराणेतिहासकी रचना, वेदकी शाखाओंका विस्तार तथा विष्णुके माहात्म्यका कथन .....	२५०	८-	महेश्वरका अद्वितीय परमेश्वरके रूपमें निरूपण, सांख्य-सिद्धान्तसे तत्त्वोंका सृष्टिक्रम, महेश्वरके छः अङ्ग, महेश्वरके स्वरूपके ज्ञानसे परमपदकी प्राप्ति .....	२८०
५१-	कलियुगमें महादेवके अवतारों तथा उनके शिष्योंका वर्णन, भविष्यमें होनेवाले सात मन्वन्तरोंका नाम-परिगणन, कूर्मपुराणके पूर्वविभागका उपसंहार .....	२५३	९-	महादेवके विश्वरूपत्वका वर्णन तथा ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञानका प्रतिपादन .....	२८२
	(उपरिविभाग)		१०-	ईश्वरद्वारा परम तत्त्व तथा परम ज्ञानके स्वरूपका निरूपण और उसकी प्राप्तिके साधनका वर्णन .....	२८४
१-	ईश्वर (शिव) तथा ऋषियोंके संवादमें ईश्वरगीताका उपक्रम .....	२५७	११-	योगकी महिमा, अष्टाङ्गयोग, यम, नियम आदि योगसाधनोंका लक्षण, प्राणायामका विशेष प्रतिपादन, ध्यानके विविध प्रकार, पाशुपत-योगका वर्णन, वाराणसीमें प्राण-त्यागकी महिमा, शिव-आराधनकी विधि, शिव और विष्णुके अभेदका प्रतिपादन, शिवज्ञान-योगकी परम्पराका वर्णन, ईश्वर-गीताकी फलश्रुति तथा उपसंहार .....	२८६
२-	आत्मतत्त्वके स्वरूपका निरूपण, सांख्य एवं योगके ज्ञानका अभेद, आत्मसाक्षात्कारके साधनोंका वर्णन .....	२६०	१२-	ब्रह्मचारीका धर्म, यज्ञोपवीत आदिके सम्बन्धमें विविध विवरण, अभिवादनकी विधि, माता-पिता एवं गुरुकी महिमा, ब्रह्मचारीके सदाचारका वर्णन .....	२९८
३-	अव्यक्त शिवतत्त्वसे सृष्टिका कथन, परमात्माके स्वरूपका वर्णन तथा प्रधान, पुरुष एवं महदादि तत्त्वोंसे सृष्टिका क्रम-वर्णन, शिवस्वरूपका निरूपण .....	२६५	१३-	ब्रह्मचारीके नित्यकर्मकी विधि, आचमनका विधान, हाथोंमें स्थित तीर्थ, उच्छ्वष्ट होनेपर शुद्धिकी प्रक्रिया, मूत्र-पुरीषोत्सर्गके नियम .....	३०४
४-	शिव-भक्तिका माहात्म्य, शिवोपासनाकी सुगमता, ज्ञानरूप शिवस्वरूपका वर्णन, शिवकी तीन प्रकारकी शक्तियोंका प्रतिपादन, शिवके परम तत्त्वका निरूपण .....	२६७	१४-	ब्रह्मचारीके आचारका वर्णन, गुरुसे अध्ययन आदिकी विधि, ब्रह्मचारीका धर्म, गुरु तथा गुरु-पत्नीके साथ व्यवहारका वर्णन, वेदाध्ययन और गायत्रीकी महिमा, अनध्यायोंका वर्णन,	
५-	ऋषियोंको दिव्य नृत्य करते हुए भगवान् शंकरका आकाशमें दर्शन, मुनियोंद्वारा महेश्वरकी भावपूर्ण स्तुति करना .....	२७०			
६-	ईश्वर (शंकर)-द्वारा ऋषिगणोंको अपना सर्वव्यापी स्वरूप बतलाना तथा अपनी				

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	ब्रह्मचारी-धर्मका उपसंहार .....	३०९		रखना आवश्यक .....	३८०
१५-	गृहस्थधर्म तथा गृहस्थके सदाचारका वर्णन, धर्माचरण एवं सत्यधर्मकी महिमा .....	३१८	२५-	गृहस्थ ब्राह्मणकी मुख्य वृत्ति तथा आपत्कालकी वृत्ति, गृहस्थके साधक तथा असाधक दो भेद, न्यायोपार्जित धनका विभाग एवं उसका उपयोग .....	३८२
१६-	सदाचारका वर्णन.....	३२३	२६-	दानधर्मका निरूपण एवं नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा विमल-चतुर्विध दान-भेद, दानके अधिकारी तथा अनधिकारी, कामना-भेदसे विविध देवताओंकी आराधनाका विधान, ब्राह्मणकी महिमा तथा दानधर्म-प्रकरणका उपसंहार .....	३८५
१७-	भक्ष्य एवं अभक्ष्य-पदार्थोंका वर्णन .....	३३२	२७-	वानप्रस्थ-आश्रम तथा वानप्रस्थ-धर्मका वर्णन, वानप्रस्थीके कर्तव्योंका निरूपण .....	३९२
१८-	गृहस्थके नित्यकर्मोंका वर्णन, प्रातःस्नानकी महिमा, छः प्रकारके स्नान, संध्योपासनकी महिमा तथा संध्योपासनविधि, सूर्योपस्थानका माहात्म्य, सूर्यहृदयस्तोत्र, अग्निहोत्रकी विधि, तर्पणकी विधि, नित्य किये जानेवाले पञ्च- महायज्ञोंकी महिमा तथा उनका विधान ...	३३७	२८-	संन्यासधर्मका प्रतिपादन, संन्यासियोंके भेद तथा संन्यासीके कर्तव्योंका वर्णन.....	३९५
१९-	भोजन-विधि, ग्रहणकालमें भोजनका निषेध, शयन-विधि, गृहस्थके नित्यकर्मोंके अनुष्ठानका महत्व .....	३४८	२९-	संन्यासाश्रमधर्म-निरूपणमें यतियोंकी भैक्ष्य- वृत्तिका स्वरूप, यतियोंके लिये महेश्वरके ध्यानका प्रतिपादन, ब्रतभङ्गमें प्रायश्चित्तविधान तथा पुनः यथास्थितिमें आनेकी विधि, संन्यासधर्म-प्रकरणकी समाप्ति .....	३९८
२०-	श्राद्ध-प्रकरण—श्राद्धके प्रशस्त दिन, विभिन्न तिथियों, नक्षत्रों और वारोंमें किये जानेवाले श्राद्धोंका विभिन्न फल, श्राद्धके आठ भेद, श्राद्धके लिये प्रशस्त स्थान, श्राद्धमें विहित तथा निषिद्ध पदार्थ .....	३५१	३०-	प्रायश्चित्त-प्रकरणमें प्रायश्चित्तका स्वरूप- निरूपण, पाँच महापातकोंके नाम तथा ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तका संक्षिप्त निरूपण..	४०२
२१-	श्राद्ध-प्रकरणमें निमन्त्रणके योग्य पंक्तिपावन ब्राह्मणों तथा त्याज्य पंक्ति-दूषकोंके लक्षण	३५५	३१-	प्रायश्चित्त-प्रकरणमें कपालमोचन-तीर्थका आख्यान .....	४०५
२२-	श्राद्ध-प्रकरणमें ब्राह्मण निमन्त्रित करनेकी विधि, निमन्त्रित ब्राह्मणके कर्तव्य, श्राद्ध- विधि, श्राद्धमें प्रशस्त पात्र, पितरोंकी प्रार्थना, श्राद्धके दिन निषिद्ध कर्म, वृद्धिश्राद्धका विधान, श्राद्ध-प्रकरणका उपसंहार .....	३६१	३२-	प्रायश्चित्त-प्रकरणमें महापातकोंके प्रायश्चित्तका विधान तथा अन्य उपपातकोंसे शुद्धिका उपाय .....	४१४
२३-	आशौच-प्रकरणमें जननाशौच और मरणाशौचकी क्रिया-विधि, शुद्धि-विधान, सपिण्डता, सद्यःशौच, अन्त्येष्टि-संस्कार, सपिण्डीकरण- विधि, मासिक तथा सांवत्सरिक श्राद्ध आदिका वर्णन .....	३७१	३३-	प्रायश्चित्त-प्रकरणमें चोरी तथा अभक्ष्य- भक्षणका प्रायश्चित्त, प्रकीर्ण पापोंका प्रायश्चित्त, समस्त पापोंकी एकत्र मुक्तिके विविध उपाय, पतिव्रताको कोई पाप नहीं लगता, पतिव्रताके माहात्म्यमें देवी सीताका आख्यान, सीताद्वारा अग्निस्तुति, ज्ञानयोगकी प्रशंसा तथा प्रायश्चित्त-प्रकरणका उपसंहार .....	४१९
२४-	अग्निहोत्रका माहात्म्य, अग्निहोत्रीके कर्तव्य, श्रौत एवं स्मार्तरूप द्विविध धर्म, तृतीय शिष्टाचारधर्म, वेद, धर्मशास्त्र और पुराणसे धर्मका ज्ञान तथा इनपर श्रद्धा				

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
३४-तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमें प्रयाग, गया, एकाम्र तथा पुष्कर आदि विविध तीर्थोंकी महिमाका वर्णन, सप्तसारस्वत-तीर्थके वर्णनमें शिवभक्त मङ्गणक मुनिका आख्यान .....	४३२	समीपवर्ती तीर्थोंकी महिमा, मार्कण्डेय तथा युधिष्ठिरके संवादकी समाप्ति .....	४७१		
३५-तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमें विविध तीर्थोंका माहात्म्य, कालञ्जर-तीर्थकी महिमाके वर्णनके प्रसंगमें शिवभक्त राजा श्वेतकी कथा.....	४३८	४१-तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमें नैमिषारण्य तथा जप्येश्वर-तीर्थकी महिमा, जप्येश्वर-तीर्थमें महर्षि शिलादके पुत्र नन्दीकी तपस्या तथा उनके गणाधिपति होनेका आख्यान .....	४७४		
३६-तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमें विविध तीर्थोंकी महिमा, देवदारु-बन-तीर्थका माहात्म्य .....	४४१	४२-विविध शैव-तीर्थोंके माहात्म्यका निरूपण, तीर्थोंके अधिकारी तथा तीर्थ-माहात्म्यका उपसंहार .....	४७८		
३७-देवदारु-बनमें स्थित मुनियोंका वृत्तान्त एवं शिवलिङ्गका पतन, मुनियोंको ब्रह्माका उपदेश, शिवको प्रसन्न करने-हेतु ऋषियोंद्वारा तपस्या तथा स्तुति, शिवद्वारा सांख्यका उपदेश .....	४४६	४३-चतुर्विध प्रलयका प्रतिपादन, नैमित्तिक प्रलयका विशेष वर्णन, विष्णुद्वारा अपने माहात्म्यका निरूपण .....	४८०		
३८-तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमें मार्कण्डेय-युधिष्ठिर- संवादका प्रारम्भ, मार्कण्डेयजीद्वारा नर्मदा तथा अमरकण्टकतीर्थके माहात्म्यका प्रतिपादन.....	४६०	४४-प्राकृत प्रलयका वर्णन, शिवके विविध रूपों और विविध शक्तियोंका वर्णन, शिवकी आराधनाकी विधि, मुनियोंद्वारा कूर्मरूपधारी विष्णुकी स्तुति, कूर्मपुराणकी विषयानुक्रमणिकाका वर्णन, कूर्मपुराणकी फलश्रुति तथा इस पुराणकी वक्तृ- श्रोतृपरम्पराका प्रतिपादन, महर्षि व्यास तथा नारायणकी वन्दनाके साथ पुराणकी पूर्णताका कथन .....	४८५		
३९-तीर्थमाहात्म्य-वर्णनके प्रसंगमें नर्मदाके तटवर्ती तीर्थोंका विस्तारसे वर्णन .....	४६३				
४०-तीर्थमाहात्म्य-प्रकरणमें नर्मदा तथा उसके					

॥ श्रीहरिः ॥  
॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# कूर्मपुराण

## [ पूर्वविभाग ]

### पहला अध्याय

सूतजीकी उत्पत्ति, उनके रोमहर्षण नाम पड़नेका कारण, पुराणों तथा  
उपपुराणोंका नाम-परिगणन, समुद्र-मन्थनसे उत्पन्न विष्णुमायाका  
वर्णन, इन्द्रद्युम्नका आख्यान और कूर्मपुराणकी महिमा

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।  
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

नमस्कृत्वाप्रमेयाय विष्णवे कूर्मरूपिणे।  
पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं विश्वयोनिना ॥ १ ॥

सत्रान्ते सूतमनघं नैमिषीया महर्षयः।  
पुराणसंहितां पुण्यां पप्रच्छू रोमहर्षणम् ॥ २ ॥

त्वया सूत महाबुद्धे भगवान् ब्रह्मवित्तमः।  
इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः ॥ ३ ॥

तस्य ते सर्वरोमाणि वचसा हृषितानि यत्।  
द्वैपायनस्य भगवांस्ततो वै रोमहर्षणः ॥ ४ ॥

(बदरिकाश्रममें निवास करनेवाले ऋषि) नारायण,  
नरोंमें उत्तम श्रीनर तथा उनकी लीला प्रकट करनेवाली  
भगवती सरस्वतीको नमस्कार कर जय (पुराण एवं  
इतिहास आदि सद्ग्रन्थों)-का पाठ करना चाहिये।  
कूर्मरूप धारण करनेवाले अप्रमेय भगवान् विष्णुको  
नमस्कार कर मैं उस पुराण (कूर्मपुराण)-को कहूँगा,  
जो समस्त विश्वके मूल कारण भगवान् विष्णुके द्वारा  
कहा गया था ॥ १ ॥

नैमिषारण्यवासी महर्षियोंने (बारह वर्षतक चलनेवाले)  
सत्र (यज्ञ)-के पूर्ण हो जानेपर सर्वथा निष्पाप रोमहर्षण  
सूतजीसे पवित्र पुराण-संहिताके विषयमें प्रश्न किया—  
महाबुद्धिमान् सूतजी महाराज! आपने इतिहास और  
पुराणोंके ज्ञानके लिये ब्रह्मज्ञानियोंमें परम श्रेष्ठ भगवान्  
वेदव्यासजीकी भलीभाँति उपासना की है। चूँकि  
आपके वचनसे द्वैपायन भगवान् वेदव्यासजीके समस्त  
रोम हर्षित हो गये थे, इसलिये आप ‘रोमहर्षण’  
कहलाते हैं ॥ २—४ ॥

भवन्तमेव भगवान् व्याजहार स्वयं प्रभुः।  
मुनीनां संहितां वकुं व्यासः पौराणिकीं पुरा ॥ ५ ॥

त्वं हि स्वायम्भुवे यज्ञे सुत्याहे वितते हरिः।  
सम्भूतः संहितां वकुं स्वांशेन पुरुषोत्तमः ॥ ६ ॥

तस्माद् भवन्तं पृच्छामः पुराणं कौर्ममुत्तमम्।  
वक्तुमर्हसि चास्माकं पुराणार्थविशारद ॥ ७ ॥  
मुनीनां वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः।  
प्रणम्य मनसा प्राह गुरुं सत्यवतीसुतम् ॥ ८ ॥

रोमहर्षण उवाच

नमस्कृत्वा जगद्योनिं कूर्मरूपधरं हरिम्।  
वक्ष्ये पौराणिकीं दिव्यां कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ ९ ॥

यां श्रुत्वा पापकर्मापि गच्छेत परमां गतिम्।  
न नास्तिके कथां पुण्यामिमां ब्रूयात् कदाचन ॥ १० ॥

श्रद्धानाय शान्ताय धार्मिकाय द्विजातये।  
इमां कथामनुब्रूयात् साक्षात्रारायणेरिताम् ॥ ११ ॥  
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।  
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥ १२ ॥  
ब्राह्मं पुराणं प्रथमं पाद्यं वैष्णवमेव च।  
शैवं भागवतं चैव भविष्यं नारदीयकम् ॥ १३ ॥  
मार्कण्डेयमथाग्नेयं ब्रह्मवैर्वत्मेव च।  
लैङ्गं तथा च वाराहं स्कान्दं वामनमेव च ॥ १४ ॥  
कौर्मं मात्स्यं गारुडं च वायवीयमनन्तरम्।  
अष्टादशं समुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम् ॥ १५ ॥  
अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु।  
अष्टादशपुराणानि श्रुत्वा संक्षेपतो द्विजाः ॥ १६ ॥

आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परम्।  
तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम् ॥ १७ ॥

प्राचीन कालमें स्वयं समर्थ होते हुए भी भगवान् वेदव्यासजीने आपसे ही कहा था कि आप मुनियोंको पुराण-संहिता सुनायें। (सूतजी महाराज!) आप अपने अंशसे उत्पन्न साक्षात् पुरुषोत्तम नारायण हैं। स्वयम्भू ब्रह्माजीके महान् यज्ञमें सोमरस प्रस्तुत करनेके दिन पुराण-संहिताका वाचन करनेके लिये ही आपका आविर्भाव हुआ था। आप पुराणोंके अर्थको ठीक-ठीक जाननेवाले हैं। इसीलिये हम आपसे श्रेष्ठ कूर्मपुराणके विषयमें पूछ रहे हैं। आप हमें वह (कूर्मपुराण) बतलायें ॥ ५—७ ॥

मुनियोंके वचन सुनकर पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजीने देवी सत्यवतीके पुत्र अपने गुरु (भगवान् वेदव्यास)-को मन-ही-मन प्रणाम कर (इस प्रकार) कहा— ॥ ८ ॥

रोमहर्षण सूतजी बोले—समस्त विश्वके मूल कारण, कूर्मरूप धारण करनेवाले भगवान् नारायण विष्णुको नमस्कार करके कूर्मपुराणकी उस दिव्य कथाको कहता हूँ, जो समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली है और जिसे सुनकर महान्-से-महान् पाप करनेवाला पापी व्यक्ति भी परम गतिको प्राप्त कर लेता है। कूर्मपुराणकी इस पुण्यकथाको नास्तिक व्यक्तिको कभी भी नहीं सुनाना चाहिये। जो अत्यन्त श्रद्धालु हैं, शान्त हैं, धर्मात्मा हैं—ऐसे द्विजातियोंको साक्षात् नारायण भगवान् विष्णुके द्वारा कही गयी इस कूर्मपुराणकी कथाको विशेष रूपसे कहना चाहिये ॥ ९—११ ॥

सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय), वंश, वंशानुचरित तथा मन्वन्तर—ये पुराणोंके पाँच लक्षण हैं ॥ १२ ॥

अठारह महापुराणोंमें प्रथम पुराण ब्रह्मपुराण है, द्वितीय पद्मपुराण है। इसी प्रकार क्रमशः विष्णु, शिव, भागवत, भविष्य, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैर्वत, लिङ्ग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य और गरुडपुराण हैं। भगवान् वायुके द्वारा कहा गया अठारहवाँ पुराण ब्रह्माण्डपुराणके नामसे कहा जाता है ॥ १३—१५ ॥

(सूतजीने पुनः कहा—) ब्राह्मणो! अठारह पुराणोंका नाम सुनकर (अब आप लोग) मुनियोंद्वारा कहे गये अन्य उपपुराणोंका नाम भी संक्षेपमें सुनें— ॥ १६ ॥

(इन उपपुराणोंमें) पहला उपपुराण सनत्कुमारके द्वारा कहा गया सनत्कुमार उपपुराण है। तदनन्तर दूसरा नरसिंहपुराण है। स्कन्दकुमारके द्वारा कथित तीसरा पुराण स्कन्दपुराण कहा गया है ॥ १७ ॥

चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षात्रन्दीशभाषितम्।  
दुर्वाससोक्तमाश्र्यं नारदोक्तमतः परम्॥ १८ ॥

कपिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितम्।  
ब्रह्मण्डं वारुणं चाथ कालिकाहृष्यमेव च ॥ १९ ॥

माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसंचयम्।  
पराशरोक्तमपरं मारीचं भार्गवाहृष्यम्॥ २० ॥  
इदं तु पञ्चदशमं पुराणं कौर्ममुत्तमम्।  
चतुर्था संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः ॥ २१ ॥

ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्तिताः।  
चतस्रः संहिताः पुण्या धर्मकामार्थमोक्षदाः ॥ २२ ॥  
इयं तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदस्तु सम्मिता।  
भवन्ति षट्सहस्राणि श्लोकानामत्र संख्या ॥ २३ ॥

यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च मुनीश्वराः।  
माहात्म्यमखिलं ब्रह्म ज्ञायते परमेश्वरः ॥ २४ ॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।  
वंशानुचरितं दिव्याः पुण्याः प्रासंगिकाः कथाः ॥ २५ ॥

ब्राह्मणाद्यैरियं धार्या धार्मिकैः शान्तमानसैः।  
तामहं वर्तयिष्यामि व्यासेन कथितां पुरा ॥ २६ ॥  
पुरामृतार्थं दैतेयदानवैः सह देवताः।  
मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुः क्षीरसागरम्॥ २७ ॥

मथ्यमाने तदा तस्मिन् कूर्मरूपी जनार्दनः।  
बभार मन्दरं देवो देवानां हितकाम्यया ॥ २८ ॥

चौथे पुराणका नाम शिवधर्म है जो साक्षात् भगवान् नन्दीश्वर (शिव)-के द्वारा कहा गया है। महर्षि दुर्वासाके द्वारा कहा गया आश्र्यपुराण पाँचवाँ है और छठा पुराण देवर्षि नारदके द्वारा कहा गया नारदपुराण है। इसी प्रकार (सातवाँ) कपिल, (आठवाँ) मानव और शुक्राचार्यद्वारा प्रोक्त उशना नामक (नवाँ) पुराण है। (दसवाँ) ब्रह्माण्ड, (ग्यारहवाँ) वरुण तथा (बारहवाँ पुराण) कालिकापुराणके नामसे कहा गया है। (तेरहवाँ) माहेश्वरपुराण, (चौदहवाँ) साम्बपुराण तथा सभी प्रकारके अर्थोंसे युक्त (पंद्रहवाँ) सौरपुराण है। (सोलहवाँ) पराशरपुराण महर्षि पराशरके द्वारा कहा गया है। (सत्रहवाँ) मारीचपुराण है और (अठारहवाँ पुराण) भार्गवपुराणके नामसे कहा गया है ॥ १८—२० ॥

यह कूर्मपुराण पंद्रहवाँ महापुराण है, जो पुराणोंमें श्रेष्ठ है। संहिताओंके भेदसे यह पवित्र पुराण चार भागों (चार संहिताओं)-में विभक्त है। ब्राह्मी, भागवती, सौरी तथा वैष्णवी नामक इस कूर्मपुराणकी चार पवित्र संहिताएँ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इस प्रकार चतुर्विधि पुरुषार्थको देनेवाली कही गयी हैं ॥ २१—२२ ॥

यह ब्राह्मी संहिता है, जो चारों वेदोंद्वारा अनुमोदित है। इसकी श्लोक-संख्या छः हजार है। हे मुनीश्वरो! इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अशेष माहात्म्य वर्णित है और (इसके श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पठन-पाठन एवं श्रवण आदिसे) परमेश्वर ब्रह्मका ज्ञान होता है। इसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित और दिव्य एवं पुण्य प्रासंगिक कथाएँ भी कही गयी हैं। यह पुराणसंहिता शान्त-चित्त एवं धर्मात्मा ब्राह्मणादिकोंके द्वारा धारण करने योग्य है। (सूतजी कहते हैं—) मैं उसी पुराणसंहिताका प्रवचन करूँगा, जिसे प्राचीन समयमें वेदव्यासजीने कहा था ॥ २३—२६ ॥

प्राचीन कालमें अमृतकी प्रासिके लिये देवताओंने दितिके पुत्र दैत्यों और दानवोंके साथ मन्दर नामक पर्वतको मथानी बनाकर क्षीरसागरको मथा। उस क्षीरसागरके मन्थन किये जाते समय देवताओंके कल्याणकी कामनासे जनार्दन भगवान् विष्णुने कूर्मरूप धारण करके उस मन्दराचलको ऊपर उठाये रखा ॥ २७—२८ ॥

देवाश्च तुष्टवुर्देवं नारदाद्या महर्षयः।  
कूर्मरूपधरं दृष्ट्वा साक्षिणं विष्णुमव्ययम्॥ २९ ॥

तदन्तरेऽभवद् देवी श्रीनारायणवल्लभा।  
जग्राह भगवान् विष्णुस्तामेव पुरुषोत्तमः॥ ३० ॥

तेजसा विष्णुमव्यक्तं नारदाद्या महर्षयः।  
मोहिताः सह शक्रेण श्रियो वचनमब्रुवन्॥ ३१ ॥

भगवन् देवदेवेश नारायण जगन्मय।  
कैषादेवी विशालाक्षी यथावद्ब्रूहि पृच्छताम्॥ ३२ ॥

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं विष्णुर्दानवर्मदनः।  
प्रोवाच देवीं सम्प्रेक्ष्य नारदादीनकल्मषान्॥ ३३ ॥

इयं सा परमा शक्तिर्मन्मयी ब्रह्मरूपिणी।  
माया मम प्रियानन्ता यथेदं मोहितं जगत्॥ ३४ ॥

अनयैव जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्।  
मोहयामि द्विजश्रेष्ठा ग्रसामि विसृजामि च॥ ३५ ॥

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्।  
विज्ञायान्वीक्ष्य चात्मानं तरन्ति विपुलामिमाम्॥ ३६ ॥

अस्यास्त्वंशानधिष्ठाय शक्तिमन्तोऽभवन् द्विजाः।  
ब्रह्मेशानादयो देवाः सर्वशक्तिरियं मम॥ ३७ ॥

सैषा सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका।  
प्रागेव मत्तः संजाता श्रीकल्पे पद्मवासिनी॥ ३८ ॥

चतुर्भुजा शङ्खचक्रपद्महस्ता शुभान्विता।  
कोटिसूर्यप्रतीकाशा मोहिनी सर्वदेहिनाम्॥ ३९ ॥

नालं देवा न पितरो मानवा वसवोऽपि च।  
मायामेतां समुत्तर्तुं ये चान्ये भुवि देहिनः॥ ४० ॥

कूर्म (कच्छप)-रूप धारण किये हुए सर्वद्रष्टा अविनाशी भगवान् विष्णुको देखकर देवताओं तथा नारदादि महर्षियोंने उन देवकी स्तुति की॥ २९ ॥

उसी समय नारायण भगवान् विष्णुकी प्रिया देवी श्रीलक्ष्मीका आविर्भाव हुआ। उन्हें पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुने ही ग्रहण किया। लक्ष्मीके तेजसे मोहित हुए इन्द्रसहित नारद आदि महर्षियोंने अव्यक्त भगवान् विष्णुसे यह वचन कहा—॥ ३०—३१ ॥

हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे नारायण! हे जगन्मय! हम पूछनेवालोंको आप ठीक-ठीक बतलायें कि विशाल नेत्रोंवाली यह देवी कौन है?॥ ३२ ॥

उस समय उन देवताओं तथा महर्षियोंका वह वाक्य सुनकर दानवोंका मर्दन करनेवाले भगवान् विष्णु देवी लक्ष्मीकी ओर देखकर नारद आदि परम पवित्र महर्षियोंसे बोले—॥ ३३ ॥

यह मेरी स्वरूपभूता ब्रह्मरूपिणी परम शक्ति है, यही माया है, यही अनन्ता है और यही मेरी वह प्रिया है जिसने इस सम्पूर्ण जगत्को मोहित कर रखा है। हे श्रेष्ठ द्विजो! इसीके द्वारा मैं देवताओं, असुरों एवं मनुष्योंसे युक्त सम्पूर्ण विश्वको मोहित करता हूँ, संहार करता हूँ और पुनः सृष्टि करता हूँ। (ज्ञानीजन जगत्की) उत्पत्ति एवं प्रलयको तथा प्राणियोंके जन्म एवं मोक्षको ठीक-ठीक समझकर और आत्मतत्त्वका दर्शनकर इस महामायाके बन्धनसे पार उत्तरते हैं। द्विजो! मेरी सब प्रकारकी शक्ति यही है, इसीके अंशोंका आश्रय ग्रहणकर ब्रह्मा तथा शिव आदि देवता शक्तिमान् हुए हैं॥ ३४—३७ ॥

यही वह सत्त्व-रज तथा तम—तीनों गुणोंसे युक्त त्रिगुणात्मिका प्रकृति है और यही सारे संसारको उत्पन्न करनेवाली है। प्राचीन कालमें श्रीकल्पमें यह पद्मवासिनीके रूपमें मुझसे ही आविर्भूत हुई थी। ये चार भुजावाली हैं, ये हाथोंमें शंख, चक्र तथा कमल धारण किये रहती हैं, सभी मङ्गलमय गुणोंसे युक्त हैं, करोड़ों सूर्योंके समान इनकी आभा है, ये सभी प्राणियोंको मोहित करनेवाली हैं। देवता, पितर, मनुष्य, वसुगण तथा पृथ्वीपर रहनेवाले जितने भी अन्य देहधारी प्राणी हैं, वे सभी अर्थात् कोई भी ऐसा नहीं है जो इस मायाको पार करनेमें समर्थ हो॥ ३८—४० ॥

इत्युक्ता वासुदेवेन मुनयो विष्णुमब्रुवन्।  
ब्रूहि त्वं पुण्डरीकाक्ष यदि कालत्रयेऽपि च।  
को वा तरति तां मायां दुर्जयां देवनिर्मिताम्॥ ४१ ॥

अथोवाच हृषीकेशो मुनीन् मुनिगणार्चितः।  
अस्ति द्विजातिप्रवर इन्द्रद्युम्न इति श्रुतः॥ ४२ ॥

पूर्वजन्मनि राजासावधृष्यः शंकरादिभिः।  
दृष्ट्वा मां कूर्मसंस्थानं श्रुत्वा पौराणिकीं स्वयम्।  
संहितां मन्मुखाद् दिव्यां पुरस्कृत्य मुनीश्वरान्॥ ४३ ॥

ब्रह्माणं च महादेवं देवांश्चान्यान् स्वशक्तिभिः।  
मच्छक्तौ संस्थितान् बुद्ध्वा मामेव शरणं गतः॥ ४४ ॥  
सम्भाषितो मया चाथ विप्रयोनिं गमिष्यसि।  
इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो जातिं स्मरसि पौर्विकीम्॥ ४५ ॥

सर्वेषामेव भूतानां देवानामप्यगोचरम्।  
वक्तव्यं यद् गुह्यतमं दास्ये ज्ञानं तवानघ।  
लब्ध्वा तन्मामकं ज्ञानं मामेवान्ते प्रवेक्ष्यसि॥ ४६ ॥

अंशान्तरेण भूम्यां त्वं तत्र तिष्ठ सुनिर्वृतः।  
वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते कार्यार्थं मां प्रवेक्ष्यसि॥ ४७ ॥  
मां प्रणम्य पुरीं गत्वा पालयामास मेदिनीम्।  
कालधर्मं गतः कालाच्छ्वेतद्वीपे मया सह॥ ४८ ॥

भुक्त्वा तान् वैष्णवान् भोगान् योगिनामप्यगोचरान्।  
मदाज्ञया मुनिश्रेष्ठो जज्ञे विप्रकुले पुनः॥ ४९ ॥  
ज्ञात्वा मां वासुदेवाख्यं यत्र द्वे निहितेऽक्षरे।  
विद्याविद्ये गूढरूपे यत्तद् ब्रह्म परं विदुः॥ ५० ॥

सोऽर्चयामास भूतानामाश्रयं परमेश्वरम्।  
व्रतोपवासनियमैर्होमैब्रह्मणतर्पणैः॥ ५१ ॥

भगवान् वासुदेवके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर मुनियोंने भगवान् विष्णुसे कहा—हे पुण्डरीकाक्ष! उस देवनिर्मित दुर्जय मायाको पार करनेवाला तीनों कालोंमें यदि कोई हुआ हो तो उसे आप बतलायें॥ ४१ ॥

तदनन्तर मुनियोंद्वारा पूजित भगवान् हृषीकेशने उन मुनियोंसे कहा—इन्द्रद्युम्न नामका द्विजातियोंमें श्रेष्ठ एक ब्राह्मण था, ऐसा सुना गया है। पूर्वजन्ममें वह शंकर आदि देवताओंसे भी अजेय राजा था। ‘मैंने कूर्म-अवतार धारण किया है’ यह जानकर तथा स्वयं मेरे मुखसे दिव्य पुराण-संहिताको सुनकर वह (राजा इन्द्रद्युम्न) मुनीश्वरोंसहित ब्रह्मा, शिव एवं अपनी-अपनी शक्तियोंके साथ अन्य सभी देवताओंको मेरी ही शक्तिमें प्रतिष्ठित समझकर मुझे देखनेके लिये मेरी शरणमें आया॥ ४२—४४ ॥

इसके बाद मैंने कहा—(इन्द्रद्युम्न!) तुम ब्राह्मणकी योनिमें उत्पन्न होओगे, तुम्हारा ‘इन्द्रद्युम्न’ यह नाम प्रसिद्ध होगा और तुम अपने पूर्वजन्मका स्मरण करोगे। हे अनघ! मैं तुम्हें सभी प्राणियों तथा देवताओंके लिये भी अज्ञात एवं जो अत्यन्त गूढरूपसे कहने योग्य है, उस ज्ञानको प्रदान करूँगा। उस मेरे ज्ञानको प्राप्तकर तुम अन्त समयमें मुझमें ही प्रविष्ट हो जाओगे और अपने ही अंशसे दूसरे रूपमें तुम पृथ्वीपर शान्तिपूर्वक रहो। वैवस्वत मन्वन्तरके व्यतीत हो जानेपर तुम (अभीष्ट) कार्यके लिये मुझमें ही प्रविष्ट हो जाओगे॥ ४५—४७ ॥

(भगवान्ने पुनः कहा—) मुनिश्रेष्ठो! मुझे प्रणामकर वह राजा अपनी नगरीमें गया और पृथ्वीका पालन-पोषण करने लगा। यथासमय मृत्यु होनेपर वह मेरे स्थान—श्वेतद्वीपको प्राप्त हुआ और वहाँ मेरे साथ योगियोंके लिये भी अलभ्य दिव्य वैष्णव भोगोंको भोगकर पुनः मेरी ही आज्ञासे ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुआ॥ ४८-४९ ॥

जिसमें अविनश्वर गूढ़ स्वरूपवाली विद्या एवं अविद्या—ये दोनों प्रतिष्ठित हैं तथा जिसे ज्ञानीजन परब्रह्मके नामसे जानते हैं, उस वासुदेव नामवाले मुझे जानकर इन्द्रद्युम्नने व्रत, उपवास, नियम, होम तथा ब्राह्मणोंकी संतुष्टि आदि उपायोंद्वारा सभी प्राणियोंके एकमात्र आश्रय परमेश्वरकी आराधना की॥ ५०-५१ ॥

तदाशीस्तन्नमस्कारस्त्रिष्टस्तत्परायणः ।  
आराधयन् महादेवं योगिनां हृदि संस्थितम् ॥ ५२ ॥

तस्यैवं वर्तमानस्य कदाचित् परमा कला ।  
स्वरूपं दर्शयामास दिव्यं विष्णुसमुद्भवम् ॥ ५३ ॥

दृष्ट्वा प्रणम्य शिरसा विष्णोर्भगवतः प्रियाम् ।  
संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः कृताज्जलिरभाषत ॥ ५४ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

का त्वं देवि विशालाक्षिं विष्णुचिह्नाङ्किते शुभे ।  
यथातस्येन वै भावं तवेदानीं ब्रवीहि मे ॥ ५५ ॥

तस्य तद् वाक्यमाकर्ण्य सुप्रसन्ना सुमङ्गला ।  
हसन्ती संस्मरन् विष्णुं प्रियं ब्राह्मणमब्रवीत् ॥ ५६ ॥

न मां पश्यन्ति मुनयो देवाः शक्रपुरोगमाः ।  
नारायणात्मिका चैका मायाहं तन्मया परा ॥ ५७ ॥

न मे नारायणाद् भेदो विद्यते हि विचारतः ।  
तन्मयाहं परं ब्रह्म स विष्णुः परमेश्वरः ॥ ५८ ॥

येऽर्चयन्तीह भूतानामाश्रयं परमेश्वरम् ।  
ज्ञानेन कर्मयोगेन न तेषां प्रभवाम्यहम् ॥ ५९ ॥

तस्मादनादिनिधनं कर्मयोगपरायणः ।  
ज्ञानेनाराधयानन्तं ततो मोक्षमवाप्यसि ॥ ६० ॥  
इत्युक्तः स मुनिश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नो महामतिः ।  
प्रणम्य शिरसा देवीं प्राज्जलिः पुनरब्रवीत् ॥ ६१ ॥

कथं स भगवानीशः शाश्वतो निष्कलोऽच्युतः ।  
ज्ञातुं हि शक्यते देवि ब्रूहि मे परमेश्वरि ॥ ६२ ॥  
एवमुक्ताथ विप्रेण देवी कमलवासिनी ।  
साक्षात्रारायणो ज्ञानं दास्यतीत्याह तं मुनिम् ॥ ६३ ॥

उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां संस्पृश्य प्रणतं मुनिम् ।  
स्मृत्वा परात्परं विष्णुं तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६४ ॥

वह उन्हींकी मङ्गलकामना करते हुए उन्हींको नमस्कार करता था, उनमें ही उसकी अनन्य निष्ठा थी तथा वह उन्हींके आश्रित होकर योगियोंके हृदयप्रदेशमें विराजमान रहनेवाले महादेवकी आराधना करने लगा। उसके इसी प्रकार आराधना करते हुए एक दिन वैष्णवी शक्तिने भगवान् विष्णुसे प्रादुर्भूत दिव्य स्वरूप उसे दिखलाया। भगवान् विष्णुकी प्रिया देवी विष्णुप्रियाका दर्शनकर उसने सिर झुकाकर विनीतभावसे उन्हें प्रणाम किया और विविध स्तुतियोंके द्वारा उनकी स्तुतिकर हाथ जोड़कर कहा— ॥ ५२—५४ ॥

इन्द्रद्युम्नने कहा—वैष्णव चिह्नोंवाली, मङ्गलमयी तथा विशाल नेत्रोंवाली हे देवि! आप कौन हैं? आपका जो यथार्थ स्वरूप हो उसे इस समय मुझे बतलायें ॥ ५५ ॥

इन्द्रद्युम्नके वचन सुनकर अत्यन्त सुप्रसन्ना सुमङ्गला वह देवी विष्णुका स्मरणकर उस प्रिय ब्राह्मणसे हँसती हुई बोली— ॥ ५६ ॥

मैं उन विष्णुकी प्रकृतिस्वरूपा परा माया हूँ। मुझ अद्वितीय नारायणस्वरूपा नारायणीको मुनि तथा इन्द्र आदि देवता भी नहीं देख पाते हैं। सूक्ष्म विचार करनेपर मुझमें और नारायणमें कोई भेद नहीं दीखता। मैं उनकी प्रकृतिरूपा हूँ, वे विष्णु परब्रह्म हैं, परमेश्वर हैं। समस्त भूत (प्राणियों)-के आश्रयभूत उन परमेश्वरकी जो ज्ञानयोग अथवा कर्मयोगद्वारा यहाँ आराधना करते हैं ऐसे भक्तोंपर मेरा कोई वश नहीं चलता। अतः तुम कर्मयोगका आश्रय लेते हुए ज्ञानके द्वारा उन आदि और अन्तसे रहित अनन्त भगवान् विष्णुकी आराधना करो। इससे तुम मोक्ष प्राप्त करोगे ॥ ५७—६० ॥

ऐसा कहे जानेपर अत्यन्त बुद्धिमान् मुनिश्रेष्ठ उस इन्द्रद्युम्नने देवीको विनयपूर्वक प्रणाम किया और हाथ जोड़कर पुनः कहा—हे परमेश्वरी देवि! शाश्वत, अखण्ड तथा अच्युत सबके स्वामी उन भगवान्को किस प्रकार जाना जा सकता है, यह मुझे बतलायें ॥ ६१—६२ ॥

ब्राह्मण (इन्द्रद्युम्न)-के द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर कमलमें निवास करनेवाली देवीने उस मुनिसे कहा—‘साक्षात् नारायण ही तुम्हें (वह) ज्ञान प्रदान करेंगे। तदनन्तर प्रणाम कर रहे उस मुनि (इन्द्रद्युम्न)-को अपने दोनों हाथोंसे भली-भाँति स्पर्श कर ( वे देवी) परात्पर विष्णुका स्मरण करती हुई वहीं अन्तर्धान हो गयीं ॥ ६३—६४ ॥

सोऽपि नारायणं द्रुष्टं परमेण समाधिना ।  
आराधयद्वषीकेशं प्रणतार्तिप्रभञ्जनम् ॥ ६५ ॥

ततो बहुतिथे काले गते नारायणः स्वयम् ।  
प्रादुरासीन्महायोगी पीतवासा जगन्मयः ॥ ६६ ॥

दृष्ट्वा देवं समायान्तं विष्णुमात्मानमव्ययम् ।  
जानुभ्यामवनिं गत्वा तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥ ६७ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव ।  
कृष्ण विष्णो हृषीकेश तुभ्यं विश्वात्मने नमः ॥ ६८ ॥

नमोऽस्तु ते पुराणाय हरये विश्वमूर्तये ।  
सर्गस्थितिविनाशानां हेतवेऽनन्तशक्तये ॥ ६९ ॥

निर्गुणाय नमस्तुभ्यं निष्कलायामलात्मने ।  
पुरुषाय नमस्तुभ्यं विश्वरूपाय ते नमः ॥ ७० ॥

नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये ।  
आदिमध्यान्तहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः ॥ ७१ ॥

नमस्ते निर्विकाराय निष्प्रपञ्चाय ते नमः ।  
भेदाभेदविहीनाय नमोऽस्त्वानन्दरूपिणे ॥ ७२ ॥

नमस्ताराय शान्ताय नमोऽप्रतिहतात्मने ।  
अनन्तमूर्तये तुभ्यममूर्ताय नमो नमः ॥ ७३ ॥

नमस्ते परमार्थाय मायातीताय ते नमः ।  
नमस्ते परमेशाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ७४ ॥

नमोऽस्तु ते सुसूक्ष्माय महादेवाय ते नमः ।  
नमः शिवाय शुद्धाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥ ७५ ॥

त्वयैव सृष्टमखिलं त्वमेव परमा गतिः ।  
त्वं पिता सर्वभूतानां त्वं माता पुरुषोत्तम ॥ ७६ ॥

त्वमक्षरं परं धाम चिन्मात्रं व्योम निष्कलम् ।  
सर्वस्याधारमव्यक्तमनन्तं तमसः परम् ॥ ७७ ॥

प्रपश्यन्ति परात्मानं ज्ञानदीपेन केवलम् ।  
प्रपद्ये भवतो रूपं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ७८ ॥

इन्द्रद्युम्न भी शरणागतके दुःखोंको सर्वथा दूर कर देनेवाले हृषीकेश भगवान् नारायणका दर्शन करनेके लिये दीर्घकालीन समाधिमें निरत होकर आराधना करने लगा । तत्पश्चात् बहुत समय बीत जानेपर पीताम्बरधारी, जगन्मूर्ति महायोगी भगवान् नारायण उसके सामने स्वयं प्रकट हो गये । अविनाशी परमात्मा भगवान् विष्णुको आया हुआ देखकर घुटनोंके बल पृथ्वीपर स्थित होकर वह गरुडध्वजदेवकी स्तुति करने लगा ॥ ६५—६७ ॥

इन्द्रद्युम्नने कहा—हे यज्ञोंके स्वामी ! अच्युत ! गोविन्द ! माधव ! अनन्त ! केशव ! कृष्ण ! विष्णु ! तथा हृषीकेश ! आप विश्वात्माको नमस्कार है । पुराण-पुरुष ! विश्वमूर्ति है हरि ! आप सृष्टि, स्थिति तथा प्रलयके मूल कारण हैं, आप अनन्त शक्तिसम्पन्न हैं, आपको नमस्कार है । आप निर्गुण-स्वरूप हैं, निष्कल एवं विमलात्मा हैं, आपको नमस्कार है । हे विश्वरूप पुरुष ! आपको नमस्कार है । विश्वकी योनि, वासुदेव भगवान् विष्णुको नमस्कार है । आप आदि, मध्य तथा अन्तसे रहित ज्ञानद्वारा जानने योग्य हैं, आपको नमस्कार है । निर्विकार तथा प्रपञ्चरहित आपको नमस्कार है । भेद-अभेदसे रहित आनन्द-स्वरूप आपको नमस्कार है । (संसारसागरसे) पार उत्तरनेवाले, शान्तस्वरूप आपको नमस्कार है । शुद्धात्मा आपको नमस्कार है । आप अनन्तमूर्तिवाले हैं, अमूर्त हैं, आपको बार-बार नमस्कार है । आप परमार्थरूप हैं, आपको नमस्कार है । आप मायासे अतीत हैं, आपको नमस्कार है । इशोंके भी ईश ! आपको नमस्कार है । परमात्मा परब्रह्मरूप आपको नमस्कार है । अत्यन्त सूक्ष्मरूप आपको नमस्कार है । देवोंके भी देव महादेव ! आपको नमस्कार है । विशुद्धस्वरूप शिव ! आपको नमस्कार है । परमेष्ठीस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ६८—७५ ॥

आपने ही सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना की है । आप ही परम गति हैं । हे पुरुषोत्तम ! आप ही सभी भूत-प्राणियोंके पिता हैं और आप ही सबकी माता हैं । आप अविनाशी हैं, परम धाम हैं, चित्स्वरूप हैं, व्योम हैं, निष्कल हैं, सबके आधार हैं, अव्यक्त हैं, अनन्त हैं और तमसे सर्वथा रहित नित्य प्रकाशस्वरूप हैं । (ज्ञानीजन) केवल ज्ञानरूपी दीपकके द्वारा जिस परमात्माका दर्शन करते हैं, मैं आपके उस रूपकी शरण ग्रहण करता हूँ, वह विष्णुका परमपद है ॥ ७६—७८ ॥

एवं स्तुवन्तं भगवान् भूतात्मा भूतभावनः।  
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां पस्पर्शं प्रहसन्निव ॥ ७९ ॥

स्पृष्टमात्रो भगवता विष्णुना मुनिपुंगवः।  
यथावत् परमं तत्त्वं ज्ञातवांस्तत्प्रसादतः ॥ ८० ॥

ततः प्रहृष्टमनसा प्रणिपत्य जनार्दनम्।  
प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षं पीतवाससमच्युतम् ॥ ८१ ॥  
त्वत्प्रसादादसंदिग्धमुत्पन्नं पुरुषोत्तम।  
ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं परमानन्दसिद्धिदम् ॥ ८२ ॥

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय वेधसे।  
किं करिष्यामि योगेश तन्मे वद जगन्मय ॥ ८३ ॥  
श्रुत्वा नारायणो वाक्यमिन्द्रद्युम्नस्य माधवः।  
उवाच सस्मितं वाक्यमशेषजगतो हितम् ॥ ८४ ॥

श्रीभगवानुवाच  
वर्णाश्रिमाचारवतां पुंसां देवो महेश्वरः।  
ज्ञानेन भक्तियोगेन पूजनीयो न चान्यथा ॥ ८५ ॥

विज्ञाय तत्परं तत्त्वं विभूतिं कार्यकारणम्।  
प्रवृत्तिं चापि मे ज्ञात्वा मोक्षार्थीश्वरमर्चयेत् ॥ ८६ ॥

सर्वसंगान् परित्यज्य ज्ञात्वा मायामयं जगत्।  
अद्वैतं भावयात्मानं द्रक्ष्यसे परमेश्वरम् ॥ ८७ ॥

त्रिविधा भावना ब्रह्मन् प्रोच्यमाना निबोध मे।  
एका मद्विषया तत्र द्वितीया व्यक्तसंश्रया।  
अन्या च भावना ब्राह्मी विज्ञेया सा गुणातिगा ॥ ८८ ॥

इस प्रकार स्तुति करते हुए इन्द्रद्युम्नका सभी प्राणियोंके आत्मरूप भूतभावन भगवान् विष्णुने अपने दोनों हाथोंसे किञ्चित् मुसकराते हुए स्पर्श किया ॥ ७९ ॥

भगवान् विष्णुके द्वारा स्पर्श करते ही मुनिश्रेष्ठ (इन्द्रद्युम्न)-को उन भगवान्की कृपासे परम तत्त्वका यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो गया। इसके बाद अत्यन्त प्रसन्न मनसे इन्द्रद्युम्नने प्रफुल्लित कमलके समान नेत्रवाले, पीताम्बरधारी अच्युत भगवान् जनार्दनको प्रणाम कर कहा— ॥ ८०-८१ ॥

हे पुरुषोत्तम! आपकी कृपासे मुझे परमानन्दकी प्राप्ति करानेवाला एकमात्र ब्रह्मसम्बन्धी संदेहरहित ज्ञान प्राप्त हो गया है। हे भगवन्! हे वासुदेव! हे वेधा! आपको नमस्कार है। हे योगेश! हे जगन्मय! मैं क्या करूँ, उसे आप मुझे बतलायें ॥ ८२-८३ ॥

इन्द्रद्युम्नके वचन सुनकर माधव भगवान् नारायणने समस्त संसारके कल्याणकी कामनासे मुसकराते हुए यह वचन कहा— ॥ ८४ ॥

श्रीभगवान् बोले—वर्ण एवं आश्रमधर्मका पालन करनेवाले व्यक्तियोंको चाहिये कि वे ज्ञान एवं भक्तियोगके द्वारा भगवान् महेश्वरकी पूजा करें, अन्य साधनसे नहीं। मोक्षार्थीको चाहिये कि उस परम तत्त्व, विभूति एवं कार्यकारणरूपको ठीक-ठीक जानकर साथ ही मेरी प्रवृत्तिको समझकर ईश्वरकी उपासना करे। सभी प्रकारकी आसक्तियोंका सर्वथा परित्याग कर, इस संसारको मायारूप जानकर अपनेमें अद्वैतकी भावना करें। (ऐसा करनेसे इन्द्रद्युम्न! तुम) परमेश्वरका दर्शन करोगे ॥ ८५-८७ ॥

ब्रह्मन् इन्द्रद्युम्न! तीन प्रकारकी भावनाएँ कही गयी हैं, उन्हें मैं बताता हूँ, तुम सुनो—उन तीनोंमेंसे पहली भावना है मद्विषया अर्थात् मेरे सगुण स्वरूपकी भावना। दूसरी है व्यक्तसंश्रया अर्थात् भगवान्का जो विराट् स्वरूप है, उसका आश्रय ग्रहण कर उपासनाकी भावना और तीसरी जो भावना है उसे ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्मज्ञानविषयक भावना जानना चाहिये, यह तीसरी भावना गुणातीत है (गुणातीतरूपमें ब्रह्मकी उपासना ही ब्राह्मी भावना है।) विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि इन तीनोंमेंसे किसी भी भावनाका आश्रय ग्रहण कर उपासना करे ॥ ८८ ॥

\* 'परमात्मासे अतिरिक्त कुछ नहीं है' यह भावना ही यहाँ अद्वैत भावना है।

आसामन्यतमां चाथ भावनां भावयेद् बुधः ।  
अशक्तः संश्रयेदाद्यामित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥ ८९ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तन्निष्टस्तपरायणः ।  
समाराधय विश्वेशं ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥ ९० ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच  
किं तत् परतरं तत्त्वं का विभूतिर्जनार्दन ।  
किं कार्यं कारणं कस्त्वं प्रवृत्तिश्चापि का तव ॥ ९१ ॥

श्रीभगवानुवाच

परात्परतरं तत्त्वं परं ब्रह्मैकमव्ययम् ।  
नित्यानन्दं स्वयंज्योतिरक्षरं तमसः परम् ॥ ९२ ॥

ऐश्वर्यं तस्य यन्नित्यं विभूतिरिति गीयते ।  
कार्यं जगदथाव्यक्तं कारणं शुद्धमक्षरम् ॥ ९३ ॥

अहं हि सर्वभूतानामन्तर्यामीश्वरः परः ।  
सर्गस्थित्यन्तकर्तृत्वं प्रवृत्तिर्मम गीयते ॥ ९४ ॥

एतद् विज्ञाय भावेन यथावदखिलं द्विज ।  
ततस्त्वं कर्मयोगेन शाश्वतं सम्यगर्चय ॥ ९५ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

के ते वर्णश्रमाचारा यैः समाराध्यते परः ।  
ज्ञानं च कीदूशं दिव्यं भावनात्रयसंस्थितम् ॥ ९६ ॥

कथं सृष्टिमिदं पूर्वं कथं संहियते पुनः ।  
कियत्यः सृष्टयो लोके वंशा मन्वन्तराणि च ।  
कानि तेषां प्रमाणानि पावनानि व्रतानि च ॥ ९७ ॥

तीर्थान्यकार्दिसंस्थानं पृथिव्यायामविस्तरे ।  
कति द्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च नदीनदाः ।  
ब्रूहि मे पुण्डरीकाक्षं यथावदधुनाखिलम् ॥ ९८ ॥

श्रीकूर्म उवाच

एवमुक्तोऽथ तेनाहं भक्तानुग्रहकाम्यया ।  
यथावदखिलं सर्वमवोचं मुनिपुंगवाः ॥ ९९ ॥

जो असमर्थ व्यक्ति है उसे चाहिये कि वह प्रथम भावना अर्थात् वैष्णवी भावनाका अवलम्बन ग्रहण करे—ऐसा वेदका मत है। इसलिये (इन्द्रद्युम्न! तुम) समस्त प्रयत्नोंके द्वारा सम्पूर्ण संसारके स्वामी भगवान् विष्णुकी आराधना करो, उनमें ही निष्ठा रखो और उन्होंका आश्रय ग्रहण कर उन्होंके शरणागत हो जाओ, इससे तुम मोक्ष प्राप्त करोगे ॥ ८९-९० ॥

इन्द्रद्युम्न बोले—हे जनार्दन! वह परात्पर तत्त्व क्या है, विभूति क्या है? कार्य क्या है और कारण क्या है? आप कौन हैं? और आपकी प्रवृत्ति क्या है? ॥ ९१ ॥

श्रीभगवान् बोले—वह परसे परतर तत्त्व एकमात्र अखण्ड परम ब्रह्म ही है। वह नित्य आनन्दस्वरूप है, स्वयं प्रकाशमान है, अविनाशी है और तम (अन्धकार)-से सर्वथा परे है। उस परमात्माका जो नित्य रहनेवाला ऐश्वर्य है, वही विभूति नामसे कहा जाता है। यह संसार ही (परमात्माका) कार्यरूप है और अविनाशी विशुद्ध अव्यक्त तत्त्व ही (इस संसारका) कारणरूप है। मैं ही समस्त प्राणियोंमें रहनेवाला अन्तर्यामी ईश्वर हूँ। सृष्टि, पालन और संहार ही मेरी प्रवृत्ति कही जाती है। हे द्विज! इन सभी बातोंको यथार्थरूपसे जानकर तुम कर्मयोगके द्वारा श्रद्धाभावसे (उस) सनातन (ईश्वर)-की भलीभाँति अर्चना करो ॥ ९२—९५ ॥

इन्द्रद्युम्नने कहा—(भगवन्!) वर्णों तथा आश्रमोंके बे कौनसे पालनीय नियम हैं, जिनसे (उस) परतत्त्वकी आराधना की जाती है और वह दिव्य ज्ञान कैसा है जो तीन भावनाओंसे युक्त है? (परमात्माने) पूर्वकालमें इस (संसार)-की सृष्टि कैसे की और फिर कैसे इसका संहार होता है, लोकमें कितनी सृष्टियाँ हैं, कितने वंश हैं, कितने मन्वन्तर हैं। उनके कितने प्रमाण हैं और पवित्र व्रत तथा तीर्थ कौन-से हैं। सूर्य आदि ग्रहोंकी स्थिति कैसी है, पृथ्वीकी लंबाई-चौड़ाई कितनी है, कितने द्वीप, समुद्र, पर्वत हैं और कितने नद हैं और कितनी नदियाँ हैं, हे पुण्डरीकाक्ष! इस समय यह सब मुझे यथार्थरूपसे बताइये ॥ ९६—९८ ॥

श्रीकूर्मने कहा—हे श्रेष्ठ मुनियो! उस इन्द्रद्युम्नके द्वारा मुझसे इस प्रकार कहे जानेपर भक्तोंपर अनुकम्पा करनेकी कामनासे मैंने वे सभी बातें विस्तारसे ठीक-ठीक उसे बतला दीं ॥ ९९ ॥

व्याख्यायाशेषमेवेदं यत्पृष्ठोऽहं द्विजेन तु।  
अनुगृह्य च तं विप्रं तत्रैवान्तर्हितोऽभवम्॥ १०० ॥

सोऽपि तेन विधानेन मदुक्तेन द्विजोत्तमः।  
आराधयामास परं भावपूतः समाहितः॥ १०१ ॥

त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेहं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः।  
सन्न्यस्य सर्वकर्माणि परं वैराग्यमाश्रितः॥ १०२ ॥

आत्मन्यात्मानमन्वीक्ष्य स्वात्मन्येवाखिलं जगत्।  
सम्प्राप्य भावनामन्त्यां ब्राह्मीमक्षरपूर्विकाम्॥ १०३ ॥

अवाप परमं योगं येनैकं परिपश्यति।  
यं विनिद्रा जितश्वासाः कांक्षन्ते मोक्षकांक्षिणः॥ १०४ ॥  
ततः कदाचिद् योगीन्द्रो ब्रह्माणं द्रष्टुमव्ययम्।  
जगामादित्यनिर्देशान्मानसोत्तरपर्वतम्।  
आकाशेनैव विप्रेन्द्रो योगैश्वर्यप्रभावतः॥ १०५ ॥

विमानं सूर्यसंकाशं प्रादुर्भूतमनुत्तमम्।  
अन्वगच्छन् देवगणा गन्धर्वाप्सरसां गणाः।  
दृष्ट्वान्ये पथि योगीन्द्रं सिद्धा ब्रह्मर्थयो ययुः॥ १०६ ॥  
ततः स गत्वा तु गिरि विवेश सुरवन्दितम्।  
स्थानं तद् योगिभिर्जुष्टं यत्रास्ते परमः पुमान्॥ १०७ ॥

सम्प्राप्य परमं स्थानं सूर्यायुतसमप्रभम्।  
विवेश चान्तर्भवनं देवानां च दुरासदम्॥ १०८ ॥  
विचिन्तयामास परं शरण्यं सर्वदेहिनाम्।  
अनादिनिधनं देवं देवदेवं पितामहम्॥ १०९ ॥  
  
ततः प्रादुरभूत तस्मिन् प्रकाशः परमात्मनः।  
तन्मध्ये पुरुषं पूर्वमपश्यत् परमं पदम्॥ ११० ॥

इस प्रकार उस ब्राह्मण इन्द्रद्युम्नने जो-जो भी मुझसे पूछा था, वह सब विस्तारसे बतलाकर और उसपर कृपा करके मैं वहीं अन्तर्धान हो गया॥ १०० ॥

उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने भी मेरे द्वारा बताये गये विधानसे अत्यन्त पवित्र भावनासे समाहित-चित्त होकर परम तत्त्वकी उपासना की। उसने अपने स्त्री-पुत्र आदिका मोह छोड़ दिया, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित हो गया, किसी भी वस्तुका संग्रह करना सर्वथा त्याग कर अपरिग्रही हो गया और सभी कर्मोंका परित्याग कर उसने परम वैराग्यका आश्रय ग्रहण किया। अपनी आत्मामें ही परमात्माका दर्शन करके और अपनी आत्मामें ही सम्पूर्ण विश्वका अनुभव कर अक्षर-तत्त्व-सम्बन्धी अन्तिम ब्राह्मी भावनाको प्राप्त किया, जिसके कारण उसे उस दुर्लभ परम योगकी प्राप्ति हुई। इस योगसे ही उस अद्वितीय तत्त्वका साक्षात्कार होता है जिसकी अभिलाषा निद्रात्यागी, श्वासजयी, मोक्षार्थी पुरुष भी करते हैं॥ १०१—१०४ ॥

इसके बाद किसी दिन वह ब्राह्मणश्रेष्ठ योगीन्द्र इन्द्रद्युम्न भगवान् सूर्यके निर्देशसे अव्यय ब्रह्मका दर्शन करनेके लिये अपनी योग-सिद्धिके प्रभावसे प्रादुर्भूत सूर्यके समान प्रकाशमान श्रेष्ठ विमानमें चढ़कर आकाशमार्गसे मानसरोवरके उत्तरमें स्थित पर्वतपर गया। उस योगिराज इन्द्रद्युम्नको आकाशमार्गमें जाते हुए देखकर देवों, गन्धर्वों तथा अप्सराओंका समूह भी उसके पीछे-पीछे गया और अन्य सिद्ध तथा ब्रह्मर्षियोंने भी उसका अनुसरण किया॥ १०५—१०६ ॥

तदनन्तर वहाँ जाकर इन्द्रद्युम्नने देवताओंद्वारा वन्दित तथा योगियोंद्वारा सेवित पर्वतके उस स्थानपर प्रवेश किया, जहाँ परम पुरुष परमात्मा प्रतिष्ठित रहते हैं। दस हजार सूर्योंके प्रकाशके समान प्रकाशित उस श्रेष्ठ स्थानपर पहुँचकर (इन्द्रद्युम्नने) देवताओंके लिये भी दुष्प्राप्य (उस स्थानके) अन्तर्गृहमें प्रवेश किया॥ १०७—१०८ ॥

(वहाँ पहुँचकर उसने) सभी प्राणियोंके परम शरणदाता, आदि-अन्तसे रहित, देवाधिदेव पितामह ब्रह्मदेवका ध्यान किया। इसके बाद उसके ध्यान करते ही वहाँ परमात्माका प्रकाश प्रादुर्भूत हुआ। इन्द्रद्युम्नने

महान्तं तेजसो राशिमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम्।  
चतुर्मुखमुदाराङ्गमर्चिभिरुपशोभितम् ॥ १११ ॥

सोऽपि योगिनमन्वीक्ष्य प्रणमन्तमुपस्थितम्।  
प्रत्युदगम्य स्वयं देवो विश्वात्मा परिषस्वजे ॥ ११२ ॥

परिष्वक्तस्य देवेन द्विजेन्द्रस्याथ देहतः।  
निर्गत्य महती ज्योत्स्ना विवेशादित्यमण्डलम्।  
ऋग्यजुःसामसंज्ञं तत् पवित्रममलं पदम् ॥ ११३ ॥

हिरण्यगर्भो भगवान् यत्रास्ते हव्यकव्यभुक्।  
द्वारं तद् योगिनामाद्यं वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम्।  
ब्रह्मतेजोमयं श्रीमन्निष्ठा चैव मनीषिणाम् ॥ ११४ ॥  
दृष्टमात्रो भगवता ब्रह्माणार्चिर्मयो मुनिः।  
अपश्यदैश्वरं तेजः शान्तं सर्वत्रगं शिवम् ॥ ११५ ॥

स्वात्मानमक्षरं व्योम तद् विष्णोः परमं पदम्।  
आनन्दमचलं ब्रह्म स्थानं तत्पारमेश्वरम् ॥ ११६ ॥

सर्वभूतात्मभूतः स परमैश्वर्यमास्थितः।  
प्राप्तवानात्मनो धाम यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम् ॥ ११७ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वर्णाश्रमविधौ स्थितः।  
समाश्रित्यान्तिमं भावं मायां लक्ष्मीं तरेद् बुधः ॥ ११८ ॥

सूत उवाच  
व्याहृता हरिणा त्वेवं नारदाद्या महर्षयः।  
शक्रेण सहिताः सर्वे पप्रच्छुर्गुरुडध्वजम् ॥ ११९ ॥

ऋषय ऊचुः  
देवदेव हृषीकेश नाथ नारायणामल।  
तद् वदाशेषमस्माकं यदुक्तं भवता पुरा ॥ १२० ॥  
इन्द्रद्युम्नाय विप्राय ज्ञानं धर्मादिगोचरम्।  
शुश्रूषुश्वाव्ययं शक्रः सखा तव जगन्मय ॥ १२१ ॥

उस प्रकाशपुञ्जके मध्यमें महान् तेजकी राशिके रूपमें ब्रह्मविद्वेषियोंके लिये अगम्य, परमपदस्वरूप पूर्व पुरुषका दर्शन किया, जो चार मुखवाले थे, जिनके सभी अङ्ग शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थे और प्रकाशकी किरणोंसे सुशोभित थे ॥ १०९—१११ ॥

समीपमें आये प्रणाम करते हुए योगी इन्द्रद्युम्नको देखकर वह विश्वात्मा ब्रह्मदेव स्वयं भी उसके समीपमें गये और उसको अपने हृदयसे लगाया। ब्रह्मदेवके द्वारा आलिङ्गन करते ही उस ब्राह्मणश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नके शरीरसे एक महान् प्रकाश निकला, जो आदित्य-मण्डलमें प्रविष्ट हो गया। वह पवित्र निर्मल पद (आदित्य-मण्डल) ऋक्-यजुः एवं साम नामवाला है। जिस स्थानमें हव्य (देवताओंको प्राप्त होनेवाला हवनीय द्रव्य) तथा कव्य (पितरोंको प्राप्त कराया जानेवाला श्राद्धीय पदार्थ)-का उपभोग करनेवाले भगवान् हिरण्यगर्भ निवास करते हैं। वह (स्थान) वेदान्तमें प्रतिपादित योगी जनोंका आद्य प्रवेश-द्वार है, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न है, श्रीयुक्त है और वह मनीषियोंकी निष्ठा भी है ॥ १२—१४ ॥

भगवान् ब्रह्माके देखते ही देखते वह मुनि इन्द्रद्युम्न तेजसे सम्पन्न हो गया और उसने सर्वत्र व्यास, परम कल्याणकारी, अत्यन्त शान्त स्वात्मस्वरूप, अक्षर, व्योम उस परमेश्वर-सम्बन्धी तेजको देखा। वह विष्णुका परम पद है। केवल आनन्दरूप, अचल वह ब्रह्मका स्थान परमेश्वररूप है। सभी प्राणियोंको अपनी ही आत्मा समझनेवाला वह योगी इन्द्रद्युम्न परम ऐश्वर्यमें प्रतिष्ठित हो गया और उसने 'मोक्ष' पदसे कहे जानेवाले उस अव्यय परमात्मधारमको प्राप्त कर लिया ॥ ११५—११७ ॥

इसलिये सभी प्रयत्नोंसे वर्ण एवं आश्रमके नियमोंका पालन करते हुए अन्तिम भावका आश्रय ग्रहण कर विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि वह लक्ष्मीरूप मायासे पार उत्तरे ॥ ११८ ॥

सूतजी बोले—हरिके द्वारा इस प्रकार कहनेपर इन्द्रसहित नारद आदि सभी महर्षियोंने गरुडध्वज भगवान् विष्णुसे पूछा— ॥ ११९ ॥

ऋषियोंने कहा—हे देवाधिदेव! हे हृषीकेश! हे नाथ! हे अमलरूप नारायण! जो आपने पूर्वकालमें ब्राह्मण इन्द्रद्युम्नसे धर्मादि-सम्बन्धी ज्ञान कहा था, वह सब आप हमें बतलायें। हे जगन्मूर्ति! ये आपके सखा इन्द्र भी सुननेके लिये इच्छुक हैं ॥ १२०—१२१ ॥

ततः स भगवान् विष्णुः कूर्मरूपी जनार्दनः ।  
रसातलगतो देवो नारदाद्यैर्महर्षिभिः ॥ १२२ ॥

पृष्ठः प्रोवाच सकलं पुराणं कौर्ममुत्तमम् ।  
संनिधौ देवराजस्य तद् वक्ष्ये भवतामहम् ॥ १२३ ॥  
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं मोक्षप्रदं नृणाम् ।  
पुराणश्रवणं विप्राः कथनं च विशेषतः ॥ १२४ ॥

श्रुत्वा चाध्यायमेवैकं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
उपाख्यानमथैकं वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १२५ ॥

इदं पुराणं परमं कौर्म कूर्मस्वरूपिणा ।  
उक्तं देवाधिदेवेन श्रद्धातव्यं द्विजातिभिः ॥ १२६ ॥

इसके बाद (सूतजीने कहा—) रसातलमें स्थित कूर्मरूपी जनार्दन भगवान् विष्णुदेवने नारदादि महर्षियोंके द्वारा (इस प्रकार) पूछे जानेपर जिस श्रेष्ठ सम्पूर्ण कूर्मपुराणको देवराज इन्द्रके समीप सुनाया था, मैं उसे आप लोगोंको सुनाता हूँ ॥ १२२-१२३ ॥

हे ब्राह्मणो ! (इस कूर्म) पुराणका सुनना मनुष्योंके लिये यशकी प्राप्ति करानेवाला, दीर्घ आयु प्रदान करानेवाला, पुण्य प्रदान करानेवाला, कृतकृत्य करानेवाला तथा मोक्ष प्रदान करानेवाला है । इस पुराणके वाचन करनेकी तो और भी विशेष महिमा है । इसके मात्र एक अध्यायके सुननेसे ही सभी प्रकारके पापोंसे (व्यक्ति) मुक्त हो जाता है । अधिक क्या कहा जाय, केवल एक उपाख्यानके श्रवणमात्रसे ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । इस श्रेष्ठ कूर्मपुराणको कूर्मरूपधारी देवाधिदेव स्वयं भगवान् विष्णुने कहा है, द्विजातियोंको इसपर अवश्य श्रद्धा रखनी चाहिये ॥ १२४—१२६ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

## दूसरा अध्याय

विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माका प्रादुर्भाव, रुद्र तथा लक्ष्मीका प्राकृत्य, ब्रह्माद्वारा नौ मानस पुत्रों तथा चार वर्णोंकी सृष्टि, वेदज्ञानकी महिमा, ब्रह्म-सृष्टिका वर्णन, वर्ण और आश्रमोंके सामान्य तथा विशेष धर्म, गृहस्थाश्रमका माहात्म्य, चतुर्विध पुरुषार्थोंमें धर्मकी महिमा, आश्रमोंका द्वैविद्य, त्रिदेवोंका पूजन, त्रिपुण्ड्र, तिलक तथा भस्म-धारणकी महिमा

श्रीकूर्म उवाच

शृणुध्वमृष्यः सर्वे यत्पृष्ठोऽहं जगद्धितम् ।  
वक्ष्यमाणं मया सर्वमिन्द्रद्युम्नाय भाषितम् ॥ १ ॥

भूतैर्भव्यैर्भविष्यद्दिश्चरितैरुपवृहितम् ।  
पुराणं पुण्यदं नृणां मोक्षधर्मानुकीर्तनम् ॥ २ ॥

अहं नारायणो देवः पूर्वमासं न मे परम् ।  
उपास्य विपुलं निद्रां भोगिशब्द्यां समाश्रितः ॥ ३ ॥

श्रीकूर्मने कहा—समस्त ऋषिगणो ! संसारके कल्याणके लिये आप लोगोंने जो कुछ मुझसे पूछा है और इन्द्रद्युम्नके प्रति मैंने जो कुछ कहा है, वह सब मैं बतला रहा हूँ आप लोग सुनें ॥ १ ॥

इस (कूर्म) पुराणमें भूत, वर्तमान एवं भविष्यकालमें हुए वृत्तान्तोंको विस्तारसे बतलाया गया है । यह पुराण मनुष्योंको पुण्य प्रदान करनेवाला और मोक्षधर्मका वर्णन करनेवाला है ॥ २ ॥

मैं ही नारायण देवरूपसे पूर्वकालमें विद्यमान था । मेरे अतिरिक्त और कोई दूसरा न था ॥ ३ ॥

चिन्तयामि पुनः सृष्टि निशान्ते प्रतिबुद्ध्य तु ।  
ततो मे सहसोत्पन्नः प्रसादो मुनिपुंगवाः ॥ ४ ॥

चतुर्मुखस्ततो जातो ब्रह्मा लोकपितामहः ।  
तदन्तरेऽभवत् क्रोधः कस्माच्चित् कारणात् तदा ॥ ५ ॥

आत्मनो मुनिशार्दूलास्तत्र देवो महेश्वरः ।  
रुद्रः क्रोधात्मजो जज्ञे शूलपाणिस्त्रिलोचनः ।  
तेजसा सूर्यसंकाशस्त्रैलोक्यं संहरन्निव ॥ ६ ॥  
ततः श्रीरभवद् देवी कमलायतलोचना ।  
सुरूपा सौम्यवदना मोहिनी सर्वदेहिनाम् ॥ ७ ॥

शुचिस्मिता सुप्रसन्ना मङ्गला महिमास्पदा ।  
दिव्यकान्तिसमायुक्ता दिव्यमाल्योपशोभिता ॥ ८ ॥

नारायणी महामाया मूलप्रकृतिरव्यया ।  
स्वधाम्ना पूरयन्तीदं मत्याश्वर्वं समुपाविशत् ॥ ९ ॥

तां दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा मामुवाच जगत्पतिः ।  
मोहायाशेषभूतानां नियोजय सुरूपिणीम् ।  
येनेयं विपुला सृष्टिवर्धते मम माधव ॥ १० ॥

तथोक्तोऽहं श्रियं देवीमब्रुवं प्रहसन्निव ।  
देवीदमखिलं विश्वं सदेवासुरमानुषम् ।  
मोहयित्वा ममादेशात् संसारे विनिपातय ॥ ११ ॥

ज्ञानयोगरतान् दान्तान् ब्रह्मिष्ठान् ब्रह्मवादिनः ।  
अक्रोधनान् सत्यपरान् दूरतः परिवर्जय ॥ १२ ॥  
ध्यायिनो निर्ममान् शान्तान् धार्मिकान् वेदपारगान् ।  
जापिनस्तापसान् विप्रान् दूरतः परिवर्जय ॥ १३ ॥  
वेदवेदान्तविज्ञानसंछिन्नाशेषसंशयान् ।  
महायज्ञपरान् विप्रान् दूरतः परिवर्जय ॥ १४ ॥  
ये यजन्ति जपैर्होमैर्देवदेवं महेश्वरम् ।  
स्वाध्यायेनेज्यया दूरात् तान् प्रयत्नेन वर्जय ॥ १५ ॥

मैं प्रगाढ़ योगनिद्राका आश्रय लेकर शेष-शब्द्यामें पड़ा था । मुनिश्रेष्ठो ! रात्रिके बीत जानेपर जागकर मैं पुनः सृष्टिविषयक चिन्तन करने लगा । उसी समय अकस्मात् मुझे प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ ४ ॥

तदुपरान्त समस्त संसारके पितामह चतुर्मुख ब्रह्माका आविर्भाव हुआ । इसी बीच किसी कारणसे अकस्मात् उस समय क्रोध उत्पन्न हुआ । हे मुनिश्रेष्ठो ! (उस समय) क्रोधात्मज अपने तेजके द्वारा मानो त्रैलोक्यका संहार करनेके लिये हाथमें त्रिशूल धारण किये, तीन नेत्रोंवाले सूर्यके समान प्रकाशमान महेश्वर रुद्रदेव वहाँ उत्पन्न हुए ॥ ५-६ ॥

तदनन्तर कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली, सुन्दर रूप एवं प्रसन्न मुखवाली तथा सभी प्राणियोंको मोहित करनेवाली देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुई । पवित्र मुस्कानवाली, अत्यन्त प्रसन्न, मङ्गलमयी, अपनी महिमामें प्रतिष्ठित, दिव्य कान्तिसे सुसम्पन्न, दिव्य माल्य आदिसे सुशोभित, अविनाशिनी महामाया मूलप्रकृतिरूपा वे नारायणी अपने तेजसे इस (संसार)-को आपूरित करती हुई मेरे समीपमें आकर बैठ गयीं । उन्हें देखकर संसारके स्वामी भगवान् ब्रह्मा मुझसे कहने लगे—हे माधव ! सम्पूर्ण प्राणियोंको मोहित करनेके लिये इन सुरूपिणी (देवी)-को नियुक्त करो, जिससे यह मेरी सृष्टि और भी अधिक बढ़ने लगे ॥ ७-१० ॥

ब्रह्माके द्वारा ऐसा कहे जानेपर मैंने मुसकराते हुए देवी लक्ष्मीसे कहा—हे देवि ! मेरे आदेशसे तुम देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसे युक्त सम्पूर्ण विश्वको (अपनी मायासे) मोहित कर संसारमें प्रवृत्त करो । (किंतु) जो ज्ञानयोगमें निरत हैं, जितेन्द्रिय हैं, ब्रह्मनिष्ठ हैं, ब्रह्मवादी हैं, क्रोधशन्त्य हैं तथा सत्यपरायण हैं—ऐसे लोगोंको दूरसे ही छोड़ देना ॥ ११-१२ ॥

ध्यान करनेवाले, ममतारहित, शान्त, धार्मिक, वेदमें पारंगत, जप-परायण और तपस्वी विप्रोंको दूरसे ही छोड़ देना । वेद एवं वेदान्तके विशेष ज्ञानसे जिनके सम्पूर्ण संशय सर्वथा दूर हो गये हैं ऐसे तथा बड़े-बड़े यज्ञोंमें परायण द्विजोंको दूरसे ही छोड़ देना । जो जप, होम, यज्ञ एवं स्वाध्यायके द्वारा देवाधिदेव महेश्वरका यजन करते हैं, उनका प्रयत्नपूर्वक दूरसे ही परित्याग कर देना ॥ १३-१५ ॥

भक्तियोगसमायुक्तानीश्वरार्पितमानसान् ।  
प्राणायामादिषु रतान् दूरात् परिहरामलान्॥ १६ ॥

प्रणवासक्तमनसो रुद्रजप्यपरायणान् ।  
अथर्वशिरसोऽध्येतृन् धर्मज्ञान् परिवर्जय ॥ १७ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन स्वधर्मपरिपालकान् ।  
ईश्वराराधनरतान् मन्त्रियोगान्न मोहय ॥ १८ ॥  
एवं मया महामाया प्रेरिता हरिवल्लभा ।  
यथादेशं चकारासौ तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत् ॥ १९ ॥

श्रियं ददाति विपुलां पुष्टिं मेधां यशो बलम् ।  
अर्चिता भगवत्पत्नी तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत् ॥ २० ॥  
ततोऽसृजत् स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।  
चराचराणि भूतानि यथापूर्वं ममाज्ञया ॥ २१ ॥

मरीचिभृगवङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।  
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजद् योगविद्यया ॥ २२ ॥  
नवैते ब्रह्मणः पुत्रा ब्रह्मणो ब्राह्मणोत्तमाः ।  
ब्रह्मवादिन एवैते मरीच्याद्यास्तु साधकाः ॥ २३ ॥

ससर्ज ब्राह्मणान् वक्नात् क्षत्रियांश्च भुजाद् विभुः ।  
वैश्यानूरुद्धयाद् देवः पादाच्छूद्रान् पितामहः ॥ २४ ॥

यज्ञनिष्ठतये ब्रह्मा शूद्रवर्जं ससर्ज ह ।  
गुप्तये सर्ववेदानां तेभ्यो यज्ञो हि निर्बंभौ ॥ २५ ॥  
ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च ।  
ब्रह्मणः सहजं रूपं नित्यैषा शक्तिरव्यया ॥ २६ ॥

अनादिनिधना दिव्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।  
आदौ वेदमयी भूता यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥ २७ ॥

अतोऽन्यानि तु शास्त्राणि पृथिव्यां यानि कानिचित् ।  
न तेषु रमते धीरः पाषण्डी तेन जायते ॥ २८ ॥

जो भक्तियोगमें लगे हुए हैं, जिन्होंने अपना चित्त भगवान्को अर्पण कर दिया है और जो प्राणायाम (धारणा, ध्यान तथा समाधि) आदिमें निरत हैं, ऐसे अमलात्माओंका दूरसे ही त्याग कर देना । जिनका मन प्रणवोपासनामें आसक्त है, जो रुद्र (मन्त्रों)-का जप करनेवाले हैं और जो अथर्वशिरस्के अध्येता हैं, उन धर्मज्ञ व्यक्तियोंको छोड़ देना । और अधिक क्या कहा जाय, जो अपने धर्मका पालन करनेवाले हैं, ईश्वरकी आराधनामें सतत रत हैं, (हे देवि !) उन्हें मेरे आदेशसे कदापि मोहित न करना ॥ १६—१८ ॥

इस प्रकार मेरे द्वारा प्रेरित हरिप्रिया महामायाने जैसी मेरी आज्ञा थी, उसी प्रकार किया, इसलिये (उन) लक्ष्मीकी आराधना करनी चाहिये । भगवत्पत्नी (देवी महालक्ष्मी) पूजा किये जानेपर विपुल ऐश्वर्य, पुष्टि, मेधा, यश एवं बल प्रदान करती हैं, इसलिये लक्ष्मीकी भलीभाँति पूजा करनी चाहिये ॥ १९—२० ॥

तदनन्तर लोकपितामह भगवान् ने मेरी आज्ञासे पूर्वकी भाँति ही समस्त चराचर भूत—प्राणियोंकी सृष्टि की । योगविद्याके प्रभावसे ब्रह्माजीने मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि तथा वसिष्ठको उत्पन्न किया ॥ २१—२२ ॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! ब्रह्माके मरीचि आदि ये नौ 'ब्रह्मण'— संज्ञक पुत्र साधक हैं, ब्रह्मवादी हैं । पितामह विभु देव (ब्रह्मा)-ने मुखसे ब्राह्मणों तथा भुजासे क्षत्रियोंकी सृष्टि की । दोनों जंघाओंसे वैश्योंको तथा पैरसे शूद्रोंको उत्पन्न किया । ब्रह्माने यज्ञकी निष्पत्ति एवं सभी वेदोंकी रक्षाके लिये शूद्रके अतिरिक्त (अन्य सभी वर्णोंकी) सृष्टि की, क्योंकि उनसे यज्ञका निर्वाह होता है ॥ २३—२५ ॥

ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्ववेद ब्रह्माके सहज स्वरूप हैं और यह नित्य अव्यय शक्ति हैं । स्वयम्भू ब्रह्माजीने प्रारम्भमें आदि और अन्तसे रहित वेदमयी दिव्य वाग्रूपी शक्तिको उत्पन्न किया, जिसके द्वारा सभी व्यवहार होते हैं । पृथ्वीपर इन (वेदों)-से भिन्न जो कोई भी शास्त्र है उनमें धीर पुरुषका मन नहीं लगता क्योंकि ऐसे वेदातिरिक्त ग्रन्थोंके अध्ययनसे मनुष्य पाखंडी हो जाता है ॥ २६—२८ ॥

वेदार्थवित्तमैः कार्यं यत्स्मृतं मुनिभिः पुरा ।  
स ज्ञेयः परमो धर्मो नान्यशास्त्रेषु संस्थितः ॥ २९ ॥

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।  
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥ ३० ॥  
पूर्वकल्पे प्रजा जाताः सर्वबाधाविवर्जिताः ।  
शुद्धान्तःकरणाः सर्वाः स्वधर्मनिरताः सदा ॥ ३१ ॥

ततः कालवशात् तासां रागद्वेषादिकोऽभवत् ।  
अधर्मो मुनिशार्दूलाः स्वधर्मप्रतिबन्धकः ॥ ३२ ॥  
ततः सा सहजा सिद्धिस्तासां नातीव जायते ।  
रजोमात्रात्मिकास्तासां सिद्धयोऽन्यास्तदाभवन् ॥ ३३ ॥

तासु क्षीणास्वशेषासु कालयोगेन ताः पुनः ।  
वातीपायं पुनश्चकुर्हस्तसिद्धिं च कर्मजाम् ।  
ततस्तासां विभुर्ब्रह्मा कर्मजीवमकल्पयत् ॥ ३४ ॥  
स्वायम्भुवो मनुः पूर्व धर्मान् प्रोवाच धर्मदृक् ।  
साक्षात् प्रजापतेर्मूर्तिर्निसृष्टा ब्रह्मणा द्विजाः ।  
भृगवादयस्तद्वदनाच्छ्रुत्वा धर्मनिथोचिरे ॥ ३५ ॥

यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहम् ।  
अध्यापनं चाध्ययनं षट् कर्माणि द्विजोत्तमाः ॥ ३६ ॥

दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः ।  
दण्डो युद्धं क्षत्रियस्य कृषिवैश्यस्य शास्यते ॥ ३७ ॥

शुश्रूषैव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम् ।  
कारुकर्म तथाजीवः पाकयज्ञोऽपि धर्मतः ॥ ३८ ॥

वेदार्थ-ज्ञानमें श्रेष्ठ मुनियोंने प्राचीन समयमें जो कार्य (करने योग्य) बतलाया है, उसीको परम धर्म समझना चाहिये, (वह धर्म वेदातिरिक्त) अन्य शास्त्रोंमें प्रतिपादित नहीं है। वैदिक सिद्धान्तोंके विपरीत बातोंका प्रतिपादन करनेवाली जो स्मृतियाँ (धर्मशास्त्र) हैं और जो कोई भी कुर्दर्शन (नास्तिक दर्शन) हैं, पारलौकिक दृष्टिसे वे सभी निष्फल हैं, इसीलिये वे तामसी कहे गये हैं ॥ २९-३० ॥

पूर्व कल्पमें जो प्रजा उत्पन्न हुई थी, वह सभी बाधाओंसे रहित थी। सभी लोग निर्मल अन्तःकरणवाले थे और सर्वदा अपनी-अपनी धर्म-मर्यादामें स्थिर रहते थे। हे श्रेष्ठ मुनियो! कुछ समय बाद कालकी गतिके प्रभावसे उन (लोगों)-में राग, द्वेष (लोभ, मोह तथा क्रोध) आदि उत्पन्न हो गये और स्वधर्ममें बाधा डालनेवाला अधर्म भी उत्पन्न हो गया ॥ ३१-३२ ॥

(इस कारण) उस समय उनमें (जो पहले सात्त्विक) सहज सिद्धि थी, वह धीरे-धीरे कम होने लगी और रजोगुणमूलक जो अन्य सिद्धियाँ थीं, वे ही उन्हें प्राप्त हुईं। उन सभी (रजोगुणमूलक सिद्धियों)-के भी कालयोगसे क्षीण हो जानेपर वे वार्तोपाय अर्थात् कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्यरूपी जीविकाके उपाय और कर्मसाध्य (परिश्रमसाध्य) हस्तसिद्धि अर्थात् शिल्पशास्त्र (हाथोंके माध्यमसे किये जानेवाले शिल्प, मूर्ति-कला आदि)-के उपाय करने लगे। तब विभु ब्रह्माजीने उन लोगोंके लिये कर्म एवं आजीविकाकी व्यवस्था की ॥ ३३-३४ ॥

हे ब्राह्मणो! ब्रह्मासे उत्पन्न साक्षात् प्रजापतिस्वरूप धर्मदर्शी स्वायम्भुव मनुने पूर्वकालमें धर्मोंका उपदेश किया (जो मनुस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध हुई)। तदनन्तर उनके मुखसे उसे सुनकर भृगु आदि महर्षियोंने धर्मोंका वर्णन किया ॥ ३५ ॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, अध्ययन और अध्यापन—ये ब्राह्मणोंके छः कर्म हैं। दान, अध्ययन और यज्ञ—ये तीन क्षत्रिय और वैश्यके (सामान्य) धर्म हैं, दण्ड-विधान और युद्ध क्षत्रियका तथा कृषिकर्म वैश्यका प्रशस्त कर्म है। द्विजातीयोंकी सेवा करना शूद्रोंके लिये एकमात्र धर्मका साधन है। धर्मानुसार पाकयज्ञ तथा शिल्पविद्या उनकी आजीविका है ॥ ३६-३८ ॥

ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान् ।  
गृहस्थं च वनस्थं च भिक्षुकं ब्रह्मचारिणम् ॥ ३९ ॥

अग्रयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञे दानं सुरार्चनम् ।  
गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽयं मुनिपुंगवाः ॥ ४० ॥  
होमो मूलफलाशित्वं स्वाध्यायस्तप एव च ।  
संविभागो यथान्यायं धर्मोऽयं वनवासिनाम् ॥ ४१ ॥  
भैक्षाशनं च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः ।  
सम्यग्ज्ञानं च वैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मतः ॥ ४२ ॥  
भिक्षाचर्या च शुश्रूषा गुरोः स्वाध्याय एव च ।  
संध्याकर्माग्निकार्यं च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणाम् ॥ ४३ ॥  
ब्रह्मचारिवनस्थानां भिक्षुकाणां द्विजोत्तमाः ।  
साधारणं ब्रह्मचर्यं प्रोवाच कमलोद्धवः ॥ ४४ ॥

ऋतुकालाभिगमित्वं स्वदारेषु न चान्यतः ।  
पर्ववर्जं गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम् ॥ ४५ ॥

आगर्भसम्भवादाद्यात् कार्यं तेनाप्रमादतः ।  
अकुर्वाणस्तु विप्रेन्द्रा भूणहा तु प्रजायते ॥ ४६ ॥  
वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या श्राद्धं चातिथिपूजनम् ।  
गृहस्थस्य परो धर्मो देवताभ्यर्चनं तथा ॥ ४७ ॥

वैवाह्यग्रिमित्थीत सायं प्रातर्यथाविधि ।  
देशान्तरगतो वाथ मृतपल्लीक एव वा ॥ ४८ ॥  
त्रयाणामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनिरुच्यते ।  
अन्ये तमुपजीवन्ति तस्माच्छ्रेयान् गृहाश्रमी ॥ ४९ ॥

ऐकाश्रम्यं गृहस्थस्य त्रयाणां श्रुतिदर्शनात् ।  
तस्माद् गार्हस्थ्यमेवैकं विज्ञेयं धर्मसाधनम् ॥ ५० ॥

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ।  
सर्वलोकविरुद्धं च धर्ममप्याचरेन्न तु ॥ ५१ ॥

तदनन्तर वर्णोंकी व्यवस्था स्थिर हो जानेपर (उन्होंने) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास (इन चार) आश्रमोंकी स्थापना की ॥ ३९ ॥

हे मुनिश्रेष्ठो ! अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि)-की उपासना, अतिथि-सेवा, यज्ञ, दान एवं देवताओंकी पूजा—यह संक्षेपमें गृहस्थका धर्म है । हवन, कन्द-मूल-फलका सेवन, स्वाध्याय तथा तप, न्यायपूर्वक (सम्पत्तिका) विभाजन—यह वानप्रस्थोंका धर्म है । भिक्षावृत्तिसे प्राप्त पदार्थोंका सेवन, मौनव्रत, तप, सम्यक्-ध्यान, सम्यक्-ज्ञान तथा वैराग्य—यह संन्यासियोंका धर्म है । भिक्षा माँगना, गुरुकी सेवा करना, स्वाध्याय, संध्याकर्म तथा अग्निकार्य—यह ब्रह्मचारियोंका धर्म है ॥ ४०—४३ ॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! कमलसे प्रादुर्भूत ब्रह्माजीने ब्रह्मचर्यको ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासीका साधारण धर्म कहा है अर्थात् ब्रह्मचर्य तीनों आश्रमियोंका सामान्य धर्म है । ऋतुकाल (स्त्रीके रजस्वलाकी चार रात्रियोंको छोड़कर) — में, विशेष पर्वोंको छोड़कर अपनी पत्नीमें गमन करना गृहस्थके लिये 'ब्रह्मचर्य' ही कहा गया है, अन्य रात्रियोंमें नहीं । प्रथम गर्भ धारण करनेतक उसे बिना किसी प्रमादके इस नियमका पालन करना चाहिये । हे विप्रेन्द्रो ! ऐसा न करनेवाला (गृहस्थ) भ्रूणघाती होता है ॥ ४४—४६ ॥

यथाशक्ति प्रतिदिन वेदका स्वाध्याय, श्राद्ध, अतिथि-सेवा तथा देवताओंकी पूजा—यह गृहस्थका श्रेष्ठ धर्म है । किसी दूसरे देशमें जानेपर अथवा पत्नीके मर जानेपर भी गृहस्थको चाहिये कि वह प्रातःकाल और सायंकाल विधिपूर्वक विवाहग्नि (गार्हपत्यग्नि)-को प्रचलित करता रहे ॥ ४७—४८ ॥

गृहस्थ-आश्रमको तीनों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास)-का बीज कहा जाता है, क्योंकि तीनों आश्रमोंके लोग गृहस्थाश्रमीपर ही निर्भर रहते हैं, इसलिये गृहस्थाश्रमी सर्वश्रेष्ठ कहा गया है । वेदोंका अभिमत है कि केवल गृहस्थाश्रममें ही अन्य तीनों आश्रमोंका (समावेश) होता है, इसलिये एकमात्र गार्हस्थ्यको ही धर्मका साधन जानना चाहिये ॥ ४९—५० ॥

धर्मसे रहित जो अर्थ एवं काम नामक (पुरुषार्थ) हैं, उनका परित्याग करना चाहिये । साथ ही सभी प्रकारसे जो लोकविरुद्ध हो उस धर्मका भी आचरण नहीं करना चाहिये ॥ ५१ ॥

धर्मात् संजायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽभिजायते।  
धर्म एवापवर्गाय तस्माद् धर्म समाश्रयेत्॥ ५२ ॥

धर्मश्वार्थश्च कामश्च त्रिवर्गस्त्रिगुणो मतः।  
सत्त्वं रजस्तमश्चेति तस्माद्धर्म समाश्रयेत्॥ ५३ ॥

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।  
जघन्यगुणवृत्तिस्था अथो गच्छन्ति तामसाः॥ ५४ ॥

यस्मिन् धर्मसमायुक्तावर्थकामौ व्यवस्थितौ।  
इह लोके सुखी भूत्वा प्रेत्यानन्त्याय कल्पते॥ ५५ ॥  
धर्मात् संजायते मोक्षो ह्यर्थात् कामोऽभिजायते।  
एवं साधनसाध्यत्वं चातुर्विध्ये प्रदर्शितम्॥ ५६ ॥

य एवं वेद धर्मार्थकाममोक्षस्य मानवः।  
माहात्म्यं चानुतिष्ठेत स चानन्त्याय कल्पते॥ ५७ ॥

तस्मादर्थं च कामं च त्यक्त्वा धर्म समाश्रयेत्।  
धर्मात् संजायते सर्वमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः॥ ५८ ॥  
धर्मेण धार्यते सर्वं जगत् स्थावरजड़मम्।  
अनादिनिधना शक्तिः सैषा ब्राह्मी द्विजोत्तमाः॥ ५९ ॥

कर्मणा प्राप्यते धर्मो ज्ञानेन च न संशयः।  
तस्माज्ञानेन सहितं कर्मयोगं समाचरेत्॥ ६० ॥  
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्।  
ज्ञानपूर्वं निवृत्तं स्यात् प्रवृत्तं यदतोऽन्यथा॥ ६१ ॥

निवृत्तं सेवमानस्तु याति तत् परमं पदम्।  
तस्मान्निवृत्तं संसेव्यमन्यथा संसरेत् पुनः॥ ६२ ॥

धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, धर्मसे ही कामकी भी सिद्धि होती है और धर्म (-के आचरण)-से ही मोक्ष प्राप्त होता है, इसलिये धर्मका ही आश्रय लेना चाहिये ॥ ५२ ॥

धर्म, अर्थ और कामरूपी त्रिवर्ग (क्रमशः) सत्त्व, रज और तमरूपी त्रिगुणसे युक्त है, इसलिये धर्मका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। सात्त्विक गुणोंका आश्रय लेनेवाले ऊर्ध्व लोकको प्राप्ति करते हैं, राजसी व्यक्ति मध्य लोकमें रहते हैं तथा तमोगुणके कार्यमें स्थित तामसी व्यक्ति अधोगतिको प्राप्ति होते हैं। जिस व्यक्तिमें धर्मसे समन्वित अर्थ और काम प्रतिष्ठित रहते हैं, वह इस लोकमें सुखोंका उपभोग कर मृत्युके उपरान्त मोक्ष प्राप्त करनेमें समर्थ होता है ॥ ५३—५५ ॥

धर्मसे (धर्माचरणसे) मोक्षकी प्राप्ति होती है और अर्थसे कामकी सिद्धि होती है। इस प्रकार चार प्रकारके पुरुषार्थोंमें साधन और साध्यका वर्णन दिखाया गया। जो मानव धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षके इस प्रकार बताये गये माहात्म्यको जानता है और तदनुसार आचरण करता है, वह मोक्ष (प्राप्ति) करनेमें समर्थ होता है। इसलिये (धर्मविरुद्ध) अर्थ एवं काम (-रूपी पुरुषार्थ)-का सर्वथा परित्याग कर धर्मका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये। धर्मसे ही सब कुछ सिद्ध हो जाता है—ऐसा ब्रह्मवादियोंका कहना है ॥ ५६—५८ ॥

धर्मके द्वारा ही स्थावर-जंगमात्मक सारा विश्व धारण किया जाता है। हे द्विजोत्तमो ! यह (धर्मशक्ति) ब्रह्माजीकी वह ब्राह्मी शक्ति है जो आदि और अन्तसे रहित है। कर्म एवं ज्ञान—दोनोंके द्वारा ही धर्मकी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं। इसलिये ज्ञानके\* साथ ही कर्मयोगका भी आचरण ग्रहण करना चाहिये ॥ ५९—६० ॥

प्रवृत्त एवं निवृत्त—इस प्रकारसे वैदिक कर्म दो प्रकारका होता है। निवृत्तकर्म ज्ञानपूर्वक एवं प्रवृत्तकर्म इससे भिन्न प्रकारका होता है। निवृत्तकर्मका सेवन करनेवाला उस परमपद (मोक्ष)-को प्राप्ति करता है। अतः निवृत्तकर्म (निवृत्तिमार्ग)-का ही सेवन करना चाहिये, इससे अन्यथा करनेपर पुनः संसारमें आना पड़ता है ॥ ६१—६२ ॥

\* यहाँ ज्ञानका तात्पर्य धर्मज्ञानसे है, आत्मज्ञानसे नहीं।

क्षमा दमो दया दानमलोभस्त्याग एव च।  
आर्जवं चानसूया च तीर्थनुसरणं तथा ॥ ६३ ॥

सत्यं संतोष आस्तिक्यं श्रद्धा चेन्द्रियनिग्रहः।  
देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ॥ ६४ ॥

अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमकल्कता।  
सामासिकमिमं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ ६५ ॥  
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम्।  
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ॥ ६६ ॥

वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्तताम्।  
गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारेण वर्तताम् ॥ ६७ ॥  
अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्धर्वरेतसाम्।  
स्मृतं तेषां तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥ ६८ ॥

समर्षीणां तु यत्स्थानं स्मृतं तद् वै वनौकसाम्।  
प्राजापत्यं गृहस्थानां स्थानमुक्तं स्वयम्भुवा ॥ ६९ ॥  
यतीनां यतचित्तानां न्यासिनामूर्धर्वरेतसाम्।  
हैरण्यगर्भं तत् स्थानं यस्मान्नावर्तते पुनः ॥ ७० ॥

योगिनाममृतं स्थानं व्योमाख्यं परमाक्षरम्।  
आनन्दमैश्वरं धाम सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ७१ ॥

ऋषय ऊचुः

भगवन् देवतारिघ्नि हिरण्याक्षनिषूदन।  
चत्वारो ह्याश्रमाः प्रोक्ता योगिनामेक उच्यते ॥ ७२ ॥

श्रीकूर्म उवाच

सर्वकर्माणि संन्यस्य समाधिमचलं श्रितः।  
य आस्ते निश्चलो योगी संन्यासी न पञ्चमः ॥ ७३ ॥

सर्वेषामाश्रमाणां तु द्वैविध्यं श्रुतिदर्शितम्।  
ब्रह्मचार्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्परः ॥ ७४ ॥

क्षमा, दम (इन्द्रियनिग्रह), दया, दान, अलोभ, त्याग, आर्जव (मन-वाणी आदिकी सरलता), अनसूया, तीर्थनुसरण अर्थात् गुरु एवं शास्त्रका अनुगमन या तीर्थसेवन, सत्य, संतोष, आस्तिकता (वेदादि शास्त्रोंमें श्रद्धा), श्रद्धा, जितेन्द्रियत्व, देवताओंका अर्चन, विशेष रूपसे ब्राह्मणोंकी पूजा, अहिंसा, मधुर भाषण, अपिशुनता तथा पापसे राहित्य—स्वायम्भुव मनुने चारों वर्णोंके लिये ये सामान्य धर्म कहे हैं ॥ ६३—६५ ॥

अपने ब्राह्मण-धर्मका यथावत् पालन करनेवाले क्रियानिष्ठ ब्राह्मणोंके लिये प्राजापत्य स्थान (प्राजापत्य लोक) तथा संग्राममें पलायन न करनेवाले क्षत्रियोंके लिये ऐन्द्रस्थान (इन्द्रलोक) सुनिश्चित है। इसी प्रकार स्वधर्मका पालन करनेवाले वैश्योंके लिये मारुत-स्थान (वायुलोक) और परिचर्यारूप स्वधर्मका पालन करनेवाले शूद्रजातिवालोंके लिये गन्धर्वलोक सुनिश्चित है ॥ ६६—६७ ॥

ऊर्ध्वरेता अद्वासी हजार (शौनक आदि) ऋषियोंका जो स्थान है, वही स्थान गुरुके अन्तेवासी ब्रह्मचारियोंको प्राप्त होता है। सप्तर्षियोंका जो स्थान है, वही स्थान वनमें रहनेवाले वानप्रस्थियोंको प्राप्त होता है और स्वयम्भू ब्रह्माने गृहस्थोंके लिये प्राजापत्य स्थान (प्राजापत्य लोक)-की प्राप्ति बतलायी है ॥ ६८—६९ ॥

समाहित-चित्त यतात्मा ऊर्ध्वरेता संन्यासियोंको हिरण्यगर्भ नामक वह स्थान प्राप्त होता है, जहाँसे पुनः लौटना नहीं पड़ता। योगियोंको अविनाशी वह व्योमसंज्ञक श्रेष्ठ अमरस्थान प्राप्त होता है जो आनन्दस्वरूप और ऐश्वर धाम है, वही पराकाष्ठा (अन्तिम) और परम गति है ॥ ७०—७१ ॥

ऋषियोंने कहा—देवताओंके शत्रुओंका विनाश करनेवाले, हिरण्याक्षका वध करनेवाले हे भगवन्! (आपने) चार आश्रम बताये (किंतु) योगियोंके लिये एक ही आश्रम बतलाया ॥ ७२ ॥

श्रीकूर्मने कहा—सभी कर्मोंका परित्याग कर एकमात्र अचल समाधिमें निरन्तर स्थिर रहनेवाला जो निश्चल योगी है, वही संन्यासी होता है, अतः (चार ही आश्रम होते हैं) पाँचवाँ कोई आश्रम नहीं होता। वेदमें बतलाया गया है कि सभी आश्रम दो प्रकारके होते हैं। ब्रह्मचारीके दो भेद हैं—उपकुर्वाण और नैष्ठिक ब्रह्मतत्पर ॥ ७३—७४ ॥

योऽधीत्य विधिवद्वेदान् गृहस्थाश्रममावजेत्।  
उपकुर्वाणिको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः ॥ ७५ ॥

उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत्।  
कुटुम्बभरणे यत्तः साधकोऽसौ गृही भवेत् ॥ ७६ ॥

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम्।  
एकाकी यस्तु विचरेदुदासीनः स मौक्षिकः ॥ ७७ ॥  
तपस्तत्प्रति योऽरण्ये यजेद् देवान् जुहोति च।  
स्वाध्याये चैव निरतो वनस्थस्तापसो मतः ॥ ७८ ॥

तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत्।  
सांन्यासिकः स विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः ॥ ७९ ॥  
योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रियः।  
ज्ञानाय वर्तते भिक्षुः प्रोच्यते पारमेष्ठिकः ॥ ८० ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृसो महामुनिः।  
सम्यग् दर्शनसम्पन्नः स योगी भिक्षुरुच्यते ॥ ८१ ॥  
ज्ञानसंन्यासिनः केचिद् वेदसंन्यासिनोऽपरे।  
कर्मसंन्यासिनः केचित् त्रिविधाः पारमेष्ठिकाः ॥ ८२ ॥

योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिकः सांख्य एव च।  
तृतीयोऽत्याश्रमी प्रोक्तो योगमुत्तममास्थितः ॥ ८३ ॥

प्रथमा भावना पूर्वे सांख्ये त्वक्षरभावना।  
तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी ॥ ८४ ॥

तस्मादेतद् विजानीध्वमाश्रमाणां चतुष्टयम्।  
सर्वेषु वेदशास्त्रेषु पञ्चमो नोपपद्यते ॥ ८५ ॥

जो ब्रह्मचारी विधिवत् वेदोंका अध्ययन कर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता है, उसे उपकुर्वाणिक ब्रह्मचारी समझना चाहिये और जो यावज्जीवन गुरुके पास रहकर ब्रह्मविद्याका अभ्यास करता है, वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहलाता है ॥ ७५ ॥

(इसी प्रकार) गृहस्थाश्रमी भी दो प्रकारका होता है—(१) उदासीन और (२) साधक। जो कुटुम्बके भरण-पोषणमें लगा रहता है, वह गृहस्थ साधक कहलाता है और जो देवऋण, पितृऋण एवं ऋषिऋण—इन तीन ऋणोंसे उत्तरण होकर स्त्री, धन आदिका परित्याग कर देता है तथा एकाकी विचरण करता है, वह मोक्ष-प्राप्तिकी इच्छावाला गृहस्थ उदासीन कहलाता है ॥ ७६-७७ ॥

जो वनमें अनुष्ठान करता है, देवताओंकी पूजा करता है, हवन करता है और स्वाध्यायमें निरत रहता है, वह वनमें रहनेवाला ‘तापस’ नामक वानप्रस्थ कहलाता है और जो अत्यन्त तपसे अपने शरीरको कृश कर लेता है तथा निरन्तर ध्यानपरायण रहता है, वह वानप्रस्थ-आश्रममें रहनेवाला सांन्यासिक वानप्रस्थी कहलाता है ॥ ७८-७९ ॥

नित्य योगाभ्यासमें रत रहनेवाला, मोक्षमार्गमें आरुढ़ होनेकी इच्छावाला, जितेन्द्रिय तथा ज्ञानप्राप्तिके लिये प्रयत्नशील संन्यासीको ‘पारमेष्ठिक’ संन्यासी कहा जाता है और जो केवल आत्मामें ही रमण करनेवाला है, नित्य-तृप्त महामुनि है, सम्यक्-दर्शन-सम्पन्न है वह संन्यासी ‘योगी’ कहलाता है ॥ ८०-८१ ॥

पारमेष्ठिक (संन्यासी)-के तीन भेद होते हैं—(१) कोई ज्ञानसंन्यासी होते हैं, (२) कोई वेदसंन्यासी होते हैं और (३) कोई कर्मसंन्यासी होते हैं। (इसी प्रकार) योगी भी तीन प्रकारका समझना चाहिये—पहला भौतिक, दूसरा सांख्य और तीसरे प्रकारका योगी अत्याश्रमी कहा गया है, जो श्रेष्ठ योगमें ही नित्य स्थित रहता है। पहले भौतिक योगीमें प्रथम भावना, (दूसरे) सांख्ययोगीमें अक्षर-भावना और तीसरे अत्याश्रमी नामक योगीमें जो अन्तिम भावना रहती है, वह पारमेश्वरी भावना कहलाती है ॥ ८२-८४ ॥

इसीलिये (हे ऋषियो !) सभी वेदशास्त्रोंमें चार ही आश्रम निश्चित किये गये हैं, ऐसा जानना चाहिये। पाँचवाँ कोई आश्रम नहीं है ॥ ८५ ॥

एवं वर्णश्रमान् सृष्टा देवदेवो निरञ्जनः ।  
दक्षादीन् प्राह विश्वात्मा सृजध्वं विविधाः प्रजाः ॥ ८६ ॥

ब्रह्मणो वचनात् पुत्रा दक्षाद्या मुनिसत्तमाः ।  
असृजन्त प्रजाः सर्वा देवमानुषपूर्विकाः ॥ ८७ ॥

इत्येष भगवान् ब्रह्मा स्वरूपत्वे स व्यवस्थितः ।  
अहं वै पालयामीदं संहरिष्यति शूलभृत् ॥ ८८ ॥

तिस्वस्तु मूर्तयः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।  
रजःसत्त्वतमोयोगात् परस्य परमात्मनः ॥ ८९ ॥

अन्योन्यमनुरक्तास्ते ह्यन्योन्यमुपजीविनः ।  
अन्योन्यं प्रणताश्चैव लीलया परमेश्वराः ॥ ९० ॥  
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव तथैवाक्षरभावना ।  
तिस्वस्तु भावना रुद्रे वर्तन्ते सततं द्विजाः ॥ ९१ ॥

प्रवर्तते मव्यजस्त्वमाद्या चाक्षरभावना ।  
द्वितीया ब्रह्मणः प्रोक्ता देवस्याक्षरभावना ॥ ९२ ॥  
अहं चैव महादेवो न भिन्नो परमार्थतः ।  
विभज्य स्वेच्छयात्मानं सोऽन्तर्यामीश्वरः स्थितः ॥ ९३ ॥

त्रैलोक्यमखिलं स्वरूपं सदेवासुरमानुषम् ।  
पुरुषः परतोऽव्यक्ताद् ब्रह्मत्वं समुपागमत् ॥ ९४ ॥  
तस्माद् ब्रह्मा महादेवो विष्णुर्विश्वेश्वरः परः ।  
एकस्यैव स्मृतास्तिस्वस्तनूः कार्यवशात् प्रभोः ॥ ९५ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वन्द्याः पूज्याः प्रयत्नतः ।  
यदीच्छेदचिरात् स्थानं यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम् ॥ ९६ ॥

वर्णश्रमप्रयुक्तेन धर्मेण प्रीतिसंयुतः ।  
पूजयेद् भावयुक्तेन यावज्जीवं प्रतिज्ञया ॥ ९७ ॥

इस प्रकार (चार) वर्ण तथा (चार) आश्रमोंकी सृष्टि करके देवाधिदेव निरञ्जन विश्वात्मा (ब्रह्माजी)-ने दक्ष आदि (प्रजापतियों)-से कहा—‘अनेक प्रकारकी सृष्टि करो’। हे मुनिश्रेष्ठो! ब्रह्माजीके कहनेपर उनके दक्ष आदि (मानस) पुत्रोंने देवताओं एवं मनुष्योंके साथ ही अन्य भी सभी प्रजाओं (प्राणियों)-की सृष्टि की ॥ ८६-८७ ॥

इस प्रकार ये भगवान् ब्रह्मा सृष्टिके कार्यमें नियत हैं। मैं इस (सृष्टि)-का पालन-पोषण करता हूँ और शूलधारी भगवान् शंकर इसका संहार करेंगे ॥ ८८ ॥

परात्पर परमात्माकी रज, सत्त्व एवं तमोगुणके योगसे (क्रमशः) ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर नामक तीन मूर्तियाँ कही गयी हैं। ये तीनों विग्रह परस्पर एक-दूसरेमें अनुरक्त तथा एक-दूसरेके उपजीवी (आश्रित) हैं। ये तीनों परमेश्वर हैं और लीलावश एक-दूसरेको प्रणाम करते रहते हैं ॥ ९१-९० ॥

हे ब्राह्मणो! रुद्रमें ब्राह्मी, माहेश्वरी तथा अक्षर (वैष्णवी) नामक तीन प्रकारकी भावनाएँ सर्वदा विद्यमान रहती हैं। मुझमें प्रथम अक्षरभावना निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। भगवान् ब्रह्माजीकी द्वितीय अक्षरभावना कही गयी है ॥ ९१-९२ ॥

पारमार्थिक दृष्टिसे मुझमें और महादेवमें कोई भिन्नता नहीं है। वही अन्तर्यामी ईश्वर अपनी इच्छासे अपनेको विभाजित कर (मेरे तथा महादेवके रूपमें) स्थित है। देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंके साथ ही सम्पूर्ण त्रैलोक्यकी सृष्टि करनेके लिये (इसी परम) पुरुषने अपने परात्पर अव्यक्त स्वरूपद्वारा ब्रह्मत्वको स्वीकार किया अर्थात् वे ही अव्यक्त परमात्मा सृष्टि करनेके लिये ब्रह्माके रूपमें व्यक्त हुए ॥ ९३-९४ ॥

अतः ब्रह्मा, महादेव एवं परात्पर विश्वेश्वर भगवान् विष्णु (ये तीनों ही) पृथक्-पृथक् कार्यकी दृष्टिसे एक ही प्रभुकी तीन मूर्तियाँ कही गयी हैं। इसलिये सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे विशेषतः (ये तीनों ही) वन्दनीय हैं, पूजनीय हैं। मोक्ष नामसे कहे जानेवाले उस अविनाशी स्थानको यदि शीघ्र ही प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो वर्णश्रम-धर्मके नियमोंका अत्यन्त प्रीतिपूर्वक पालन करते हुए प्रतिज्ञापूर्वक बड़े श्रद्धाभावसे जीवनपर्यन्त इन (त्रिदेवों)-का पूजन करना चाहिये ॥ ९५-९७ ॥

चतुर्णामाश्रमाणां तु प्रोक्तोऽयं विधिवद्द्विजाः ।  
आश्रमो वैष्णवो ब्राह्मो हराश्रम इति त्रयः ॥ ९८ ॥

तल्लिङ्गधारी सततं तद्भक्तजनवत्सलः ।  
ध्यायेदथार्चयेदेतान् ब्रह्मविद्यापरायणः ॥ ९९ ॥  
सर्वेषामेव भक्तानां शम्भोर्लिङ्गमनुत्तमम् ।  
सितेन भस्मना कार्यं ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम् ॥ १०० ॥

यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नः परमं पदम् ।  
धारयेत् सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिभिः ॥ १०१ ॥

प्रपन्ना ये जगद्बीजं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।  
तेषां ललाटे तिलकं धारणीयं तु सर्वदा ॥ १०२ ॥  
योऽसावनादिर्भूतादिः कालात्मासौ धृतो भवेत् ।  
उपर्यथो भावयोगात् त्रिपुण्ड्रस्य तु धारणात् ॥ १०३ ॥

यत्तत् प्रधानं त्रिगुणं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।  
धृतं त्रिशूलधरणाद् भवत्येव न संशयः ॥ १०४ ॥

ब्रह्मतेजोमयं शुक्लं यदेतन्मण्डलं रवेः ।  
भवत्येव धृतं स्थानमैश्वरं तिलके कृते ॥ १०५ ॥

तस्मात् कार्यं त्रिशूलाङ्कं तथा च तिलकं शुभम् ।  
त्रियायुषं च भक्तानां त्रयाणां विधिपूर्वकम् ॥ १०६ ॥

यजेत् जुहुयादग्नौ जपेद् दद्याजितेन्द्रियः ।  
शान्तो दान्तो जितक्रोधो वर्णश्रमविधानवित् ॥ १०७ ॥

एवं परिचरेद् देवान् यावज्जीवं समाहितः ।  
तेषां संस्थानमचलं सोऽचिरादधिगच्छति ॥ १०८ ॥

हे ब्राह्मणो ! विधिपूर्वक इस प्रकार चारों आश्रमोंका वर्णन किया गया । (इनमें) वैष्णव, ब्राह्म तथा हर (शैव) नामक तीन आश्रम (सम्प्रदाय) होते हैं । उन (शैव, वैष्णव तथा ब्राह्म आश्रमों)-का लिङ्ग (चिह्न)धारणकर उस (देवता)-के भक्तजनोंके प्रति प्रेम रखते हुए ब्रह्मविद्यापरायण व्यक्तिको चाहिये कि वह इन देवोंका निरन्तर ध्यान करे, पूजन करे ॥ ९८-९९ ॥

शिवके सभी भक्तोंके लिये (चिह्न-रूपमें) शिवलिङ्ग धारण करना श्रेष्ठ है । शैवोंको चाहिये कि वे श्वेत भस्मसे ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करें । जो परम पद (-स्वरूप) भगवान् नारायणके शरणागत (भक्त) हो उसे ललाटपर (कस्तूरी आदिके) सुगन्धित जलसे त्रिशूल (-की आकृति)-का तिलक सर्वदा धारण करना चाहिये । जो संसारके बीज परमेष्ठी ब्रह्माके भक्त हैं, उन्हें ललाटपर सर्वदा तिलक धारण करना चाहिये ॥ १००—१०२ ॥

ऊपर-नीचे भावपूर्वक त्रिपुण्ड्रके धारण करनेसे अनादि (होते हुए भी) जो प्राणियोंका आदि है, कालात्मा है उसका धारण करना हो जाता है । त्रिशूल (चिह्न)-के धारण करनेसे जो वह त्रिगुणात्मक प्रधान ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवस्वरूप है निश्चयरूपसे उसका धारण हो जाता है । तिलक लगानेसे जो आदित्यमण्डलका प्रकाशमान ब्रह्मतेजोमय ऐश्वरयुक्त स्थान है उसका धारण हो जाता है ॥ १०३—१०५ ॥

इसलिये (शैव, वैष्णव तथा ब्राह्म) तीनों प्रकारके भक्तोंको विधिपूर्वक मङ्गलमय तथा दीर्घ आयु प्रदान करनेवाले त्रिशूलके चिह्न तथा तिलकको धारण करना चाहिये ॥ १०६ ॥

वर्ण तथा आश्रमके विधि-विधानको जाननेवाले शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय तथा क्रोधजयीको यज्ञ, अग्निमें हवन, जप तथा दान करना चाहिये । इस प्रकार यावज्जीवन समाहित-मन होकर देवोंकी आराधना करनी चाहिये । ऐसा करनेसे उसे शीघ्र ही अचल स्थानकी प्राप्ति होती है ॥ १०७-१०८ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्राणां संहितायां पूर्वविभागे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

## तीसरा अध्याय

**आश्रमधर्मका वर्णन, संन्यास ग्रहण करनेका क्रम, ब्रह्मार्पणका  
लक्षण तथा निष्कामकर्मयोगकी महिमा**

ऋषय ऊचुः

**वर्णा भगवतोद्दिष्टाश्चत्वारोऽप्याश्रमास्तथा ।  
इदानीं क्रममस्माकमाश्रमाणां वद प्रभो ॥ १ ॥**

श्रीकूर्म उवाच

**ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।  
क्रमेणैवाश्रमाः प्रोक्ताः कारणादन्यथा भवेत् ॥ २ ॥  
उत्पन्नज्ञानविज्ञानो वैराग्यं परमं गतः ।  
प्रव्रजेद् ब्रह्मचर्यात् तु यदीच्छेत् परमां गतिम् ॥ ३ ॥**

**दारानाहृत्य विधिवदन्यथा विविधैर्मखैः ।  
यजेदुत्पादयेत् पुत्रान् विरक्तो यदि संन्यसेत् ॥ ४ ॥  
अनिष्टा विधिवद् यज्ञेरनुत्पाद्य तथात्मजम् ।  
न गार्हस्थ्यं गृही त्यक्त्वा संन्यसेद् बुद्धिमान् द्विजः ॥ ५ ॥**

**अथ वैराग्यवेगेन स्थातुं नोत्सहते गृहे ।  
तत्रैव संन्यसेद् विद्वाननिष्टापि द्विजोत्तमः ॥ ६ ॥  
अन्यथा विविधैर्यज्ञैरिष्टा वनमथाश्रयेत् ।  
तपस्तप्त्वा तपोयोगाद् विरक्तः संन्यसेद् यदि ॥ ७ ॥**

**वानप्रस्थाश्रमं गत्वा न गृहं प्रविशेत् पुनः ।  
न संन्यासी वनं चाथ ब्रह्मचर्यं न साधकः ॥ ८ ॥  
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा द्विजः ।  
प्रव्रजेत गृही विद्वान् वनाद् वा श्रुतिचोदनात् ॥ ९ ॥**

**प्रकर्तुमसमर्थोऽपि जुहोतियजतिक्रियाः ।  
अन्थः पंगुर्दरिद्रो वा विरक्तः संन्यसेद् द्विजः ॥ १० ॥**

**सर्वेषामेव वैराग्यं संन्यासाय विधीयते ।  
पतत्येवाविरक्तो यः संन्यासं कर्तुमिच्छति ॥ ११ ॥**

ऋषियोंने कहा—प्रभो! आपने चारों वर्णों तथा चारों आश्रमोंका वर्णन किया। अब हमें आश्रमोंका क्रम बतलायें ॥ १ ॥

**श्रीकूर्म बोले—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास—ये क्रमसे आश्रम कहे गये हैं। किसी कारणसे (इस क्रममें) परिवर्तन भी होता है ॥ २ ॥**

जो ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न हो तथा परम वैराग्यको प्राप्त हो गया हो ऐसा ब्रह्मचारी यदि परमगतिको प्राप्त करना चाहे तो वह ब्रह्मचर्य-आश्रमसे (सीधे) संन्यास ग्रहण कर ले। इसके विपरीत (अर्थात् ब्रह्मचर्य-आश्रमसे सीधे संन्यास न ग्रहण कर) विधिपूर्वक स्त्रीसे विवाह कर विविध यज्ञोंका अनुष्ठान करते हुए पुत्रोंको उत्पन्न करे और विरक्त होनेपर संन्यास ग्रहण करे ॥ ३-४ ॥

**बुद्धिमान् गृहस्थ द्विजको चाहिये कि वह विधिपूर्वक यज्ञोंका अनुष्ठान तथा पुत्रोंको उत्पन्न किये बिना गृहस्थ-आश्रमका परित्यागकर संन्यास ग्रहण न करे। श्रेष्ठ विद्वान् द्विज यदि तीव्र वैराग्यके वेगके कारण गृहस्थाश्रममें रहनेके लिये उत्सुक न हो तो यज्ञ किये बिना भी वहीं संन्यास ग्रहण कर ले ॥ ५-६ ॥**

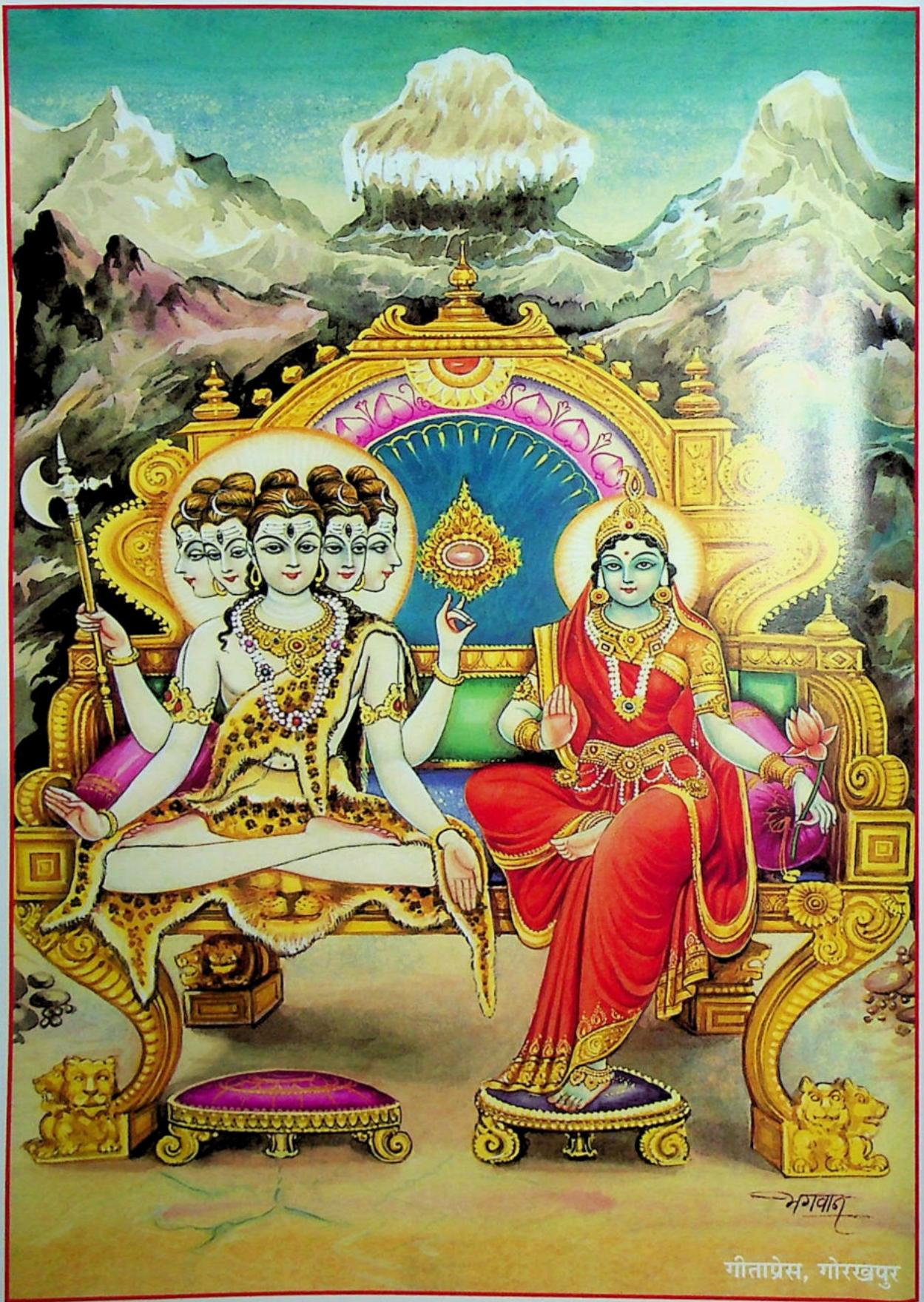
अन्यथा विविध यज्ञोंका सम्पादन कर वनका आश्रम लेना चाहिये एवं तपोयोगद्वारा तप करनेके बाद यदि विराग हो जाय तो संन्यास लेना चाहिये। वानप्रस्थ-आश्रम ग्रहण कर फिर गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश नहीं करना चाहिये, न संन्यासी वानप्रस्थ-आश्रममें वापस आये और न साधक गृहस्थ ब्रह्मचर्याश्रममें वापस लौटे ॥ ७-८ ॥

**विद्वान् गृहस्थ द्विज प्राजापत्य इष्टि अथवा आप्नेयी इष्टिका सम्पादन कर संन्यास ग्रहण करे या वैदिक विधानसे वानप्रस्थसे (संन्यास-आश्रममें) प्रवेश करे। हवन तथा यज्ञ-सम्बन्धी क्रियाओंको करनेमें असमर्थ होनेपर भी अन्धा, लँगड़ा अथवा दरिद्र द्विज वैराग्य होनेपर संन्यास ग्रहण करे। सभीके लिये संन्यासके निमित्त वैराग्यका विधान किया गया है। जो आसक्तियुक्त पुरुष संन्यास-आश्रम ग्रहण करना चाहता है वह अवश्य ही पतित हो जाता है ॥ ९-११ ॥**

श्रीशिव-पार्वतीद्वारा श्रीकृष्णको वरदान

गीताप्रेस, गोरखपुर





भगवान् शिव-पार्वती



भगवान्

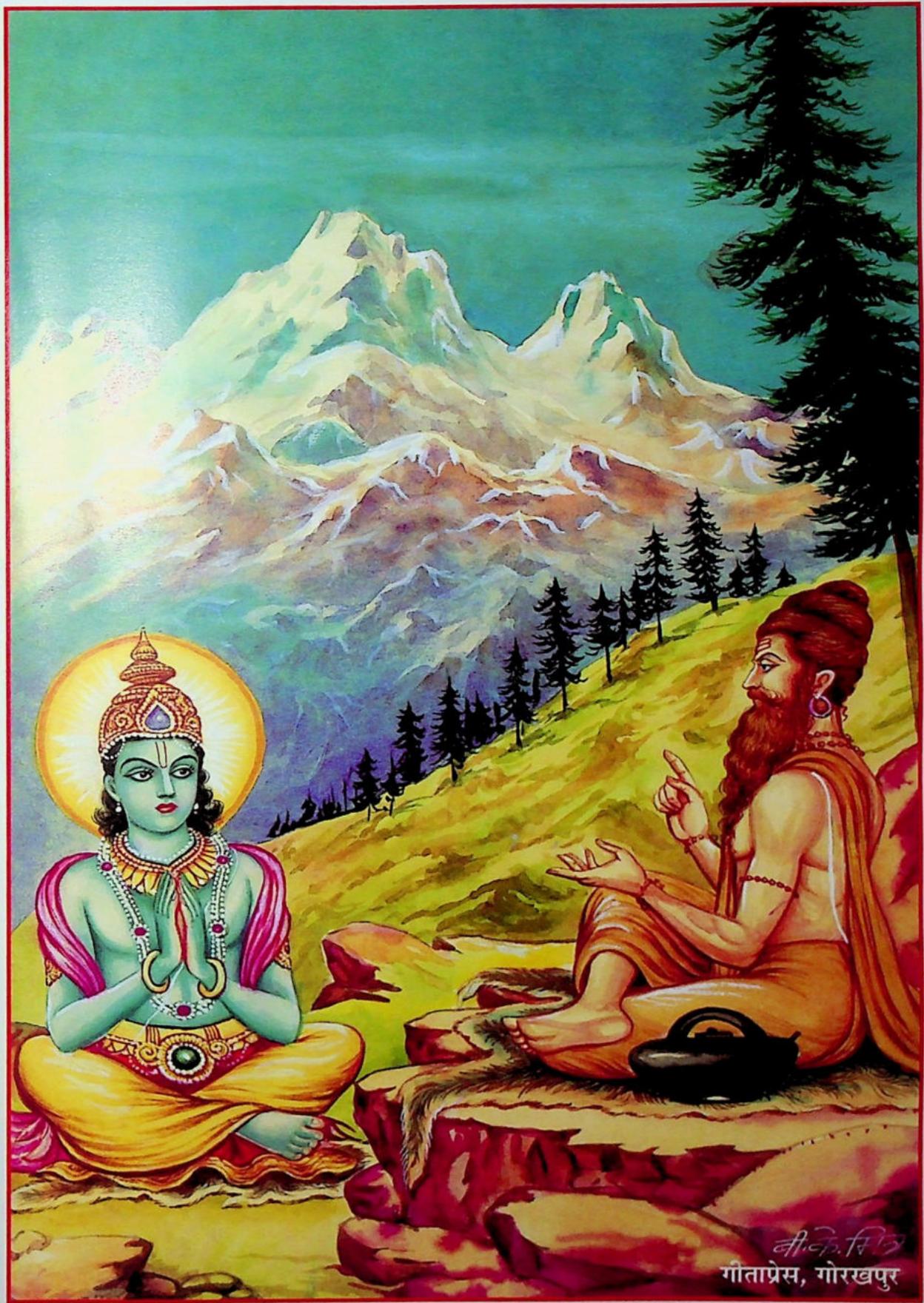
गीताप्रेस, गोरखपुर

उमा हैमवतीदेवी



भगवान् वराहद्वारा भूदेवीका उद्धार

ज्ञानात्मक  
गीताप्रेस, गोमखपुर



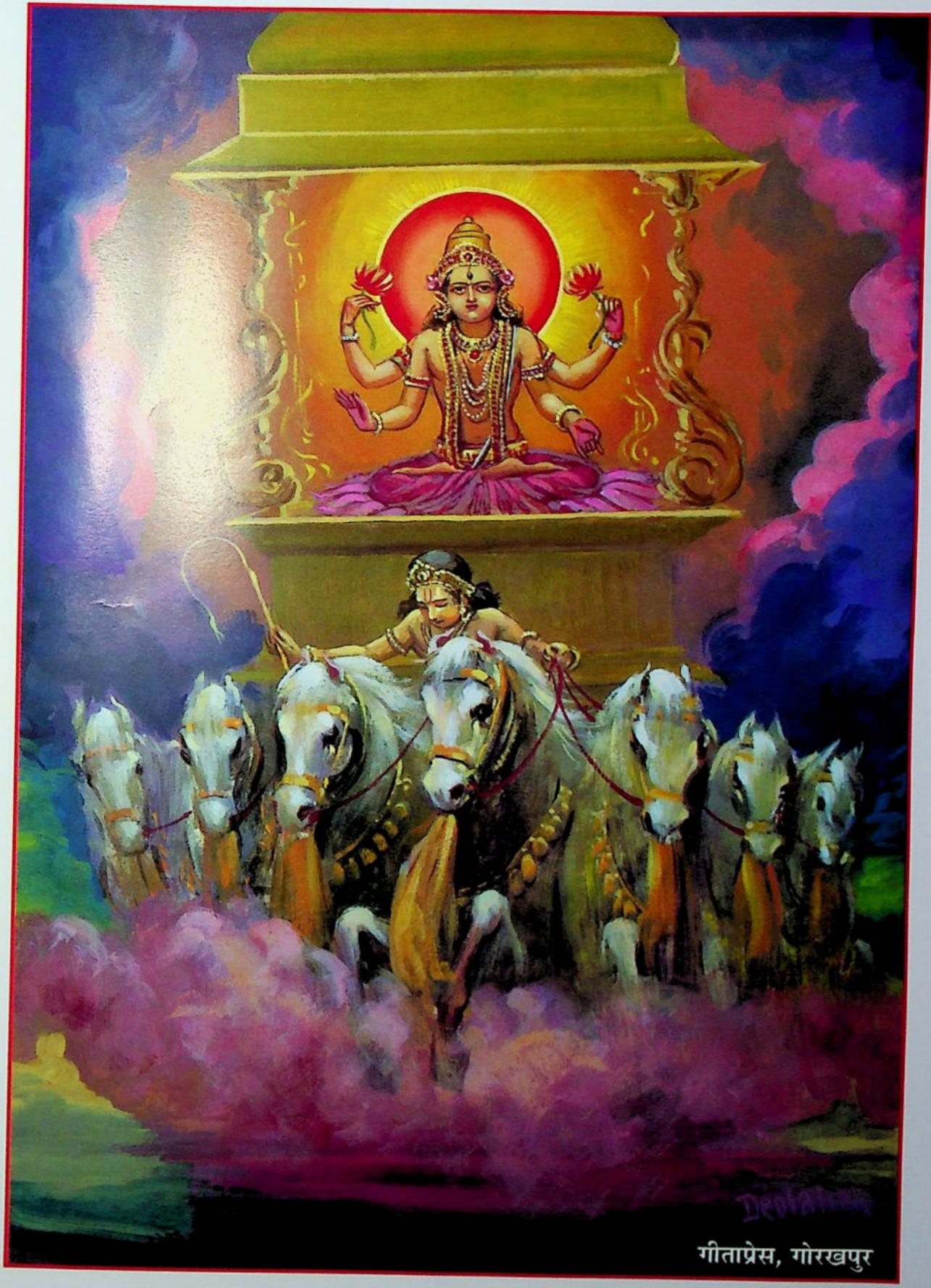
ब्रौ. के. वि.  
गीताप्रेस, गोरखपुर

आचार्य उपमन्यु और भगवान् श्रीकृष्ण



गीताप्रेस, गोरखपुर

भगवान् मायावामनका यज्ञवाटमें पूजन



Devalok

गीताप्रेस, गोरखपुर

सप्तश्व-वाहन भगवान् सूर्य



गीताप्रेस, गोरखपुर B. K. M. / G

भगवान्—कूर्मरूपमें

एकस्मिन्नथवा सम्यग् वर्तेतामरणं द्विजः ।  
श्रद्धावानाश्रमे युक्तः सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १२ ॥

न्यायागतधनः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः ।  
स्वर्धर्मपालको नित्यं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १३ ॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि निःसंगः कामवर्जितः ।  
प्रसन्नेनैव मनसा कुर्वाणो याति तत्पदम् ॥ १४ ॥  
ब्रह्मणा दीयते देयं ब्रह्मणे सम्प्रदीयते ।  
ब्रह्मैव दीयते चेति ब्रह्मार्पणमिदं परम् ॥ १५ ॥  
नाहं कर्ता सर्वमेतद् ब्रह्मैव कुरुते तथा ।  
एतद् ब्रह्मार्पणं प्रोक्तमृषिभिः तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥  
प्रीणातु भगवानीशः कर्मणानेन शाश्वतः ।  
करोति सततं बुद्ध्या ब्रह्मार्पणमिदं परम् ॥ १७ ॥  
यद्वा फलानां संन्यासं प्रकुर्यात् परमेश्वरे ।  
कर्मणामेतदप्याहुः ब्रह्मार्पणमनुत्तमम् ॥ १८ ॥  
कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं संगवर्जितम् ।  
क्रियते विदुषा कर्म तद्वेदपि मोक्षदम् ॥ १९ ॥

अन्यथा यदि कर्माणि कुर्यान्नित्यमपि द्विजः ।  
अकृत्वा फलसंन्यासं बध्यते तत्फलेन तु ॥ २० ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन त्यक्त्वा कर्माश्रितं फलम् ।  
अविद्वानपि कुर्वीत कर्मजोत्यचिरात् पदम् ॥ २१ ॥

कर्मणा क्षीयते पापमैहिकं पौर्विकं तथा ।  
मनः प्रसादमन्वेति ब्रह्म विज्ञायते ततः ॥ २२ ॥  
कर्मणा सहिताज्ञानात् सम्यग् योगोऽभिजायते ।  
ज्ञानं च कर्मसहितं जायते दोषवर्जितम् ॥ २३ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्र तत्राश्रमे रतः ।  
कर्माणीश्वरतुष्टुर्थं कुर्यान्नैष्कर्म्यमानुयात् ॥ २४ ॥

सम्प्राप्य परमं ज्ञानं नैष्कर्म्यं तत्प्रसादतः ।  
एकाकी निर्ममः शान्तो जीवनेव विमुच्यते ॥ २५ ॥

अथवा निष्ठावान् द्विजको चाहिये कि किसी भी एक आश्रममें वह यावज्जीवन ठीक-ठीक व्यवहार करता रहे तो मोक्ष प्राप्त करनेमें समर्थ हो जाता है। न्यायमार्ग (ईमानदारी)-से धन प्राप्त करनेवाला, शान्त, ब्रह्म-विद्यापरायण तथा नित्य अपने धर्मका पालन करनेवाला व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। अपने समस्त कर्मोंको ब्रह्ममें अर्पित कर आसक्तिरहित तथा निष्काम व्यक्ति प्रसन्न-मनसे कर्मोंको करते हुए उस पद (मोक्ष)-को प्राप्त करता है ॥ १२—१४ ॥

देने योग्य पदार्थ ब्रह्मके द्वारा ही प्राप्त होता है, ब्रह्मको ही दिया जाता है और ब्रह्म ही दिया भी जाता है—यही श्रेष्ठ ब्रह्मार्पण (-की भावना) है। मैं कर्ता अर्थात् करनेवाला नहीं हूँ और जो कुछ भी किया जाता है वह ब्रह्म ही करता है—इसे तत्त्वद्रष्टा ऋषियोंने 'ब्रह्मार्पण' नामसे कहा है। 'मेरे इस कर्मसे सनातन भगवान् ईश्वर प्रसन्न हों' इस प्रकारकी बुद्धिसे निरन्तर किया गया कर्म श्रेष्ठ ब्रह्मार्पण है। अथवा परमेश्वरमें सभी कर्मोंके फलोंका संन्यास करे—यह भी श्रेष्ठ ब्रह्मार्पण कहा गया है ॥ १५—१८ ॥

विद्वान् व्यक्तिके द्वारा आसक्तिरहित होकर कर्तव्य-बुद्धिसे जो कर्म नियमतः किया जाता है, उसका वह कर्म भी मोक्ष देनेवाला होता है। इसके विपरीत यदि द्विज नित्य कर्मोंको करता भी रहे तो कर्मफलका संन्यास न करनेके कारण वह उस कर्मफलके बन्धनसे बँधा रहता है। इसलिये अविद्वान् व्यक्तिको भी चाहिये कि सभी प्रकारके प्रयत्नसे कर्मके आश्रित फलका त्यागकर कर्म करता रहे, इससे उसे शीघ्र ही (परम) पद प्राप्त होता है। (निष्काम) कर्मसे व्यक्तिके इस जन्म तथा पूर्व-जन्मका पाप नष्ट हो जाता है, तदनन्तर चित्तकी प्रसन्नता प्राप्त होती है और फिर (उसे) ब्रह्मका परिज्ञान हो जाता है ॥ १९—२२ ॥

कर्मयुक्त ज्ञानसे सम्यक् योगकी प्राप्ति होती है और कर्मयुक्त ज्ञान दोषरहित होता है। इसलिये किसी भी आश्रममें रहते हुए सभी प्रकारके प्रयत्नोंसे भगवान्की प्रसन्नताके लिये कर्मोंको करता रहे। (इससे) नैष्कर्म्यकी प्राप्ति हो जाती है। परम ज्ञानको प्राप्त करनेके अनन्तर उसके प्रभावसे नैष्कर्म्यकी सिद्धि कर वह एकाकी, ममताशून्य तथा शान्त (व्यक्ति) जीवनकालमें ही मुक्तिको प्राप्त कर लेता है अर्थात् जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ २३—२५ ॥

वीक्षते परमात्मानं परं ब्रह्म महेश्वरम्।  
नित्यानन्दं निराभासं तस्मिन्नेव लयं व्रजेत्॥ २६॥

तस्मात् सेवेत सततं कर्मयोगं प्रसन्नधीः।  
तृष्ण्ये परमेशस्य तत् पदं याति शाश्वतम्॥ २७॥

एतद् च: कथितं सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम्।  
न होतत् समतिक्रम्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ २८॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥  
इस प्रकार छ: हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें तीसरा अध्याय समाप्त हुआ॥ ३॥

## चौथा अध्याय

सांख्य-सिद्धान्तके अनुसार ब्रह्माण्डकी सृष्टिका क्रम, पञ्चीकरण-  
प्रक्रिया तथा परमेश्वरके विविध नामोंका निरूपण

सूत उवाच

श्रुत्वाश्रमविधिं कृत्स्नमृषयो हृष्टमानसाः।  
नमस्कृत्य हृषीकेशं पुनर्वचनमब्लूवन्॥ १॥  
मुनय ऊचुः

भाषितं भवता सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम्।  
इदानीं श्रोतुमिच्छामो यथा सम्भवते जगत्॥ २॥  
कुतः सर्वमिदं जातं कस्मिंश्च लयमेष्यति।  
नियन्ता कश्च सर्वेषां वदस्व पुरुषोत्तम॥ ३॥

श्रुत्वा नारायणो वाक्यमृषीणां कूर्मरूपथृृक्।  
प्राह गम्भीरया वाचा भूतानां प्रभवाव्ययौ॥ ४॥  
श्रीकूर्म उवाच

महेश्वरः परोऽव्यक्तश्तुर्व्यूहः सनातनः।  
अनन्तश्चाप्रमेयश्च नियन्ता विश्वतोमुखः॥ ५॥  
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्।  
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः॥ ६॥  
गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्।  
अजरं धूवमक्षयं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम्॥ ७॥

(ऐसा व्यक्ति) नित्यानन्दस्वरूप, निराभास (स्वतः-प्रकाश), महेश्वर, परम ब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार कर उसीमें लीन हो जाता है। इसलिये प्रसन्नचित्त होकर परमेश्वरकी संतुष्टिके लिये निरन्तर कर्मयोगका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। (इससे वह परमेश्वरके) उस सनातन पदको प्राप्त करता है॥ २६-२७॥

इस प्रकार आप लोगोंको यह चारों आश्रमोंका सम्पूर्ण श्रेष्ठ क्रम बतलाया। इस क्रमका अतिक्रमण करके कोई भी मनुष्य सिद्धिको प्राप्त नहीं कर सकता॥ २८॥

सूतजीने कहा—आश्रमोंके सम्बन्धमें पूरे विधिविधानको सुनकर प्रसन्न मनवाले ऋषियोंने भगवान् हृषीकेशको नमस्कार करके पुनः इस प्रकारका वचन कहा—॥ १॥

मुनिजन बोले—(भगवन्!) आपने श्रेष्ठ चारों आश्रमोंके विषयमें सब कुछ बतलाया, अब इस समय हमें यह सुननेकी इच्छा है कि इस जगत्की सृष्टि कैसे होती है। हे पुरुषोत्तम! यह सब (संसार) कहाँसे उत्पन्न हुआ, किसमें विलीन होगा और इन सबका नियामक कौन है? यह सब आप बतलायें। ऋषियोंका वचन सुनकर कूर्मरूप धारण करनेवाले तथा सभी भूत-प्राणियोंके उत्पत्ति और विनाशके स्थान भगवान् नारायण गम्भीर वाणीमें बोले—॥ २-४॥

श्रीकूर्मने कहा—सर्वत्र (चारों ओर) मुखवाले महेश्वर (प्रकृतिसे) पर, अव्यक्त, चतुर्व्यूह, सनातन, अनन्त, अप्रमेय तथा (समस्त जगत्के) नियन्ता हैं। तत्त्वचिन्तक जिसे प्रधान और प्रकृति कहते हैं और जो सत्-असत्-रूप हैं, वही अव्यक्त नित्य कारण है॥ ५-६॥

गन्ध, वर्ण और रससे हीन, शब्द-स्पर्शसे रहित, अजर, धूव, अक्षय (कभी नाश न होनेवाला), नित्य

जगद्योनिर्महाभूतं परं ब्रह्म सनातनम्।  
विग्रहः सर्वभूतानामात्मनाधिष्ठितं महत्॥ ८ ॥

अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाप्ययम्।  
असाम्प्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥ ९ ॥  
गुणसाम्ये तदा तस्मिन् पुरुषे चात्मनि स्थिते।  
प्राकृतः प्रलयो ज्ञेयो यावद् विश्वसमुद्भवः ॥ १० ॥

ब्राह्मी रात्रिरियं प्रोक्ता अहः सृष्टिरुदाहता।  
अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिर्हृपचारतः ॥ ११ ॥  
निशान्ते प्रतिबुद्धोऽसौ जगदादिरनादिमान्।  
सर्वभूतमयोऽव्यक्तो ह्यन्तर्यामीश्वरः परः ॥ १२ ॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्याशु महेश्वरः।  
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ॥ १३ ॥  
यथा मदो नरस्त्रीणां यथा वा माधवोऽनिलः।  
अनुप्रविष्टः क्षोभाय तथासौ योगमूर्तिमान् ॥ १४ ॥

स एव क्षोभको विग्राः क्षोभ्यश्च परमेश्वरः।  
स संकोचविकासाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः ॥ १५ ॥

प्रधानात् क्षोभ्यमाणाच्च तथा पुंसः पुरातनात्।  
प्रादुरासीन्महद् बीजं प्रधानपुरुषात्मकम् ॥ १६ ॥

महानात्मा मतिर्ब्रह्मा प्रबुद्धिः ख्यातिरीश्वरः।  
प्रज्ञा धृतिः स्मृतिः संविदेतस्मादिति तत् स्मृतम् ॥ १७ ॥

वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः।  
त्रिविधोऽयमहंकारो महतः सम्बभूव ह ॥ १८ ॥  
अहंकारोऽभिमानश्च कर्ता मन्ता च स स्मृतः।  
आत्मा च पुद्गलो जीवो यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥ १९ ॥

पञ्चभूतान्यहंकारात् तन्मात्राणि च जज्ञिरे।  
इन्द्रियाणि तथा देवाः सर्वं तस्यात्मजं जगत् ॥ २० ॥

अपनी आत्मामें स्थित संसारका बीजरूप, महाभूत, सनातन, परब्रह्म, सभी प्राणियोंकी मूर्तिरूप, आत्मासे अधिष्ठित, महत्तत्व, अनादि, अनन्त, अजन्मा, सूक्ष्म, त्रिगुण, उत्पत्ति और प्रलयका स्थान, शाश्वत तथा अविज्ञेय ब्रह्म ही आदिमें विद्यमान था ॥ ७—९ ॥

उस समय गुणोंकी साम्यावस्थारूप उस पुरुषके आत्मस्वरूपमें स्थित होनेपर जबतक विश्वकी सृष्टि नहीं हो जाती, प्राकृत प्रलय (-का समय) जानना चाहिये। यह ब्रह्माकी रात्रि कही गयी है और सृष्टिको ब्रह्माका दिन कहा गया है, (वास्तवमें) उसका न दिन होता है और न रात होती है ॥ १०—११ ॥

आदिसे रहित वह जगत् का आदि कारण, सर्वभूतमय, अव्यक्त, अन्तर्यामी परात्पर ईश्वर रात्रि व्यतीत होनेपर जाग्रत् हुआ। परमेश्वर महेश्वरने प्रकृति एवं पुरुषमें शीघ्र ही प्रविष्ट होकर परम योगके द्वारा (उनमें) क्षोभ (गति) उत्पन्न किया ॥ १२—१३ ॥

जैसे वसन्त ऋतुकी वायु अथवा मद पुरुष एवं स्त्रियोंको (क्षुब्ध करता है) वैसे ही वह योगविग्रह (योगबलसे विविध शरीर-धारणमें समर्थ ईश्वर) प्रकृति एवं पुरुषमें अनुप्रविष्ट होकर क्षोभका कारण बनता है। हे ब्राह्मणो ! वही परमेश्वर क्षोभ उत्पन्न करनेवाला है एवं स्वयं क्षुब्ध होनेवाला है, वह प्रलय एवं सृष्टि करनेके कारण प्रधान भी कहलाता है। प्रधान पुरातनपुरुषके क्षुब्ध होनेसे प्रधान (प्रकृति) पुरुषात्मक महद् बीजका आविर्भाव हुआ ॥ १४—१६ ॥

इसी कारणसे (वह महद्वीज) महान् आत्मा, मति, ब्रह्मा, प्रबुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, धृति, स्मृति तथा संवित् कहलाता है ॥ १७ ॥

महत्तत्वसे समस्त प्राणियोंकी सृष्टिका आदि कारण—वैकारिक, तैजस तथा तामस—यह तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥

वह अहंकार अभिमान, कर्ता, मन्ता, आत्मा, पुद्गल तथा जीव (नामों)-से कहा गया है। उसी अहंकारसे सभी प्रवृत्तियाँ होती हैं। अहंकारसे पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश), पाँच तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध), सभी इन्द्रियाँ तथा उन इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवता उत्पन्न हुए। यह सम्पूर्ण जगत् उससे ही उत्पन्न हुआ है ॥ १९—२० ॥

मनस्त्वव्यक्तजं प्रोक्तं विकारः प्रथमः स्मृतः ।  
येनासौ जायते कर्ता भूतादीश्चानुपश्यति ॥ २१ ॥

वैकारिकादहंकारात् सर्गो वैकारिकोऽभवत् ।  
तैजसानीन्द्रियाणि स्युदेवा वैकारिका दश ॥ २२ ॥  
एकादशं मनस्त्र स्वगुणेनोभयात्मकम् ।  
भूततन्मात्रसर्गोऽयं भूतादेरभवन् प्रजाः ॥ २३ ॥

भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह ।  
आकाशं शुषिरं तस्मादुत्पन्नं शब्दलक्षणम् ॥ २४ ॥

आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ।  
वायुरुत्पद्यते तस्मात् तस्य स्पर्शो गुणो मतः ॥ २५ ॥  
वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह ।  
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्वूपगुणमुच्यते ॥ २६ ॥

ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ।  
सम्भवन्ति ततोऽभासांसि रसाधारणि तानि तु ॥ २७ ॥

आपश्चापि विकुर्वन्त्यो गन्धमात्रं ससर्जिरे ।  
संघातो जायते तस्मात् तस्य गन्धो गुणो मतः ॥ २८ ॥  
आकाशं शब्दमात्रं यत् स्पर्शमात्रं समावृणोत् ।  
द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत् ॥ २९ ॥

रूपं तथैवाविशतः शब्दस्पर्शो गुणावृभौ ।  
त्रिगुणः स्यात् ततो वह्निः स शब्दस्पर्शरूपवान् ॥ ३० ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसमात्रं समाविशन् ।  
तस्माच्चतुर्गुणा आपो विज्ञेयास्तु रसात्मिकाः ॥ ३१ ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धं समाविशन् ।  
तस्मात् पञ्चगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु शब्दयते ॥ ३२ ॥

शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः ।  
परस्परानुप्रवेशाद् धारयन्ति परस्परम् ॥ ३३ ॥

अव्यक्तसे उत्पन्न मनको प्रथम विकार माना गया है। इस कारण यह कर्ता एवं भूतादिकोंको देखनेवाला है। वैकारिक अहंकारसे वैकारिक सृष्टि उत्पन्न हुई। इन्द्रियाँ तैजस हैं और (उन इन्द्रियोंके अधिष्ठाता) दस देवता वैकारिक हैं ॥ २१-२२ ॥

उनमें (ग्यारहवाँ) इन्द्रिय मन अपने गुणके कारण उभयात्मक \* है। यह भूततन्मात्राओंकी सृष्टि है। भूतादिकोंसे ही प्रजा उत्पन्न हुई। विकारप्राप्त भूतोंने शब्दतन्मात्राको उत्पन्न किया। उस (शब्द तन्मात्रा)-से शब्द लक्षण-वाले तथा अवकाशस्वरूप आकाशकी उत्पत्ति हुई। वैकारिक आकाशने स्पर्श तन्मात्राको उत्पन्न किया। उससे वायु उत्पन्न हुआ और वायुका गुण स्पर्श कहा गया है ॥ २३-२५ ॥

विकारप्राप्त वायुने रूप तन्मात्राको उत्पन्न किया, वायुसे तेज उत्पन्न हुआ और इसका 'रूप' गुण कहा जाता है। विकारको प्राप्त हुए तेजने भी रस तन्मात्राकी सृष्टि की और उससे फिर जलकी उत्पत्ति हुई, वह जल इस 'रस' गुणका आधार है। विकारको प्राप्त हो रहे जलने गन्ध तन्मात्राको उत्पन्न किया, उससे संघात (पृथ्वीतत्त्व) उत्पन्न हुआ और उसका गुण 'गन्ध' माना गया है ॥ २६-२८ ॥

आकाशकी शब्द नामक तन्मात्रा है, उसने स्पर्श नामक तन्मात्राको आवृत किया है, इसलिये वायु शब्द तथा स्पर्श—इन दो गुणोंवाला है। उसी प्रकार रूप (नामक) गुण, शब्द एवं स्पर्श दो गुणोंसे आविष्ट है, अतः तेज या अग्नि—शब्द, स्पर्श तथा रूप—इन तीन गुणोंवाला है। शब्द, स्पर्श तथा रूप एवं रस तन्मात्रामें प्रविष्ट हुए, इसलिये रसात्मक जल-तत्त्वको चार गुणों (शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस)—से युक्त समझना चाहिये। शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस—ये चार गुण गन्ध तन्मात्रामें प्रविष्ट हुए, इसलिये पञ्च स्थूल महाभूतसे युक्त पृथ्वी तत्त्व पाँच गुणोंवाला कहा गया है ॥ २९-३२ ॥

इसी कारण ये शान्त, घोर, मूढ तथा विशेष कहलाते हैं। ये परस्पर एक-दूसरेमें प्रविष्ट होनेके कारण आपसमें एक दूसरेको धारण किये रहते हैं ॥ ३३ ॥

\* हस्त आदि पाँच कर्मेन्द्रिय हैं तथा चक्षु आदि पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं। 'मन' उभयात्मक है अर्थात् संकल्प-विकल्प-रूप कर्म भी करता है तथा उसे सुख-दुःखका ज्ञान भी होता है।

एते सप्त महात्मानो हृन्योन्यस्य समाश्रयात्।  
नाशक्नुवन् प्रजाः स्वष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥ ३४ ॥

पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च।  
महदादयो विशेषान्ता हृण्डमुत्पादयन्ति ते ॥ ३५ ॥  
एककालसमुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत्।  
विशेषेभ्योऽण्डमभवद् बृहत् तदुदकेशयम् ॥ ३६ ॥

तस्मिन् कार्यस्य करणं संसिद्धः परमेष्ठिनः।  
प्राकृतेऽण्डे विवृत्तः स क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥ ३७ ॥

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।  
आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समर्वते ॥ ३८ ॥

यमाहुः पुरुषं हंसं प्रथानात् परतः स्थितम्।  
हिरण्यगर्भं कपिलं छन्दोमूर्ति सनातनम् ॥ ३९ ॥  
मेरुरुल्बमभूत् तस्य जरायुश्चापि पर्वताः।  
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन् परमात्मनः ॥ ४० ॥

तस्मिन्नण्डेऽभवद् विश्वं सदेवासुरमानुषम्।  
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना ॥ ४१ ॥  
अद्विदेशगुणाभिश्च बाह्यतोऽण्डं समावृतम्।  
आपो दशगुणेनैव तेजसा बाह्यतो वृताः ॥ ४२ ॥

तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुनावृतम्।  
आकाशेनावृतो वायुः खं तु भूतादिनावृतम् ॥ ४३ ॥

भूतादिर्महता तद्वदव्यक्तेनावृतो महान्।  
एते लोका महात्मानः सर्वतत्त्वाभिमानिनः ॥ ४४ ॥  
वसन्ति तत्र पुरुषास्तदात्मानो व्यवस्थिताः।  
ईश्वरा योगधर्माणो ये चान्ये तत्त्वचिन्तकाः ॥ ४५ ॥

सर्वज्ञाः शान्तरजसो नित्यं मुदितमानसाः।  
एतैरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ॥ ४६ ॥

ये सातों महात्मा (महत्, अहंकार आदि तत्त्व) एक-दूसरेके आश्रित होनेके कारण बिना सम्पूर्ण रूपसे मिले सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं हो सके ॥ ३४ ॥ पुरुषसे अधिष्ठित और अव्यक्तसे अनुगृहीत होनेके कारण महतत्त्वसे लेकर विशेष (पञ्चभूत)-पर्यन्त वे सभी (तत्त्व) अण्डको उत्पन्न करते हैं ॥ ३४-३५ ॥

विशेषों (महाभूतों)-से एक बारमें ही जलके बुल-बुलेके समान तथा जलमें स्थित वह बृहत् अण्ड उत्पन्न हुआ। उसी (बृहत् अण्ड)-में परमेष्ठीके (सृष्टिस्वरूप) कार्यका करण सिद्ध (निष्पत्र) हुआ। प्राकृत अण्डमें क्षेत्रज्ञ आविर्भूत हुआ जो ब्रह्मा नामसे कहलाया। वे प्रथम शरीर धारण करनेवाले हैं। वे पुरुष कहलाते हैं और समस्त प्राणियोंके आदिकर्ता वे ब्रह्मा सर्वप्रथम उत्पन्न हुए। प्रधानसे परमें स्थित उस पुरुषको हंस, हिरण्यगर्भ, कपिल, छन्दोमूर्ति तथा सनातन कहा जाता है ॥ ३६—३९ ॥

उस परमात्माका गर्भवेष्टन था मेरु, पर्वत थे गर्भके आवरणरूप चर्म-जरायु तथा गर्भोदक थे सभी समुद्र। उस अण्डमें देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसहित सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ तथा ग्रहों, नक्षत्रोंसहित वायु, सूर्य एवं चन्द्रमा भी उत्पन्न हुए ॥ ४०-४१ ॥

अण्ड (ब्रह्माण्ड) बाहरकी ओर अपनेसे दस गुने अधिक जलसे घिरा हुआ है और जल बाहरसे अपनेसे दस गुने अधिक तेजसे आवृत है। तेज बाहरसे अपनेसे दस गुने अधिक वायुसे आवृत है। इसी प्रकार वायु आकाशसे आवृत है और आकाश भूतादि अर्थात् अहंकारसे घिरा हुआ है। जैसे अहंकार महतत्त्वसे आवृत है, वैसे ही महतत्त्व अव्यक्तसे आवृत है। ये लोक सर्वतत्त्वाभिमानी महान् स्वरूप-वाले हैं ॥ ४२—४४ ॥

उन (लोकों)-में उन्हींके आत्मरूप ऐश्वर्यसम्पत्र तथा योगधर्मा (योगधर्मसे युक्त) पुरुष निवास करते हैं और अन्य भी जो तत्त्वचिन्तक हैं, वे भी निवास करते हैं। (वे सभी पुरुष) सर्वज्ञ, शान्त रजोगुणवाले अर्थात् सत्त्वसम्पत्र तथा नित्य ही अत्यन्त प्रसन्न मनवाले हैं। ब्रह्माण्ड इन्हीं प्राकृत सात आवरणोंसे आवृत है ॥ ४५-४६ ॥

एतावच्छव्यते वक्तुं मायैषा गहना द्विजाः ।  
एतत् प्राधानिकं कार्यं यन्मया बीजमीरितम् ।  
प्रजापतेः परा मूर्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः ॥ ४७ ॥

ब्रह्माण्डमेतत् सकलं सप्तलोकतलान्वितम् ।  
द्वितीयं तस्य देवस्य शरीरं परमेष्ठिनः ॥ ४८ ॥

हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मा वै कनकाण्डजः ।  
तृतीयं भगवद्रूपं प्राहुर्वेदार्थवेदिनः ॥ ४९ ॥  
रजोगुणमयं चान्यद् रूपं तस्यैव धीमतः ।  
चतुर्मुखः स भगवान् जगत्सृष्टौ प्रवर्तते ॥ ५० ॥

सृष्टं च पाति सकलं विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।  
सत्त्वं गुणमुपाश्रित्य विष्णुर्विश्वेश्वरः स्वयम् ॥ ५१ ॥

अन्तकाले स्वयं देवः सर्वात्मा परमेश्वरः ।  
तमोगुणं समाश्रित्य रुद्रः संहरते जगत् ॥ ५२ ॥  
एकोऽपि सन्महादेवस्त्रिधासौ समवस्थितः ।  
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः ।  
एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुनः ॥ ५३ ॥

योगेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च ।  
नानाकृतिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया ॥ ५४ ॥

हिताय चैव भक्तानां स एव ग्रसते पुनः ।  
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैकाल्ये सम्प्रवर्तते ।  
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च विशेषतः ॥ ५५ ॥

यस्मात् सृष्टानुगृह्णाति ग्रसते च पुनः प्रजाः ।  
गुणात्मकत्वात् त्रैकाल्ये तस्मादेकः स उच्यते ॥ ५६ ॥

अग्रे हिरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतः सनातनः ।  
आदित्वादादिदेवोऽसौ अजातत्वादजः स्मृतः ॥ ५७ ॥

ब्राह्मणो! (इस विषयमें) केवल इतना ही कहा जा सकता है कि 'यह माया बहुत ही गहन है'। बीजरूपसे मैंने जिसका वर्णन किया वह सब प्रधान अर्थात् प्रकृतिका कार्य (व्यापार) है। यह (प्रकृति या माया अन्य और कोई नहीं) प्रजापतिकी (ही) परा मूर्ति है—ऐसा वेदोंका अभिमत है ॥ ४७ ॥

सात लोकोंके तलसे युक्त यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उन परमेष्ठी देवका दूसरा शरीर है। वेदोंके अर्थको ठीक-ठीक जाननेवाले बतलाते हैं कि सोनेके समान वर्णवाले पीत अण्डसे प्रादुर्भूत हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा भगवान्के तीसरे रूप (शरीर) हैं ॥ ४८-४९ ॥

उन्हीं धीमान्‌का जो रजोगुणयुक्त अन्य रूप है, वे ही चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा हैं तथा संसारकी सृष्टि करते हैं। स्वयं विश्वेश्वर विश्वतोमुख विश्वात्मा भगवान् विष्णु सत्त्वगुणका आश्रय ग्रहणकर उत्पन्न हुए सम्पूर्ण (संसार)-का पालन-पोषण करते हैं। अन्तकालमें स्वयं परमेश्वर सर्वात्मा रुद्रदेव तमोगुणका समाश्रयणकर संसारका संहार करते हैं ॥ ५०-५२ ॥

एक होनेपर भी वे निर्गुण-निरञ्जन महादेव सृष्टि, पालन और संहाररूपी तीन गुणोंके कारण तीन रूपोंमें स्थित हैं। वे कभी एक, कभी दो, कभी तीन तथा कभी अनन्त रूप धारण कर लेते हैं। वे योगेश्वर (परमात्मा) अपनी लीलासे अनेक आकार, क्रिया, रूप तथा नामवाले शरीरोंका निर्माण करते हैं और फिर संहार कर डालते हैं ॥ ५३-५४ ॥

भक्तोंके कल्याणके लिये ही वे पुनः संहार करते हैं। अपनेको तीन रूपोंमें विभक्तकर तीनों कालोंमें प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार (वे) विशेष रूपसे सृष्टि, संहार और पालनका कार्य करते हैं ॥ ५५ ॥

चूँकि वे (स्वयं ही) प्रजाकी सृष्टि करते हैं, उसका पालन करते हैं और (स्वयं उसका) पुनः संहार करते हैं, इसलिये तीनों कालोंमें (सत्त्व, रज तथा तमरूप) त्रिगुणात्मक होनेसे वे (परमात्मा) एक (अद्वैत) कहलाते हैं। प्रारम्भमें वे सनातन हिरण्यगर्भ प्रादुर्भूत हुए। आदिमें उत्पन्न होनेसे वे आदिदेव तथा अजन्मा होनेसे अज कहलाते हैं ॥ ५६-५७ ॥

पाति यस्मात् प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः ।  
देवेषु च महादेवो महादेव इति स्मृतः ॥ ५८ ॥

बृहत्त्वाच्य स्मृतो ब्रह्मा परत्वात् परमेश्वरः ।  
वशित्वादप्यवश्यत्वादीश्वरः परिभाषितः ॥ ५९ ॥

ऋषिः सर्वत्रगत्वेन हरिः सर्वहरो यतः ।  
अनुत्पादाच्य पूर्वत्वात् स्वयम्भूरिति स स्मृतः ॥ ६० ॥

नराणामयनो यस्मात् तेन नारायणः स्मृतः ।  
हरः संसारहरणाद् विभुत्वाद् विष्णुरुच्यते ॥ ६१ ॥  
भगवान् सर्वविज्ञानादवनादोमिति स्मृतः ।  
सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात् सर्वः सर्वमयो यतः ॥ ६२ ॥

शिवः स निर्मलो यस्माद् विभुः सर्वगतो यतः ।  
तारणात् सर्वदुःखानां तारकः परिगीयते ॥ ६३ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन सर्वं ब्रह्मयं जगत् ।  
अनेकभेदभिन्नस्तु क्रीडते परमेश्वरः ॥ ६४ ॥

इत्येष प्राकृतः सर्गः संक्षेपात् कथितो मया ।  
अबुद्धिपूर्वको विप्रा ब्राह्मीं सृष्टि निबोधत ॥ ६५ ॥

वे समस्त प्रजाओंका पालन करते हैं, इसलिये 'प्रजापति' इस नामसे कहे जाते हैं और देवताओंमें सबसे बड़े देव हैं, इसलिये 'महादेव' कहलाते हैं ॥ ५८ ॥

बृहत् होनेसे वे ब्रह्मा तथा परम (त्रेष्ठ) होनेके कारण परमेश्वर कहे जाते हैं। सबको अपने वशमें रखनेवाले, परंतु स्वयं किसीके वशमें न रहनेके कारण वे ईश्वर (नामसे) परिभाषित किये जाते हैं। उनकी सर्वत्र गति होनेके कारण वे ऋषि और (प्रलयकालमें) सब कुछ हरण करनेके कारण हरि कहलाते हैं। किसीके द्वारा उत्पन्न न होने तथा सर्वप्रथम होनेके कारण 'स्वयम्भू' इस नामसे कहे जाते हैं। सभी मनुष्योंके वे अयन (आश्रय-स्थान) हैं, इसलिये नारायण कहे जाते हैं, संसारका संहार करनेसे हर तथा सर्वत्र व्यापक होनेसे विष्णु कहलाते हैं ॥ ५९—६१ ॥

(वे) सब कुछ जाननेके कारण भगवान् तथा रक्षा-कार्य करनेसे ॐ कहलाते हैं। सभीका विशिष्ट ज्ञान होनेसे सर्वज्ञ तथा सभीके आत्मस्वरूप होनेके कारण वे सर्व कहे जाते हैं। वे मलशून्य हैं, इसलिये शिव और सर्वत्र व्यास होनेसे विभु तथा सभी प्रकारके कष्टोंका निवारण करनेसे 'तारक' कहलाते हैं ॥ ६२-६३ ॥

और अधिक कहनेसे क्या लाभ! यह सारा जगत् ब्रह्मय ही है और वे परमेश्वर अनेक रूपोंमें विभक्त होकर अनेक क्रीड़ाएँ (लीलाएँ) करते रहते हैं ॥ ६४ ॥

हे ब्राह्मणो! मैंने संक्षेपमें इस अबुद्धिपूर्वक हुए प्राकृत सर्ग (प्राकृत सृष्टि)-का वर्णन किया है। अब आप लोग ब्रह्माकी सृष्टिके सम्बन्धमें सुनें ॥ ६५ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्रगां संहितायां पूर्वविभागे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार ४: हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४ ॥



## पाँचवाँ अध्याय

**ब्रह्माजीकी आयुका वर्णन, युग, मन्वन्तर तथा कल्प आदि कालकी गणना, प्राकृत प्रलय तथा कालकी महिमाका वर्णन**

श्रीकूर्म उवाच

स्वयम्भुवो विवृत्तस्य कालसंख्या द्विजोत्तमाः ।  
न शक्यते समाख्यातुं बहुवर्षैरपि स्वयम् ॥ १ ॥  
कालसंख्या समासेन परार्थद्वयकल्पिता ।  
स एव स्यात् परः कालः तदन्ते प्रतिसृज्यते ॥ २ ॥

निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम् ।  
तत् पराख्यं तदर्थं च परार्थमभिधीयते ॥ ३ ॥

काष्ठा पञ्चदश ख्याता निमेषा द्विजसत्तमाः ।  
काष्ठास्त्रिशत् कला त्रिंशत् कला मौहूर्तिकी गतिः ॥ ४ ॥

तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम् ।  
अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः ॥ ५ ॥

तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे ।  
अयनं दक्षिणं रात्रिदेवानामुत्तरं दिनम् ॥ ६ ॥

दिव्यवर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम् ।  
चतुर्युगं द्वादशभिः तद्विभागं निबोधत ॥ ७ ॥

चत्वार्युगः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।  
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च कृतस्य तु ॥ ८ ॥

त्रिशती द्विशती संध्या तथा चैकशती क्रमात् ।  
अंशकं षट्शतं तस्मात् कृतसंध्यांशकं विना ॥ ९ ॥  
त्रिद्वयेकसाहस्रमतो विना संध्यांशकेन तु ।  
त्रेताद्वापरतिष्याणां कालज्ञाने प्रकीर्तितम् ॥ १० ॥

एतद् द्वादशसाहस्रं साधिकं परिकल्पितम् ।  
तदेकसमतिगुणं मनोरन्तरमुच्यते ॥ ११ ॥

श्रीकूर्मने कहा— श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! स्वयम्भू-ब्रह्माके बीते हुए कालकी गणनाका वर्णन बहुत वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता । संक्षेपमें कालकी गणना दो परार्थ कही गयी है । वही परम काल है और उसके बीते जानेपर प्रलय होता है ॥ १-२ ॥

अपने मानसे ब्रह्माकी एक सौ वर्षकी आयु कही गयी है । उसी (ब्रह्माकी एक सौ वर्षकी आयु)-को 'पर' नामसे कहा जाता है और उस परका आधा 'परार्थ' कहलाता है ॥ ३ ॥

द्विजोत्तमो ! पंद्रह निमेषकी एक काष्ठा कही गयी है । तीस काष्ठाकी एक कला और तीस कलाका समय एक मुहूर्त-काल होता है । उतनी ही संख्या अर्थात् तीस मुहूर्तोंका एक मानवीय अहोरात्र (दिन-रात) होता है, उतने ही अर्थात् तीस अहोरात्रोंका एक मास होता है जो दो पक्षवाला है । छः: मासोंका एक अयन तथा उत्तर एवं दक्षिण नामसे दो अयनोंका एक वर्ष होता है । दक्षिण अयन अर्थात् दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि और उत्तर अयन अर्थात् उत्तरायण (देवताओंका) दिन होता है ॥ ४-६ ॥

(श्रीकूर्मने ब्राह्मणोंसे कहा—) दिव्य बारह हजार वर्षोंका सत्य, त्रेता इत्यादि नामसे एक चतुर्युग होता है । उसके विभागोंका वर्णन सुनें ॥ ७ ॥

चार हजार दिव्य वर्षोंका सत्ययुग होता है । सत्ययुगकी उतने ही सौ वर्षोंकी अर्थात् चार सौ वर्षोंकी संध्या तथा संध्यांश (त्रेतायुगका संधिकाल) होता है । सत्ययुगके संध्यांशको छोड़कर क्रमशः तीन सौ, दो सौ तथा एक सौ—इस प्रकार कुल मिलाकर दिव्य छः सौ वर्षोंके द्वापर तथा कलियुगके संध्या तथा संध्यांश होते हैं ॥ ८-९ ॥

कालका ज्ञान करनेके लिये संध्यांशोंसे रहित त्रेता, द्वापर तथा कलियुग क्रमशः तीन, दो तथा एक हजार (दिव्य) वर्षोंके कहे गये हैं । कुछ अधिकता लिये यही (दिव्य) बारह हजार वर्षोंका कालपरिमाण कहा गया है । इसके इकहत्तर गुना कालको एक मनुका अन्तर अर्थात् एक मन्वन्तरका समय कहा गया है ॥ १०-११ ॥

ब्रह्मणो दिवसे विप्रा मनवः स्युश्चतुर्दश ।  
स्वायम्भुवादयः सर्वे ततः सावर्णिकादयः ॥ १२ ॥

तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ।  
पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः ॥ १३ ॥  
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।  
व्याख्यातानि न संदेहः कल्पं कल्पेन चैव हि ॥ १४ ॥

ब्राह्मेकमहः कल्पस्तावती रात्रिरिष्यते ।  
चतुर्युगसहस्रं तु कल्पमाहुर्मनीषिणः ॥ १५ ॥  
त्रीणि कल्पशतानि स्युस्तथा षष्ठिद्विजोत्तमाः ।  
ब्रह्मणः कथितं वर्षं पराख्यं तच्छतं विदुः ॥ १६ ॥

तस्यान्ते सर्वतत्त्वानां स्वहेतौ प्रकृतौ लयः ।  
तेनायं प्रोच्यते सद्ग्दिः प्राकृतः प्रतिसंचरः ॥ १७ ॥

ब्रह्मनारायणेशानां त्रयाणां प्रकृतौ लयः ।  
प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च सम्भवः ॥ १८ ॥  
एवं ब्रह्मा च भूतानि वासुदेवोऽपि शंकरः ।  
कालेनैव तु सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुनः ॥ १९ ॥

अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरोऽमरः ।  
सर्वगत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मासौ महेश्वरः ॥ २० ॥

ब्रह्मणो बहवो रुद्रा ह्यन्ये नारायणादयः ।  
एको हि भगवानीशः कालः कविरिति श्रुतिः ॥ २१ ॥

एकमत्र व्यतीतं तु परार्थं ब्रह्मणो द्विजाः ।  
साम्प्रतं वर्तते तद्वत् तस्य कल्पोऽयमष्टमः ॥ २२ ॥

योऽतीतः सप्तमः कल्पः पाद्य इत्युच्यते बुधैः ।  
वाराहो वर्तते कल्पः तस्य वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ २३ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षद्साहस्राणां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

ब्राह्मणो ! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु (मन्वन्तर) होते हैं । वे सभी स्वायम्भुव (प्रथम मनु) आदि तथा सावर्णिक (अष्टम मनु) आदि मनु हैं । उन नरेश्वरों (मन्वन्तराधिपों)-के द्वारा सात द्वीपों एवं पर्वतोंवाली इस पृथ्वीका पूरे एक हजार युगोंतक पालन किया जाता है ॥ १२-१३ ॥

एक मन्वन्तरके वर्णनसे अन्य भी—सभी मन्वन्तरोंका वर्णन कर दिया गया है (ऐसा समझना चाहिये) । इसमें संदेह नहीं करना चाहिये । प्रत्येक कल्प (पूर्व) कल्पके समान ही होता है । ब्रह्माका एक दिन एक कल्पके बराबर और रात्रि भी उतनी (अर्थात् एक कल्पके बराबर) ही होती है । विद्वानोंने एक हजार चतुर्युगीका एक कल्प कहा है ॥ १४-१५ ॥

त्रेषु ब्राह्मणो ! तीन सौ साठ कल्पोंका ब्रह्माका एक वर्ष कहा गया है, उसके सौ गुने (अर्थात्  $360 \times 100 = 36,000$  कल्पों या १०० वर्षोंके) कालको 'पर' इस नामसे जानना चाहिये । ('पर' नामक) उस कालके बीतनेपर सभी तत्त्वोंका अपने मूल कारण प्रकृतिमें लय हो जाता है । इसीलिये विद्वानोंने इसे प्राकृत प्रतिसङ्खर (प्राकृत प्रलय) कहा है । ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनोंका प्रकृतिमें लय हो जाता है । पुनः कालयोगसे उनका आविर्भाव होना कहा जाता है ॥ १६-१८ ॥

इस प्रकार ब्रह्मा, जीव, वासुदेव तथा शंकरकी कालके द्वारा ही सर्जना होती है, पुनः वही काल इनका संहार भी करता है । यह काल भगवान् है, अनन्त है, अजर है, अमर है एवं अनादि है । सर्वव्यापी होनेसे, स्वतन्त्र होनेसे तथा सबका आत्मस्वरूप होनेसे यह महेश्वर कहलाता है ॥ १९-२० ॥

ब्रह्मा, रुद्र तथा नारायण आदि बहुत होते हैं, किंतु भगवान् एक ही है, जो ईश, काल तथा कवि कहलाता है—ऐसा वेदका अभिमत है ॥ २१ ॥

ब्राह्मणो ! इस समय ब्रह्माजीका एक परार्थ बीत चुका है, अब उनका दूसरा परार्थ चल रहा है, उस (द्वितीय परार्थ)-का यह आठवाँ कल्प चल रहा है । ब्रह्माजीका जो सातवाँ कल्प व्यतीत हो चुका है, विद्वानोंद्वारा वह 'पाद्य' (कल्प) कहा गया है । वर्तमानमें वाराह कल्प चल रहा है, इसके विस्तारका मैं वर्णन करूँगा ॥ २२-२३ ॥

## छठा अध्याय

‘नारायण’ नामका निर्वचन, वराहरूपधारी नारायणद्वारा पृथ्वीका  
उद्धार, सनकादि ऋषियोंद्वारा वराहकी स्तुति

श्रीकूर्म उवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् ।  
शान्तवातादिकं सर्वं न प्रज्ञायत किञ्चन ॥ १ ॥

एकार्णवे तदा तस्मिन् नष्टे स्थावरजङ्गमे ।  
तदा समभवद् ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ २ ॥

सहस्रशीर्षी पुरुषो रुक्मवर्णस्त्वतीन्द्रियः ।  
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥ ३ ॥

इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणम्प्रति ।  
ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥ ४ ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता नामा पूर्वमिति श्रुतिः ।  
अयनं तस्य ता यस्मात् तेन नारायणः स्मृतः ॥ ५ ॥

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः ।  
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥ ६ ॥

ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतां महीम् ।  
अनुमानात् तदुद्धारं कर्तुकामः प्रजापतिः ॥ ७ ॥  
जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमास्थितः ।  
अधृष्यं मनसाप्यन्वैर्वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥ ८ ॥

पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविश्य च रसातलम् ।  
दंष्ट्राभ्युज्जहैरनामात्माधारो धराधरः ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा दंष्ट्राग्रविन्यस्तां पृथिवीं प्रथितपौरुषम् ।  
अस्तुवञ्चनलोकस्थाः सिद्धा ब्रह्मर्षयो हरिम् ॥ १० ॥

श्रीकूर्मने कहा—(सृष्टि के पूर्व) केवल एकमात्र समुद्र ही था अर्थात् सर्वत्र जल-ही-जल था और कुछ नहीं। कोई विभाग नहीं था, घोर अन्धकारमय था। उस समय वायु आदि सभी शान्त थे। कुछ भी जाना नहीं जाता था। स्थावर तथा जंगम (सम्पूर्ण सृष्टि)-के उस एकार्णवमें नष्ट हो जानेपर (विलीन हो जानेपर) उस समय हजार नेत्रों तथा हजार चरणोंवाले ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। हजार सिरवाले, सोनेके समान वर्णवाले, अतीन्द्रिय, ब्रह्मा जो नारायण नामवाले पुरुष कहलाते हैं, उस समय जलमें (एकार्णवमें) सोये हुए थे ॥ १—३ ॥

सम्पूर्ण संसारके सृष्टि एवं विनाशके कारण, ब्रह्मस्वरूप नारायणदेवके विषयमें यह श्लोक कहा जाता है— ॥ ४ ॥

वेदमें ‘अप्’ अर्थात् ‘जल’ को ‘नार’ इस नामसे पहले कहा गया है और वह नार (जल) नरका अयन अर्थात् आश्रय-स्थान है, इस कारण वे ‘नारायण’ कहे जाते हैं। हजार युगोंके बराबर रात्रिका उपभोग करके वे नारायण (उस प्रलयकालीन) रात्रिके बीत जानेपर सृष्टि करनेके लिये ब्रह्मत्व ग्रहण करते हैं। तदनन्तर उस जल (एकार्णव)-में प्रलीन पृथ्वीको अनुमानद्वारा जानकर प्रजापतिने उसके उद्धारकी कामना की ॥ ५—७ ॥

जलमें क्रीडा करते समय (वे) अत्यन्त सुन्दर वराहरूपमें अवस्थित हो गये। (भगवान् का वह स्वरूप) अन्य लोगोंके द्वारा मनसे भी न जाना जा सकने योग्य, वाक्स्वरूप तथा ब्रह्मसंज्ञक है। धराको धारण करनेवाले (उन) धराधर एवं आत्माधारने पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये रसातलमें प्रवेश करके अपनी दाढ़ (दंष्ट्र) -द्वारा इसे (रसातलमें झूबी पृथ्वीको) ऊपर निकाला। (नारायणकी) दंष्ट्रके अग्रभागमें अवस्थित पृथ्वीको देखकर जनलोकमें रहनेवाले सिद्धों तथा ब्रह्मियोंने अपने पौरुषको व्यक्त करनेवाले हरिकी (इस प्रकार) स्तुति की ॥ ८—१० ॥

ऋषय ऊचुः

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने ।  
पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च ॥ ११ ॥  
नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्वष्टे सर्वार्थवेदिने ।  
नमो हिरण्यगर्भाय वेदसे परमात्मने ॥ १२ ॥  
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये ।  
नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे ॥ १३ ॥  
नमोऽस्तु ते चतुर्वक्त्र शार्ङ्गचक्रासिधारिणे ।  
सर्वभूतात्मभूताय कूटस्थाय नमो नमः ॥ १४ ॥  
नमो वेदरहस्याय नमस्ते वेदयोनये ।  
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमस्ते ज्ञानरूपिणे ॥ १५ ॥  
नमोऽस्त्वानन्दरूपाय साक्षिणे जगतां नमः ।  
अनन्तायाप्रमेयाय कार्याय करणाय च ॥ १६ ॥  
नमस्ते पञ्चभूताय पञ्चभूतात्मने नमः ।  
नमो मूलप्रकृतये मायारूपाय ते नमः ॥ १७ ॥  
नमोऽस्तु ते वराहाय नमस्ते मत्स्यरूपिणे ।  
नमो योगाधिगम्याय नमः संकर्षणाय ते ॥ १८ ॥

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं त्रिधामे दिव्यतेजसे ।  
नमः सिद्धाय पूज्याय गुणत्रयविभाविने ॥ १९ ॥

नमोऽस्त्वादित्यवर्णाय नमस्ते पद्मयोनये ।  
नमोऽमूर्ताय मूर्ताय माधवाय नमो नमः ॥ २० ॥

त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव लयमेष्यति ।  
पालयैतज्जगत् सर्वं त्राता त्वं शरणं गतिः ॥ २१ ॥

इत्थं स भगवान् विष्णुः सनकादौरभिष्टुतः ।  
प्रसादमकरोत् तेषां वराहवपुरीश्वरः ॥ २२ ॥

ततः संस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीपतिः ।  
मुमोच रूपं मनसा धारयित्वा प्रजापतिः ॥ २३ ॥

तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता ।  
विततत्वाच्च देहस्य न मही याति सम्प्लवम् ॥ २४ ॥

ऋषि बोले—देवाधिदेव, पुराणपुरुष, सनातन, जयस्वरूप परमेष्ठी ब्रह्मको नमस्कार है। सृष्टि करनेवाले तथा सभी अर्थोंके ज्ञाता स्वयम्भू! आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, वेदा परमात्माको नमस्कार है। विश्वके उत्पत्ति-स्थान, देवोंके हितकारी, वासुदेव, नारायणदेव विष्णुको नमस्कार है। शार्ङ्ग (धनुष), चक्र (सुदर्शन) तथा तलवार (नन्दक) आदि धारण करनेवाले चतुर्मुख! आपको नमस्कार है। सभी प्राणियोंके आत्मरूप, कूटस्थको बार-बार नमस्कार है ॥ ११—१४ ॥

वेदके रहस्यरूपको नमस्कार है। वेद-योनिको नमस्कार है। शुद्ध-बुद्धको नमस्कार है। ज्ञानरूपको नमस्कार है। आनन्दस्वरूपको नमस्कार है। जगत्के साक्षी, अनन्त, अप्रमेय तथा कार्य एवं कारणरूपको नमस्कार है। पञ्चभूतरूपको नमस्कार है। पञ्चभूतात्मा (पञ्चभूतके अधिष्ठान आत्मा)-को नमस्कार है, मूलप्रकृतिको नमस्कार है। मायारूप आपको नमस्कार है ॥ १५—१७ ॥

हे वराह! आपको नमस्कार है। मत्स्यरूप धारण करनेवालेको नमस्कार है। योगद्वारा जानने योग्यको नमस्कार है। संकर्षण! आपको नमस्कार है। तीन मूर्तियों एवं तीन धामों (स्थानों)-वाले दिव्य तेजःस्वरूप आपको नमस्कार है। तीन गुणोंको प्रवृत्त करनेवाले सिद्ध एवं पूज्य आपको नमस्कार है। आदित्यके समान वर्णवाले अर्थात् प्रकाशस्वरूप आपको नमस्कार है। पद्मयोनिको नमस्कार है। मूर्त एवं अमूर्तरूपको नमस्कार है। माधवको बारम्बार नमस्कार है ॥ १८—२० ॥

आपके द्वारा ही सम्पूर्ण सृष्टि हुई है और आपमें ही (वह) विलीन भी हो जायगी। इस सम्पूर्ण जगत्का आप पालन करें। आप ही रक्षक हैं, आप ही शरण देनेवाले आश्रय-स्थान हैं ॥ २१ ॥

सनक आदि (मर्हिष्यों)-के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर वराह-शरीर धारण करनेवाले सर्वसमर्थ उन भगवान् विष्णुने उनपर कृपा की। इसके बाद पृथ्वीके स्वामी प्रजापतिने पृथ्वीको उसके स्थानमें प्रतिष्ठित कर दिया और मनसे उसको धारण करके अपने (वराह)-रूपको छोड़ दिया ॥ २२—२३ ॥

उस महान् जलराशिके ऊपर विशाल नौकाके समान स्थित पृथ्वी अपने देहके विस्तारके कारण ढूबती नहीं है ॥ २४ ॥

पृथिवीं तु समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद् गिरीन्।  
प्राक्सर्गदग्धानखिलांस्ततः सर्गेऽदधन्मनः ॥ २५ ॥

तदनन्तर पृथ्वीको समतल बनाकर उन्होंने पहली सृष्टिके दग्ध हुए समस्त पर्वतोंको पृथ्वीपर स्थापित किया और सृष्टि (करने)-में अपना मन लगाया ॥ २५ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

## सातवाँ अध्याय

नौ प्रकारकी सृष्टि, ब्रह्माजीके मानस पुत्रोंका आविर्भाव, ब्रह्माजीके चारों मुखोंसे चारों वेदोंकी उत्पत्ति इत्यादिका वर्णन

श्रीकूर्म उवाच

सृष्टि चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा ।  
अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥ १ ॥  
तमो मोहो महामोहस्तामिस्तश्चान्धसंज्ञितः ।  
अविद्या पञ्चपैषंषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ २ ॥  
पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः ।  
संवृतस्तमसा चैव बीजकम्भुवनावृतः ॥ ३ ॥  
बहिरन्तश्चाप्रकाशः स्तब्धो निःसंज्ञ एव च ।  
मुख्या नगा इति प्रोक्ता मुख्यसर्गस्तु स स्मृतः ॥ ४ ॥

तं दृष्ट्वासाधकं सर्गममन्यदपरं प्रभुः ।  
तस्याभिष्यायतः सर्गस्तिर्यक्स्त्रोतोऽध्यवर्तत ॥ ५ ॥

यस्मात् तिर्यक् प्रवृत्तः स तिर्यक्स्त्रोतस्ततः स्मृतः ।  
पश्चादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजाः ॥ ६ ॥  
तमप्यसाधकं ज्ञात्वा सर्गमन्यं ससर्ज ह ।  
ऊर्ध्वस्त्रोत इति प्रोक्तो देवसर्गस्तु सात्त्विकः ॥ ७ ॥

ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च नावृताः ।  
प्रकाशा बहिरन्तश्च स्वभावाद् देवसंज्ञिताः ॥ ८ ॥

श्रीकूर्म बोले—उनके (ब्रह्माके) द्वारा सृष्टिके विषयमें सोचते रहनेपर अबुद्धिपूर्वक अन्धकाररूप वैसी ही सृष्टि हुई जैसी कि पूर्वके कल्पोंमें हुई थी। उन महात्मासे तम, मोह, महामोह, तामिस तथा अन्ध नामवाली यह पञ्चपैषा अविद्या उत्पन्न हुई। उस अभिमानी (देव)-के द्वारा ध्यान करते समय अन्धकारसे ढकी हुई बीज-सदृश तथा लोकोंसे आवृत वह सृष्टि पाँच भागोंमें विभाजित होकर स्थित हुई ॥ १—३ ॥

बाहर एवं भीतरके प्रकाश (ज्ञान)-से शून्य, स्तब्ध (जड़) तथा संज्ञा (चेतना)-विहीन नग (अर्थात् पर्वत, वृक्ष आदि) 'मुख्य' इस नामसे कहे जाते हैं और वही मुख्य सर्ग (मुख्य सृष्टि) कहलाता है। प्रभुने उस (मुख्य सर्ग)-को (सृष्टिके विस्तारमें) साधक (समर्थ) न देखकर दूसरी सृष्टिके लिये विचार किया। उनके ऐसा विचार करते ही 'तिर्यक्स्त्रोत' नामक (पशु-पक्षियों आदिकी) सृष्टि हुई। हे ब्राह्मणो! क्योंकि वह सृष्टि तिर्यक् (तिरछी) चलनेवाली थी, इसलिये तिर्यक्स्त्रोत सृष्टि कहलाती है। वे (मार्गका उल्लंघन करनेवाले) पशु आदि उत्पथग्राही कहे जाते हैं ॥ ४—६ ॥

उस तिर्यक्स्त्रोत नामक सृष्टिको भी (सृष्टि-विस्तारके लिये) निष्प्रयोजन जानकर (उन देवने) अन्य सर्गको उत्पन्न किया। वह (सर्ग) ऊर्ध्वस्त्रोत सात्त्विक सर्ग 'देवसर्ग' नामसे कहा गया। इस देवसर्गके लोगोंमें सुख और प्रीतिकी अधिकता रहती है। वे अंदर तथा बाहर आवरणसे रहित होते हैं तथा स्वभावसे ही अंदर-बाहर प्रकाशसे परिपूर्ण रहते हैं, इसलिये वे देव कहलाते हैं ॥ ७—८ ॥

ततोऽभिष्यायतस्तस्य सत्याभिष्ययिनस्तदा ।  
प्रादुरासीत् तदाव्यक्तादर्वाक्षोतस्तु साधकः ॥ ९ ॥

ते च प्रकाशबहुलास्तमेद्रिक्ता रजोऽधिकाः ।  
दुःखोत्कटाः सत्त्वयुता मनुष्याः परिकीर्तिताः ॥ १० ॥  
तं दृष्ट्वा चापरं सर्गममन्यद् भगवानजः ।  
तस्याभिष्यायतः सर्गं सर्गो भूतादिकोऽभवत् ॥ ११ ॥

तेऽपरिग्राहिणः सर्वे संविभागरताः पुनः ।  
खादनाश्चाप्यशीलाश्च भूताद्याः परिकीर्तिताः ।  
इत्येते पञ्च कथिताः सर्गा वै द्विजपुंगवाः ॥ १२ ॥  
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ।  
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः ॥ १३ ॥  
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ।  
इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतोऽबुद्धिपूर्वकः ॥ १४ ॥  
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ।  
तिर्यक्षोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः स पञ्चमः ॥ १५ ॥  
तथोर्ध्वस्त्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ।  
ततोऽर्वाक्षोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥ १६ ॥  
अष्टमो भौतिकः सर्गो भूतादीनां प्रकीर्तितः ।  
नवमश्चैव कौमारः प्राकृता वैकृतास्तिव्यमे ॥ १७ ॥

प्राकृतास्तु त्रयः पूर्वे सर्गास्तेऽबुद्धिपूर्वकाः ।  
बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते मुख्याद्या मुनिपुंगवाः ॥ १८ ॥  
अग्रे सप्तर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ।  
सनकं सनातनं चैव तथैव च सनन्दनम् ।  
ऋभुं सनत्कुमारं च पूर्वमेव प्रजापतिः ॥ १९ ॥  
पञ्चैते योगिनो विग्राः परं वैराग्यमास्थिताः ।  
ईश्वरासक्तमनसो न सृष्टौ दधिरे मतिम् ॥ २० ॥

तदनन्तर निरन्तर सत्यका ध्यान करनेवाले उन देवके चिन्तन करनेपर उसी समय अव्यक्त (प्रकृति)-से (सृष्टि-विस्तारका) साधक अर्वाक्षोतवाला साधक (सर्ग) उत्पन्न हुआ। वे (अर्वाक्षोत प्राणी) प्रकाश (ज्ञान)-के बाहुल्यवाले, तमोगुण तथा रजोगुणकी अधिकतावाले, अधिक दुःखवाले और सत्त्वगुणसे सम्पन्न मनुष्य नामसे कहे जाते हैं ॥ ९-१० ॥

उस (मानुष-सर्ग)-को देखकर अजन्मा भगवान्ने अन्य सर्गकी रचनाका विचार किया और उनके ऐसे सर्ग-विषयक ध्यान करते ही भूतादि सर्ग उत्पन्न हुआ। वे सभी संग्रह न करनेवाले, फिर भी बाँटनेके स्वभाववाले, उपभोग करनेवाले तथा शीलरहित 'भूतादि' इस नामसे कहे गये हैं। ब्राह्मणश्रेष्ठो! इस प्रकार ये पाँच सर्ग कहे गये हैं ॥ ११-१२ ॥

ब्रह्माका वह पहला सर्ग महत्सर्ग कहा गया है। तन्मात्राओंका दूसरा सर्ग भूतसर्ग कहलाता है। तीसरा वैकारिक सर्ग ऐन्द्रियक सर्ग कहा जाता है। इस प्रकार यह प्राकृत सर्ग अबुद्धिपूर्वक हुआ। चौथा सर्ग मुख्य सर्ग है। स्थावर (जड पदार्थ) मुख्य कहलाते हैं। तिर्यक्षोतसे जिस सर्गको बतलाया है वह तिर्यग्येनिवाला पाँचवाँ सर्ग है। तदनन्तर ऊर्ध्वस्त्रोतसोंका छठा सर्ग है जो देवसर्ग कहलाता है। तदनन्तर अर्वाक्षोतसोंका सातवाँ सर्ग है जो मानुष सर्ग है। भूतादिकोंका आठवाँ सर्ग भौतिक सर्ग कहा गया है। नवाँ सर्ग कौमार सर्ग है। इस प्रकार ये नवों सर्ग प्राकृत तथा वैकृत दोनों प्रकारके हैं ॥ १३-१७ ॥

मुनिश्रेष्ठो! पहलेके तीन सर्ग (महत्सर्ग, भूतसर्ग तथा ऐन्द्रियक सर्ग) प्राकृत सर्ग हैं, जो अबुद्धिपूर्वक होते हैं। और मुख्य आदि सर्ग (अवशिष्ट ६ सर्ग) बुद्धिपूर्वक होते हैं ॥ १८ ॥

प्रजापति ब्रह्माजीने सबसे पहले अपने ही समान सनक, सनातन, सनन्दन, ऋभु तथा सनत्कुमार नामक मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया। हे ब्राह्मणो! ये पाँचों योगी थे, परम वैराग्यवान् थे और ईश्वरमें उनका मन आसक्त था। (इसलिये) उन्होंने सृष्टि (-के विस्तार)-में अपनी बुद्धि नहीं लगायी ॥ १९-२० ॥

तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ प्रजापतिः ।  
मुमोह मायया सद्यो मायिनः परमेष्ठिनः ॥ २१ ॥

तं बोधयामास सुतं जगन्मायो महामुनिः ।  
नारायणो महायोगी योगिचित्तानुरञ्जनः ॥ २२ ॥

बोधितस्तेन विश्वात्मा तताप परमं तपः ।  
स तत्प्रयमानो भगवान् न किञ्चित् प्रत्यपद्यत ॥ २३ ॥  
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात् क्रोधो व्यजायत ।  
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ॥ २४ ॥

भृकुटीकुटिलात् तस्य ललाटात् परमेश्वरः ।  
समुत्पन्नो महादेवः शरण्यो नीललोहितः ॥ २५ ॥

स एव भगवानीशस्तेजोराशिः सनातनः ।  
यं प्रपश्यन्ति विद्वांसः स्वात्मस्थं परमेश्वरम् ॥ २६ ॥

ओंकारं समनुस्मृत्य प्रणम्य च कृताञ्जलिः ।  
तमाह भगवान् ब्रह्मा सृजेमा विविधाः प्रजाः ॥ २७ ॥

निशम्य भगवान् वाक्यं शंकरो धर्मवाहनः ।  
स्वात्मना सदृशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिवः ।  
कर्पर्दिनो निरातङ्कांस्त्रिनेत्रान् नीललोहितान् ॥ २८ ॥

तं प्राह भगवान् ब्रह्मा जन्ममृत्युयुताः प्रजाः ।  
सृजेति सोऽब्रवीदीशो नाहं मृत्युजरान्विताः ।  
प्रजाः स्वक्षये जगन्नाथं सृज त्वमशुभाः प्रजाः ॥ २९ ॥

निवार्य च तदा रुद्रं ससर्ज कमलोद्धवः ।  
स्थानाभिमानिनः सर्वान् गदतस्तान् निबोधत ॥ ३० ॥  
आपोऽग्निरन्तरिक्षं च द्यौर्वायुः पृथिवी तथा ।  
नद्यः समुद्राः शैलाश्च वृक्षां वीरुद्ध एव च ॥ ३१ ॥  
लवाः काष्ठाः कलाशचैव मुहूर्ता दिवसाः क्षपाः ।  
अर्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगादयः ॥ ३२ ॥

लोकसृष्टिके कार्यमें उनके इस प्रकार निरपेक्ष (उदासीन) हो जानेपर प्रजापति (ब्रह्मा) मायापति परमेष्ठीकी\* मायाके द्वारा तत्काल मोहित कर लिये गये। योगियोंके चित्तका अनुरङ्गन करनेवाले जगत्कर्ता महायोगी, महामुनि नारायणने (अपने) उस पुत्र (ब्रह्मा)-को प्रबुद्ध किया। (तब) उनके द्वारा प्रबुद्ध किये गये विश्वात्मा (ब्रह्मा)-ने परम तप किया, (किंतु) तप करनेपर भी उन भगवान् ब्रह्माको कुछ प्राप्त नहीं हुआ ॥ २१—२३ ॥

तदनन्तर बहुत समय बीत जानेपर (प्रयोजन सिद्ध न होनेके कारण उन्हें) दुःखके कारण क्रोध उत्पन्न हुआ। क्रोधसे आविष्ट उन (ब्रह्मा)-के नेत्रोंसे आँसूकी बूँदें गिरीं। उनके (क्रोधके कारण) टेढ़ी भृकुटियोंवाले ललाटसे शरण देनेवाले नीललोहित परमेश्वर महादेव प्रकट हुए। वे ही तेजकी राशि सनातन भगवान् ईश हैं, जिन्हें विद्वान् लोग अपनी आत्मामें स्थित परमेश्वर (परमात्मा)-के रूपमें देखते हैं ॥ २४—२६ ॥

ओंकारका सम्यक् रूपसे स्मरणकर और प्रणामकर हाथ जोड़ते हुए भगवान् ब्रह्माने उन (महादेव)-से कहा—इन अनेक प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि करें ॥ २७ ॥

धर्म (वृषभ)-पर आस्तु होनेवाले धर्मवाहन मङ्गलकारी भगवान् शिवने (ब्रह्माके) वचनको सुनकर मनसे अपने ही समान जटाधारी, आतंकरहित, तीन नेत्रवाले एवं नीललोहित रुद्रोंको उत्पन्न किया ॥ २८ ॥

उनसे भगवान् ब्रह्माने कहा—जन्म लेनेवाली और मृत्युको प्राप्त होनेवाली प्रजाकी सृष्टि करो। वे ईश बोले—हे जगन्नाथ! मैं मृत्यु एवं वृद्धावस्थाको प्राप्त होनेवाली प्रजाकी सृष्टि नहीं करूँगा। ऐसी अशुभ प्रजाओंको आप ही उत्पन्न करें ॥ २९ ॥

तब कमलसे उत्पन्न ब्रह्माने (सृष्टि-विस्तारके कार्यसे) रुद्रको रोककर (स्वयं) सभी स्थानाभिमानियोंको उत्पन्न किया, मैं उन्हें बता रहा हूँ (आपलोग) सुनें ॥ ३० ॥

जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, आकाश, वायु और पृथ्वी इसी प्रकार नदी, समुद्र, पर्वत, वृक्ष, वनस्पति, लव, काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिन-रात, अर्धमास, मास, अयन, वर्ष तथा युग आदि ॥ ३१-३२ ॥

\* छठे अध्यायमें ब्रह्मा और नारायणमें अभेद माना गया है, अतः यहाँ परमेष्ठी शब्द 'नारायण' का वाचक है।

स्थानाभिमानिनः सृष्टा साधकानसृजत् पुनः ।  
मरीचिभृगवङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।  
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च धर्मं संकल्पमेव च ॥ ३३ ॥  
प्राणाद् ब्रह्मासृजद् दक्षं चक्षुषश्च मरीचिनम् ।  
शिरसोऽङ्गिरसं देवो हृदयाद् भृगुमेव च ॥ ३४ ॥

श्रोत्राभ्यामत्रिनामानं धर्मं च व्यवसायतः ।  
संकल्पं चैव संकल्पात् सर्वलोकपितामहः ॥ ३५ ॥

पुलस्त्यं च तथोदानाद् व्यानाच्च पुलहं मुनिम् ।  
अपानात् क्रतुमव्यग्रं समानाच्च वसिष्ठकम् ॥ ३६ ॥  
इत्येते ब्रह्मणा सृष्टाः साधका गृहमेधिनः ।  
आस्थाय मानवं रूपं धर्मस्तैः सम्प्रवर्तितः ॥ ३७ ॥

ततो देवासुरपितृन् मनुष्यांश्च चतुष्टयम् ।  
सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ॥ ३८ ॥  
युक्तात्मनस्तमोमात्रा उद्गित्ताभूत् प्रजापते ।  
ततोऽस्य जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः ॥ ३९ ॥

उत्ससर्जसुरान् सृष्टा तां तनुं पुरुषोत्तमः ।  
सा चोत्सृष्टा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत ।  
सा तमोबहुला यस्मात् प्रजास्तस्यां स्वपन्त्यतः ॥ ४० ॥  
सत्त्वमात्रात्मिकां देवस्तनुमन्यामगृह्णत ।  
ततोऽस्य मुखतो देवा दीव्यतः सम्प्रजज्ञिरे ॥ ४१ ॥

त्यक्ता सापि तनुस्तेन सत्त्वप्रायमभूद् दिनम् ।  
तस्मादहो धर्मयुक्ता देवताः समुपासते ॥ ४२ ॥  
सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम् ।  
पितृवन्मन्यमानस्य पितरः सम्प्रजज्ञिरे ॥ ४३ ॥

उत्ससर्ज पितृन् सृष्टा ततस्तामपि विश्वसृक् ।  
सापविद्वा तनुस्तेन सद्यः संध्या व्यजायत ॥ ४४ ॥

तस्मादहर्देवतानां रात्रिः स्याद् देवविद्विषाम् ।  
तयोर्मध्ये पितृणां तु मूर्तिः संध्या गरीयसी ॥ ४५ ॥

स्थानाभिमानियोंकी सर्जना कर पुनः सृष्टिके सहायकों—  
मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि,  
वसिष्ठ, धर्म एवं संकल्पको उत्पन्न किया ॥ ३३ ॥

सभी लोकोंके पितामह ब्रह्मदेवने प्राण (वायु)-से  
दक्षको उत्पन्न किया, इसी प्रकार नेत्रोंसे मरीचि, सिसे  
अङ्गिरा, हृदयसे भृगु, कानोंसे अत्रि नामवाले (ऋषि)-  
को, व्यवसायसे धर्मको और संकल्पसे संकल्पको तथा  
ऐसे ही उदान (वायु)-से पुलस्त्य, व्यान (वायु)-से  
पुलह मुनि, अपान (वायु)-से शान्त स्वभाव क्रतु और  
समान (वायु)-से वसिष्ठको उत्पन्न किया ॥ ३४—३६ ॥

ब्रह्माके द्वारा उत्पन्न ये सभी गृहस्थ हैं तथा (सृष्टि-  
विस्तारके) सहयोगी हैं। मनुष्यका रूप धारणकर इन्होंने  
धर्मका प्रवर्तन किया। तदनन्तर देवता, असुर, पितर तथा  
मनुष्य—इन चारोंकी तथा जलकी सृष्टि करनेकी इच्छासे  
(ब्रह्माने) अपने-आपको नियुक्त किया ॥ ३७—३८ ॥

संयुक्त आत्मरूपवाले प्रजापतिसे तमोगुणकी मात्राका  
उद्रेक हुआ। तदनन्तर उनकी जंघासे पहले (तमोगुणी)  
असुर (योनिके) पुत्र उत्पन्न हुए। असुरोंकी सृष्टिकर  
पुरुषोत्तमने उस (तमोमय) शरीरका परित्याग कर  
दिया। उनके द्वारा छोड़ा गया वह शरीर शीघ्र ही रात्रिके  
रूपमें परिवर्तित हो गया। वह (रात्रि) चूँकि अन्धकारकी  
अधिकतावाली रहती है, अतः उसमें (रात्रिमें) प्रजाएँ  
सोती हैं ॥ ३९—४० ॥

(पुनः) देवने सत्त्वगुणात्मक दूसरे शरीरको धारण  
किया और तब उनके मुखसे दीसिमान् देवता प्रादुर्भूत  
हुए। उन्होंने (प्रजापतिने) वह शरीर भी छोड़ दिया।  
वह सत्त्वगुणकी अधिकतावाला शरीर दिन हुआ। धर्मात्मा  
देवता इसीलिये दिनका सेवन करते हैं ॥ ४१—४२ ॥

पुनः (उन्होंने) सत्त्वगुणात्मक ही एक दूसरे  
शरीरको धारण किया। पिताके समान माननेवाले उनके  
द्वारा पितर उत्पन्न हुए। विश्वकी रचना करनेवाले उन्होंने  
(ब्रह्माने) पितरोंकी सृष्टिकर उस शरीरको भी छोड़  
दिया। वह छोड़ा गया शरीर शीघ्र ही संध्याके रूपमें  
बदल गया ॥ ४३—४४ ॥

इसीलिये देवताओंके लिये दिन, देवविद्वेषी असुरोंके  
लिये रात तथा दिन और रातके मध्यकी संध्या जो  
पितरोंकी मूर्तिरूप है, वह प्रशस्त है ॥ ४५ ॥

तस्माद् देवासुराः सर्वे मनवो मानवास्तथा ।  
उपासते सदा युक्ता रात्र्यह्नोर्मध्यमां तनुम् ॥ ४६ ॥

रजोमात्रात्मिकां ब्रह्मा तनुमन्यामगृह्णत ।  
ततोऽस्य जङ्गिरे पुत्रा मनुष्या रजसावृताः ॥ ४७ ॥

तामप्याशु स तत्याज तनुं सद्यः प्रजापतिः ।  
ज्योत्स्ना सा चाभवद्विप्राः प्राक्संध्या याभिधीयते ॥ ४८ ॥

ततः स भगवान् ब्रह्मा सम्प्राप्य द्विजपुंगवाः ।  
मूर्ति तमोरजःप्रायां पुनरेवाभ्ययूजत् ॥ ४९ ॥

अन्धकारे क्षुधाविष्टा राक्षसास्तस्य जङ्गिरे ।  
पुत्रास्तमोरजःप्राया बलिनस्ते निशाचराः ॥ ५० ॥

सर्पा यक्षास्तथा भूता गन्धर्वाः सम्प्रजङ्गिरे ।  
रजस्तमोभ्यामाविष्टांस्ततोऽन्यानसृजत् प्रभुः ॥ ५१ ॥

वयांसि वयसः सृष्टा अवयो वक्षसोऽसृजत् ।  
मुखतोऽजान् ससर्जन्यान् उदराद् गाश्च निर्ममे ॥ ५२ ॥

पद्म्यां चाश्वान् समातङ्गान् रासभान् गवयान् मृगान् ।  
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यद्कूनन्यांश्च जातयः ।  
ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जङ्गिरे ॥ ५३ ॥

गायत्रीं च ऋचं चैव त्रिवृत्साम रथन्तरम् ।  
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥ ५४ ॥

यजूषि त्रैष्टुभ्यं छन्दः स्तोमं पञ्चदशं तथा ।  
बृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन्मुखात् ॥ ५५ ॥

सामानि जागतं छन्दःस्तोमं सप्तदशं तथा ।  
वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात् ॥ ५६ ॥

एकविंशमर्थर्वाणमासोर्यामाणमेव च ।  
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥ ५७ ॥

इसीलिये देवता, असुर, (स्वायम्भुव आदि) सभी मनु तथा सभी मनुष्य दिन और रातके मध्यमें सदा स्थित रहनेवाले (संध्यारूपी) शरीर (मूर्ति)-की उपासना करते हैं ॥ ४६ ॥

(तब) ब्रह्माने रजोगुणकी अधिकतावाले अन्य शरीरको धारण किया, जिससे रजोगुणसे आवृत उनके पुत्र उत्पन्न हुए, जो मनुष्य कहलाये ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणो ! उन प्रजापतिने शीघ्र ही उस (रजोगुणात्मक) शरीरको भी छोड़ दिया । वह (छोड़ा गया शरीर) ज्योत्स्नाके रूपमें हो गया, जिसे प्राक्संध्या कहा जाता है ॥ ४८ ॥

हे ब्राह्मणो ! भगवान् ब्रह्मा फिर तम तथा रजोमयी मूर्ति (शरीर)-को धारण कर पुनः योगयुक्त हुए । इस शरीरसे अन्धकारमें भूखसे व्याकुल होनेवाले राक्षस पुत्र उत्पन्न हुए । तमोगुण तथा रजोगुणकी अधिकतावाले वे महान् बलशाली पुत्र निशाचर कहलाये । ऐसे ही सर्प, यक्ष, भूत तथा गन्धर्व उत्पन्न हुए । तदनन्तर रजोगुण तथा तमोगुणसे आविष्ट अन्य प्राणियोंको भी प्रभुने उत्पन्न किया ॥ ४९—५१ ॥

वयः (अवस्था)-से पक्षियोंकी सृष्टि करनेके अनन्तर (ब्रह्माने) वक्षःस्थलसे भेड़ोंको उत्पन्न किया । मुखसे बकरोंको उत्पन्न किया और उदर-देशसे गौओंकी सृष्टि की । पैरोंसे हाथियोंसहित घोड़ों, गदहों, गायके समान ही दूसरे प्रकारकी गायों (नीलगाय आदि), मृगों, ऊँटों, खच्चरों, न्यद्वकुओं (मृग-विशेष) तथा अन्य (तिर्यक् आदि) योनियोंको उत्पन्न किया । फल-मूलवाली ओषधियाँ उनके रोमोंसे पैदा हुई ॥ ५२—५३ ॥

(ब्रह्माजीने अपने) प्रथम (पूर्व) मुखसे गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत्साम, रथन्तर (साम) और यज्ञोंमें अग्निष्टोम (नामक यज्ञ)-को उत्पन्न किया । दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, त्रिष्टुभ् छन्द, पञ्चदश स्तोम (मन्त्रोंका समूह-विशेष) बृहत्साम तथा उक्थ (नामक वेदमन्त्रों)-का सृजन किया । पश्चिम मुखसे सामवेद, जगती छन्द, सप्तदश स्तोम (मन्त्रोंका समूह-विशेष) और वैरूप तथा अतिरात्र नामक यज्ञोंको उत्पन्न किया । उत्तर मुखसे इक्षीस शाखाओंवाले अर्थवेद, अनुष्टुप् छन्द और आसोर्याम तथा वैराज (नामक यज्ञ)-को उत्पन्न किया ॥ ५४—५७ ॥

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जङ्गिरे ।  
ब्रह्मणो हि प्रजासर्ग सृजतस्तु प्रजापतेः ॥ ५८ ॥

सृष्टा चतुष्टयं सर्ग देवर्षिपितृमानुषम् ।  
ततोऽसृजच्च भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ५९ ॥  
यक्षान् पिशाचान् गच्छर्वास्तथैवाप्सरसः शुभाः ।  
नरकिन्नररक्षांसि वयःपशुमृगोरगान् ।  
अव्ययं च व्ययं चैव द्वयं स्थावरजड्मम् ॥ ६० ॥

तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्टौ प्रतिपेदिरे ।  
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥ ६१ ॥

हिंस्वाहिंस्वे मृदुकूरे धर्माधर्मावृतानुते ।  
तद्वाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात् तत् तस्य रोचते ॥ ६२ ॥

महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ।  
विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधात् स्वयम् ॥ ६३ ॥

नामरूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम् ।  
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ॥ ६४ ॥

आर्षाणि चैव नामानि याश्च वेदेषु दृष्टयः ।  
शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ॥ ६५ ॥

यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।  
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥ ६६ ॥

प्रजापति ब्रह्माके द्वारा प्रजाओंकी सृष्टि करते समय उनके शरीरसे उच्च एवं निम्र (कोटिके अन्य भी) प्राणियोंकी सृष्टि हुई । देवता, ऋषि, पितर तथा मनुष्य—इन चार प्रकारकी सृष्टि करके (ब्रह्माने) चर तथा अचर (सभी) प्राणियोंकी सृष्टि की ॥ ५८-५९ ॥

यक्षों, पिशाचों, गच्छर्वां तथा शुभ अप्सराओं, नरों, किन्नरों, राक्षसों, पक्षियों, पशुओं, मृगों तथा सर्पोंको उत्पन्न किया । नित्य एवं अनित्य-भेदसे चर एवं अचर सृष्टि दो प्रकारकी है । पहलेकी सृष्टियोंमें उन (प्राणियों)-के जो-जो कर्म निश्चित थे अगली सृष्टियोंमें भी उत्पन्न होकर वे बार-बार उन्हीं कर्मोंको प्राप्त करते हैं ॥ ६०-६१ ॥

इसीलिये उसी प्रकारकी भावना (संस्कार)-से प्रेरित होकर (वे प्राणी) हिंसक, अहिंसक, कोमल, क्रूर, धर्म-अधर्म तथा सत्य एवं असत्यकी प्रवृत्तियाँ प्राप्त करते हैं और वही (कर्म) उन्हें रुचिकर भी लगता है ॥ ६२ ॥

विधाताने स्वयं ही प्राणियोंकी इन्द्रियोंके विषयों, महाभूतों एवं मूर्तियोंमें भिन्नता और विनियोगकी व्यवस्था की है । उन महेश्वरने प्रारम्भमें वेदके शब्दोंसे ही प्राणियोंके नाम और रूप तथा कर्मोंकी विविधताका निर्माण किया । वेदोंमें जिन सिद्धान्तों और आर्ष नामोंका प्रतिपादन हुआ है, उन्हीं नामोंको ब्रह्मा (प्रलयकालीन) रात्रिके अन्तमें उत्पन्न पदार्थोंको प्रदान करते हैं ॥ ६३—६५ ॥

प्रलयकालसे पूर्व जो ऋतुएँ और ऋतुओंके चिह्न तथा अनेक प्रकारके रूप (आकार) दिखलायी देते थे, अगले युगोंमें वे उन्हीं-उन्हीं (नाम-रूपों तथा) भावोंमें प्रकट होकर दिखलायी देते हैं ॥ ६६ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षद्साहस्रयां संहितायां पूर्वविभागे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७ ॥



## आठवाँ अध्याय

**सृष्टि-वर्णनमें ब्रह्माजीसे मनु और शतरूपाका प्रादुर्भाव, स्वायम्भुव मनुके वंशका  
वर्णन, दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंका वर्णन तथा उनका विवाह,  
धर्म तथा अधर्मकी संतानोंका विवरण**

श्रीकूर्म उवाच

एवं भूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च ।  
यदा चास्य प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धन्त धीमतः ॥ १ ॥

तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदाशोचत दुःखितः ।  
ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ॥ २ ॥

अथात्मनि समद्राक्षीत् तमोमात्रां नियामिकाम् ।  
रजःसत्त्वं च संवृत्य वर्तमानां स्वर्धमतः ॥ ३ ॥

तमस्तद् व्यनुदत् पश्चात् रजः सत्त्वेन संयुतः ।  
तत् तमः प्रतिनुन्नं वै मिथुनं समजायत ॥ ४ ॥

अधर्माचरणो विप्रा हिंसा चाशुभलक्षणा ।  
स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहत भास्वराम् ॥ ५ ॥

द्विधाकरोत् पुनर्देहमर्थेन पुरुषोऽभवत् ।  
अर्थेन नारी पुरुषो विराजमसृजत् प्रभुः ॥ ६ ॥

नारीं च शतरूपाख्यां योगिनीं ससृजे शुभाम् ।  
सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य संस्थिता ॥ ७ ॥

योगैश्वर्यबलोपेता ज्ञानविज्ञानसंयुता ।  
योऽभवत् पुरुषात् पुत्रो विराङ्गव्यक्तजन्मनः ॥ ८ ॥

स्वायम्भुवो मनुर्देवः सोऽभवत् पुरुषो मुनिः ।  
सा देवी शतरूपाख्या तपः कृत्वा सुदुश्शरम् ॥ ९ ॥

भर्तारं ब्रह्मणः पुत्रं मनुमेवान्वपद्यत ।  
तस्माच्च शतरूपा सा पुत्रद्वयमसूयत ॥ १० ॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ कन्याद्वयमनुत्तमम् ।  
तयोः प्रसूतिं दक्षाय मनुः कन्यां ददौ पुनः ॥ ११ ॥

**श्रीकूर्मने कहा—**इस प्रकार स्थावर तथा जङ्गम प्राणियोंकी सृष्टि हुई, किंतु जब उन बुद्धिमान् (ब्रह्मा)-द्वारा उत्पन्न की गयी प्रजाओंमें वृद्धि नहीं हुई, तब तमोगुणकी अधिकतासे आवृत ब्रह्मा दुःखी होकर चिन्ता करने लगे और फिर उन्होंने अर्थका निश्चय करनेवाली बुद्धिको ग्रहण किया ॥ १-२ ॥

तदनन्तर उन्होंने स्वर्धमानुसार रजोगुण एवं सत्त्वगुणको आवृत कर स्थित रहनेवाली तथा (कर्मकी) नियमिका (तमोवृत्ति)-को अपनी आत्मामें देखा । तत्पश्चात् सत्त्वगुणसे संयुक्त रजोगुणने उस तमोगुणको दूर किया और दूर हुआ वह तम दो भागोंमें विभक्त हो गया ॥ ३-४ ॥

हे ब्राह्मणो ! (इस प्रकार दो भागोंमें विभक्त हुए तमसे) अधर्माचरण और अशुभ लक्षणोंवाली हिंसा उत्पन्न हुई । तब ब्रह्माजीने अपने उस प्रकाशमान शरीरको छोड़ दिया ॥ ५ ॥

पुनः (पुरातन) पुरुष प्रभुने अपने शरीरको दो भागोंमें बाँटा । आधेसे पुरुष हुआ और आधेसे नारी । तत्पश्चात् (उन्होंने) विराट् पुरुषको उत्पन्न किया ॥ ६ ॥

उन्होंने 'शतरूपा' नामवाली कल्याणमयी योगिनी नारीको बनाया, वह पृथिवी-लोक तथा द्युलोकको अपनी महिमासे व्याप्तकर प्रतिष्ठित हुई ॥ ७ ॥

(वह शतरूपा नामवाली नारी) योगके ऐश्वर्य एवं बलसे सम्पन्न तथा ज्ञान-विज्ञानसे युक्त थी । (और) जो पुरुषसे अव्यक्तजन्मा ब्रह्माका विराट् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह देवपुरुष मुनि स्वायम्भुव मनुके रूपमें प्रसिद्ध हुआ । शतरूपा नामवाली उस देवीने अत्यन्त कठोर तप करके ब्रह्माजीके पुत्र (स्वायम्भुव) मनुको ही (अपना) पति बनाया और शतरूपाने उनसे (मनुसे) दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ८-१० ॥

(ये ही) प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दो पुत्र थे । (इनके अतिरिक्त) दो श्रेष्ठ कन्याएँ भी हुईं । उन दो कन्याओंमेंसे स्वायम्भुव मनुने प्रसूति नामक एक कन्या दक्ष प्रजापतिको प्रदान की ॥ ११ ॥

प्रजापतिरथाकूतिं मानसो जगृहे रुचिः ।  
आकूत्यां मिथुनं जङ्गे मानसस्य रुचेः शुभम् ।  
यज्ञश्च दक्षिणा चैव याभ्यां संवर्धितं जगत् ॥ १२ ॥

यज्ञस्य दक्षिणायां तु पुत्रा द्वादश जङ्गिरे ।  
यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ १३ ॥  
प्रसूत्यां च तथा दक्षश्वतस्त्रो विंशतिं तथा ।  
ससर्ज कन्या नामानि तासां सम्यक् निबोधत ॥ १४ ॥  
श्रद्धा लक्ष्मीर्थृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ।  
बुद्धिर्लंजा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी ॥ १५ ॥  
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः शुभाः ।  
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः ॥ १६ ॥

ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ।  
संततिश्वानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥ १७ ॥  
भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः ।  
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुः परमधर्मवित् ॥ १८ ॥  
अत्रिवसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम् ।  
ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्तमाः ॥ १९ ॥  
श्रद्धया आत्मजः कामो दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः ।  
धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः संतोष उच्यते ॥ २० ॥  
पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्रः श्रुतस्तथा ।  
क्रियायाश्चाभवत् पुत्रो दण्डः समय एव च ॥ २१ ॥  
बुद्ध्या बोधः सुतस्तद्वद्प्रमादो व्यजायत ।  
लज्जाया विनयः पुत्रो वपुषो व्यवसायकः ॥ २२ ॥  
क्षेमः शान्तिसुतश्चापि सुखं सिद्धिरजायत ।  
यशः कीर्तिसुतस्तद्विदित्येते धर्मसूनवः ॥ २३ ॥  
कामस्य हर्षः पुत्रोऽभूद् देवानन्दो व्यजायत ।  
इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्मस्य कीर्तिः ॥ २४ ॥  
जङ्गे हिंसा त्वधर्माद् निकृतिं चानृतं सुतम् ।  
निकृत्यनृतयोर्जङ्गे भयं नरक एव च ॥ २५ ॥  
माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः ।  
भयाज्ज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम् ॥ २६ ॥

आकूति नामक दूसरी कन्याको (ब्रह्माजीके) मानस पुत्र रुचि प्रजापतिने ग्रहण किया । मानस पुत्र रुचि प्रजापतिने आकूतिसे दो संतानें प्राप्त कीं—यज्ञ और दक्षिणा, जिनसे संसार वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥

यज्ञके दक्षिणासे बारह पुत्र उत्पन्न हुए जो स्वायम्भुव मन्वन्तरमें 'याम' इस नामसे प्रसिद्ध देवता हुए और दक्ष प्रजापतिने प्रसूतिसे चौबीस कन्याओंको उत्पन्न किया, उनके नामोंको भलीभाँति सुनो—(वे हैं—) श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि तथा तेरहवीं कन्याका नाम है कीर्ति ॥ १३—१५ ॥

दक्ष प्रजापतिकी इन (तेरह दाक्षायणी) मङ्गलमयी कन्याओंको धर्मने पलीरूपमें ग्रहण किया । उन (तेरह कन्याओं)-के अतिरिक्त इनसे सुन्दर आँखोंवाली दक्षकी ग्यारह, अवस्थामें छोटी कन्याएँ और थीं (जिनके नाम हैं—) ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संतति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा तथा स्वधा ॥ १६—१७ ॥

श्रेष्ठ मुनियो! ख्याति, सती आदि जो (ग्यारह) कन्याएँ थीं, उन्हें क्रमशः भृगु, मरीचि, अङ्गिरा मुनि, पुलस्त्य, पुलह, परम धर्मज्ञ क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ नामक मुनियों, अग्निदेव और पितरोंने ग्रहण किया ॥ १८—१९ ॥

श्रद्धाका पुत्र 'काम' तथा लक्ष्मीका पुत्र 'दर्प' नामसे कहा जाता है । धृतिका 'नियम' नामक पुत्र तथा तुष्टिका (पुत्र) 'संतोष' कहलाता है ॥ २० ॥

पुष्टिका पुत्र 'लाभ' और मेधाका पुत्र 'श्रुत' हुआ । क्रियाका पुत्र 'दण्ड' हुआ और वही 'समय' भी कहलाता है । बुद्धिसे 'बोध' नामक पुत्र और उसी प्रकार 'अप्रमाद' नामक पुत्र भी हुआ । लज्जाका 'विनय' नामक पुत्र और वपुका 'व्यवसायक' हुआ । 'क्षेम' शान्तिका पुत्र और 'सुख' सिद्धिका पुत्र हुआ । इसी प्रकार कीर्तिका 'यश' नामक पुत्र हुआ । ये सभी धर्मके पुत्र हुए । कामका 'हर्ष' नामक पुत्र हुआ, जो देवताओंको आनन्द देनेवाला हुआ । यही (इतनी) धर्मकी सुखदायक सुष्टि कहलाती है ॥ २१—२४ ॥

अधर्मसे हिंसाने निकृति तथा अनृत नामक पुत्रको उत्पन्न किया । निकृति और अनृतसे भय तथा नरक नामक पुत्र उत्पन्न हुए । माया तथा वेदना—ये दो इनकी क्रमशः भय एवं नरककी पत्तियाँ हैं । मायाने भयसे समस्त प्राणियोंको मार देनेवाले मृत्युको उत्पन्न किया ॥ २५—२६ ॥

वेदना च सुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात्।  
मृत्योव्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे॥ २७॥

दुःखोत्तराः स्मृता होते सर्वे चाधर्मलक्षणाः।  
नैवां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूद्धरेतसः॥ २८॥

इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः।  
संक्षेपेण मया प्रोक्ता विसृष्टिमुनिपुंगवाः॥ २९॥

वेदनाने भी रौरव (नरक नामक पति)-से दुःख नामक पुत्र उत्पन्न किया। मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा तथा क्रोध उत्पन्न हुए॥ २७॥

ये सभी उत्तरोत्तर अधिक दुःखदायी कहे गये हैं और अधर्माचरण ही इनका लक्षण है। इनकी न कोई स्त्री है और न कोई पुत्र। ये सभी ऊर्ध्वरेता हैं॥ २८॥

श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार धर्मनियामकने तामस सर्गकी सृष्टि की। मैंने संक्षेपमें इस विशिष्ट सृष्टिका वर्णन किया॥ २९॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागेऽष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ ८॥

## नवाँ अध्याय

शेषशायी नारायणकी नाभिसे कमलकी उत्पत्ति तथा उसी कमलसे ब्रह्माका प्राकट्य, विष्णु-मायाद्वारा ब्रह्माका मोहित होकर विष्णुसे विवाद करना, भगवान् शंकरका प्राकट्य, विष्णुद्वारा ब्रह्माको शिवका माहात्म्य बताना, ब्रह्माद्वारा शिवकी स्तुति तथा शिव और विष्णुके एकत्वका प्रतिपादन

सूत उवाच

एतच्छुत्वा तु वचनं नारदाद्या महर्षयः।  
प्रणम्य वरदं विष्णुं पप्रच्छुः संशयान्विताः॥ १॥

ऋषय ऊचुः

कथितो भवता सर्गो मुख्यादीनां जनार्दनं।  
इदानीं संशयं चेममस्माकं छेत्तुर्मर्हसि॥ २॥

कथं स भगवानीशः पूर्वजोऽपि पिनाकधृक्।  
पुत्रत्वमगमच्छम्भुर्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ ३॥

कथं च भगवाङ्ज्ञे ब्रह्मा लोकपितामहः।  
अण्डजो जगतामीशस्तन्नो वक्तुमिहार्हसि॥ ४॥

श्रीकूर्म उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे शंकरस्यामितौजसः।  
पुत्रत्वं ब्रह्मणस्तस्य पद्मयोनित्वमेव च॥ ५॥

अतीतकल्पावसाने तमोभूतं जगत् त्रयम्।  
आसीदेकार्णवं सर्वं न देवाद्या न चर्षयः॥ ६॥

सूतजी बोले—नारद आदि महर्षियोंने यह वचन सुननेपर संशयग्रस्त होते हुए वरदाता विष्णुको प्रणामकर इस प्रकार पूछा—॥ १॥

ऋषियोंने कहा—हे जनार्दन! आपने मुख्य आदिकी सृष्टिका वर्णन किया। अब इस समय जो संशय हमें हो रहा है, उसे आप दूर करें—(ब्रह्मासे) पूर्वमें उत्पन्न होनेपर भी पिनाक नामक धनुषको धारण करनेवाले ईश भगवान् शिव किस प्रकार अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके पुत्रत्वको प्राप्त हुए और कैसे जगत्के स्वामी लोकपितामह अण्डज (हिरण्यगर्भ) भगवान् ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई, उसे आप हमें बतलायें॥ २—४॥

श्रीकूर्म बोले—ऋषियो! आप सभी सुनें— अमित तेजस्वी शंकर ब्रह्माके पुत्र-रूपमें कैसे हुए और कैसे ब्रह्मा कमलसे उत्पन्न हुए॥ ५॥

विगत कल्पकी समाप्तिपर तीनों लोकोंमें घोर अन्धकार व्याप्त हो गया। सर्वत्र केवल जल-ही-जल था। न कोई देवता आदि थे और न कोई ऋषिजन॥ ६॥

तत्र नारायणो देवो निर्जने निरुपल्लवे।  
आश्रित्य शेषशयनं सुष्वाप पुरुषोत्तमः ॥ ७ ॥

सहस्रशीर्षा भूत्वा स सहस्राक्षः सहस्रपात्।  
सहस्रबाहुः सर्वज्ञशिन्त्यमानो मनीषिभिः ॥ ८ ॥

पीतवासा विशालाक्षो नीलजीमूतसन्निभः।  
महाविभूतिर्योगात्मा योगिनां हृदयालयः ॥ ९ ॥

कदाचित् तस्य सुमस्य लीलार्थं दिव्यमद्भुतम्।  
त्रैलोक्यसारं विमलं नाभ्यां पङ्कजमुद्घभौ ॥ १० ॥

शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसंनिभम्।  
दिव्यगन्धमयं पुण्यं कर्णिकाकेसरान्वितम् ॥ ११ ॥  
तस्यैवं सुचिरं कालं वर्तमानस्य शार्ङ्गिणः।  
हिरण्यगर्भो भगवांस्तं देशमुपचक्रमे ॥ १२ ॥

स तं करेण विश्वात्मा समुत्थाप्य सनातनम्।  
प्रोवाच मधुरं वाक्यं मायया तस्य मोहितः ॥ १३ ॥

अस्मिन्नेकार्णवे घोरे निर्जने तमसावृते।  
एकाकी को भवाञ्छेते ब्रूहि मे पुरुषर्षभ ॥ १४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा विहस्य गरुडध्वजः।  
उवाच देवं ब्रह्माणं मेघगम्भीरनिःस्वनः ॥ १५ ॥  
भो भो नारायणं देवं लोकानां प्रभवाप्ययम्।  
महायोगेश्वरं मां त्वं जानीहि पुरुषोत्तमम् ॥ १६ ॥

मयि पश्य जगत् कृत्स्नं त्वां च लोकपितामहम्।  
सपर्वतमहाद्वीपं समुद्रैः सप्तभिर्वृत्तम् ॥ १७ ॥

एवमाभाष्य विश्वात्मा प्रोवाच पुरुषं हरिः।  
जानन्नपि महायोगी को भवानिति वेधसम् ॥ १८ ॥

ततः प्रहस्य भगवान् ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः।  
प्रत्युवाचाम्बुजाभाक्षं सम्प्रितं श्लक्षण्या गिरा ॥ १९ ॥

उस जनशून्य अत्यन्त शान्त (समुद्रमें) पुरुषोत्तम नारायणदेव शेषनागकी शव्याका आश्रय लेकर सोये हुए थे ॥ ७ ॥

हजारों सिर, हजारों नेत्र, हजारों चरण, हजारों बाहुवाले होकर वे विद्वानोंके चिन्तनके विषयरूप, सर्वज्ञ, पीतवस्त्रधारी, विशाल नेत्रवाले, नीले बादलके समान वर्णवाले, महाविभूतिस्वरूप, योगियोंके हृदयमें निवास करनेवाले योगात्मा (नारायण) जब किसी समय शेषशव्यापर शयन कर रहे थे, तब उनकी नाभिसे लीला करनेके लिये दिव्य अद्भुत, तीनों लोकोंका साररूप, एक स्वच्छ कमल प्रकट हुआ। (वह कमल) सौ योजन विस्तारवाला, तरुण आदित्यके समान प्रकाशमान, पुण्यमय दिव्य गन्धसे सम्पन्न और कर्णिकाएँ तथा केसरसे समन्वित था ॥ ८—११ ॥

शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले शार्ङ्गधन्वा (नारायण) इसी रूपमें बहुत समयसे निवास कर रहे थे तभी एक समय भगवान् हिरण्यगर्भ उस स्थानपर गये। उनकी मायासे मुग्ध उन विश्वात्माने उन (सुप्त) सनातन (पुरुष)-को हाथसे उठाकर यह मधुर वचन कहा— ॥ १२—१३ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! अन्धकारसे आवृत इस घोर, निर्जन एकार्णवमें अकेले सोनेवाले आप कौन हैं? मुझे बतायें ॥ १४ ॥

उनके इस वचनको सुनकर मेघके समान गम्भीर स्वरवाले गरुडध्वजने हँसकर ब्रह्मदेवसे कहा— ॥ १५ ॥

(ब्रह्माजी आप) मुझे ही समस्त लोकोंकी उत्पत्ति एवं संहार करनेवाला महायोगेश्वर एवं पुरुषोत्तम नारायण-देव जानें। पर्वत और महान् द्वीपोंसे युक्त सात समुद्रोंसे घिरे हुए इस सम्पूर्ण जगत्के साथ ही समस्त लोकोंके पितामह (ब्रह्माजी) आप अपनेको भी मुझमें ही देखें। ऐसा कहकर विश्वात्मा महायोगी हरिने (सब कुछ) जानते हुए भी ब्रह्मारूपी पुरुषसे कहा—आप कौन हैं? ॥ १६—१८ ॥

तदनन्तर वेदनिधि प्रभु भगवान् ब्रह्माने हँसकर कमलकी आभाके समान नेत्रवाले तथा मन्द-मन्द मुसकानवाले (भगवान् विष्णुको इस प्रकार) मधुर वाणीमें उत्तर दिया— ॥ १९ ॥

अहं धाता विधाता च स्वयम्भूः प्रपितामहः ।  
मत्येव संस्थितं विश्वं ब्रह्माहं विश्वतोमुखः ॥ २० ॥

श्रुत्वा वाचं स भगवान् विष्णुः सत्यपराक्रमः ।  
अनुज्ञाप्यथ योगेन प्रविष्टो ब्रह्मणस्तनुम् ॥ २१ ॥

त्रैलोक्यमेतत् सकलं सदेवासुरमानुषम् ।  
उदरे तस्य देवस्य दृष्ट्वा विस्मयमागतः ॥ २२ ॥

तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रनिकेतनः ।  
अजातशत्रुर्भगवान् पितामहमथाब्रवीत् ॥ २३ ॥  
भवानप्येवमेवाद्य शाश्वतं हि ममोदरम् ।  
प्रविश्य लोकान् पश्यैतान् विचित्रान् पुरुषर्थभ ॥ २४ ॥  
ततः प्रह्लादिनों वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च ।  
श्रीपतेरुदरं भूयः प्रविवेश कुशध्वजः ॥ २५ ॥

तानेव लोकान् गर्भस्थानपश्यत् सत्यविक्रमः ।  
पर्यटित्वा तु देवस्य ददृशेऽन्तं न वै हरेः ॥ २६ ॥  
ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि महात्मना ।  
जनार्दनेन ब्रह्मासौ नाभ्यां द्वारमविन्दत ॥ २७ ॥

तत्र योगबलेनासौ प्रविश्य कनकाण्डजः ।  
उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराच्यतुराननः ॥ २८ ॥  
विरराजारविन्दस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः ।  
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् जगद्योनिः पितामहः ॥ २९ ॥

स मन्यमानो विश्वेशमात्मानं परमं पदम् ।  
प्रोवाच पुरुषं विष्णुं मेघगर्भीरया गिरा ॥ ३० ॥

मैं ही धाता (धारण करनेवाला), विधाता (विधान बनानेवाला), स्वयम्भू (स्वयं ही उत्पन्न होनेवाला) और प्रपितामह हूँ। मुझमें ही (सम्पूर्ण) विश्व स्थित है। मैं सभी ओर मुखवाला ब्रह्मा हूँ ॥ २० ॥

सत्यपराक्रम वे भगवान् विष्णु (ब्रह्मा)-का वचन सुनकर (उनकी) आज्ञा लेकर योगबलसे ब्रह्माके शरीरमें प्रविष्ट हुए। उन देव (ब्रह्मा)-के उदरमें देवता, असुर तथा मनुष्योंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको देखकर श्रीविष्णुको (अत्यन्त) आश्चर्य हुआ। तदनन्तर नागराजकी शाय्यापर निवास करनेवाले अजातशत्रु वे भगवान् (विष्णु) उनके (ब्रह्माके) मुखसे बाहर निकलकर पितामह (ब्रह्मा)-से बोले— ॥ २१—२३ ॥

पुरुषश्रेष्ठ ! आप भी अब इसी प्रकार मेरे उदरमें प्रविष्ट होकर सदा इन विचित्र लोकोंको देखें ॥ २४ ॥

तब भगवान् विष्णुकी यह आह्लाद प्रदान करनेवाली वाणी सुनकर और पुनः उनका (श्रीविष्णुका) अभिनन्दन कर कुशध्वज (ब्रह्मा)-ने लक्ष्मीपति (भगवान् विष्णु)-के उदरमें प्रवेश किया। सत्यविक्रम (ब्रह्मा)-ने उन्हें लोकोंको (भगवान् विष्णुके) उदरमें स्थित देखा (जिन्हें श्रीविष्णुने ब्रह्माके उदरमें देखा था)। देवके (उदरमें) भ्रमण करते हुए उन्हें हरि (विष्णु)-का कोई अन्त न दिखायी दिया ॥ २५—२६ ॥

तदनन्तर महात्मा जनार्दनने (अपनी इन्द्रियोंके) सभी द्वारोंको बंद कर दिया, तब ब्रह्माने उनकी नाभिमें द्वार प्राप्त किया। सुवर्णमय अण्डसे उत्पन्न चतुर्मुख (ब्रह्मा)-ने योगबलसे उसमें (नाभिमें) प्रवेश कर (नाभिसे उत्पन्न) कमलसे अपने रूपको बाहर निकाला ॥ २७—२८ ॥

पद्मगर्भके समान\* शोभावाले स्वयम्भू जगद्योनि, पितामह भगवान् ब्रह्मा अरविन्द (रक्त कमल)-पर बैठे हुए शोभित होने लगे। अपनेको सम्पूर्ण विश्वका स्वामी तथा परम पद (आश्रय) मानते हुए उन्होंने (ब्रह्माने) मेघके समान गम्भीर वाणीमें पुरुषोत्तम विष्णुसे कहा— ॥ २९—३० ॥

\* रक्त कमलके भीतर जैसी अरुणिमा होती है वैसी अरुणिमा (लालिमा-ललाई)-से सुशोभित।

किं कृतं भवतेदानीमात्मनो जयकाइक्षया ।  
एकोऽहं प्रबलो नान्यो मां वै कोऽभिभविष्यति ॥ ३१ ॥

श्रुत्वा नारायणो वाक्यं ब्रह्मणो लोकतन्त्रिणः ।  
सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यं बभाषे मधुरं हरिः ॥ ३२ ॥  
भवान् धाता विधाता च स्वयम्भूः प्रपितामहः ।  
न मात्सर्याभियोगेन द्वाराणि पिहितानि मे ॥ ३३ ॥

किन्तु लीलार्थमेवैतत्र त्वां बाधितुमिच्छया ।  
को हि बाधितुमन्विच्छेद देवदेवं पितामहम् ॥ ३४ ॥

न तेऽन्यथावगन्तव्यं मान्यो मे सर्वथा भवान् ।  
सर्वमन्वय कल्याणं यन्मयापहतं तव ॥ ३५ ॥

अस्माच्च कारणाद ब्रह्मान् पुत्रो भवतु मे भवान् ।  
पद्मयोनिरिति ख्यातो मत्प्रियार्थं जगन्मय ॥ ३६ ॥

ततः स भगवान् देवो वरं दत्त्वा किरीटिने ।  
प्रहर्षमतुलं गत्वा पुनर्विष्णुमभाषत ॥ ३७ ॥

भवान् सर्वात्मकोऽनन्तः सर्वेषां परमेश्वरः ।  
सर्वभूतान्तरात्मा वै परं ब्रह्म सनातनम् ॥ ३८ ॥

अहं वै सर्वलोकानामात्मा लोकमहेश्वरः ।  
मन्मयं सर्वमेवेदं ब्रह्माहं पुरुषः परः ॥ ३९ ॥

नावाभ्यां विद्यते ह्यन्यो लोकानां परमेश्वरः ।  
एका मूर्तिर्द्विधा भिन्ना नारायणपितामहौ ॥ ४० ॥

तेनैवमुक्तो ब्रह्माणं वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ।  
इयं प्रतिज्ञा भवतो विनाशाय भविष्यति ॥ ४१ ॥

किं न पश्यसि योगेशं ब्रह्माधिपतिमव्ययम् ।  
प्रधानपुरुषेशानं वेदाहं परमेश्वरम् ॥ ४२ ॥

यं न पश्यन्ति योगीन्द्राः सांख्या अपि महेश्वरम् ।  
अनादिनिधनं ब्रह्म तमेव शरणं ब्रज ॥ ४३ ॥

आपने अपनी विजयकी आकांक्षासे इस समय यह क्या किया (अपनी सभी इन्द्रियोंके द्वारोंको क्यों बंद कर दिया ?)। एकमात्र मैं ही सबसे बड़ा बलशाली हूँ और कोई नहीं है, मुझे कौन पराजित कर पायेगा ? ॥ ३१ ॥

लोकनियामक ब्रह्माका वचन सुनकर नारायण हरिने सान्त्वनापूर्वक यह मधुर वाक्य कहा— ॥ ३२ ॥

आप ही धाता, विधाता और स्वयम्भू पितामह हैं। (मैंने) ईर्ष्या-द्वेषके कारण अपने (शरीरके) द्वारोंको बंद नहीं किया, अपितु लीला करनेकी इच्छासे ही मैंने ऐसा किया न कि आपको बाधा पहुँचानेकी दृष्टिसे। देवाधिदेव पितामह आपको भला कौन बाधा पहुँचाना चाहेगा। आपको कुछ अन्यथा नहीं समझना चाहिये। आप मेरे लिये सभी प्रकारसे मान्य हैं। मेरे द्वारा जो आपका अपहरण हुआ है, उसमें आप सभी प्रकारसे अपना कल्याण ही समझें। इसी कारण ब्रह्मान्! मेरी प्रीतिके लिये आप मेरे पुत्र बनें। जगन्मूर्ति! आप 'पद्मयोनि' इस नामसे विख्यात हों॥ ३३—३६ ॥

तदनन्तर भगवान् देव (ब्रह्मा)-ने किरीटी (विष्णु)-को वर देकर अत्यन्त प्रसन्न होकर पुनः विष्णुसे कहा— ॥ ३७ ॥

आप सभीके आत्मरूप हैं, अनन्त हैं और सभीके परम ईश्वर हैं। आप सभी प्राणियोंकी अन्तरात्मा हैं तथा आप ही सनातन परब्रह्म हैं। मैं ही सभी लोकोंकी आत्मा एवं लोकमहेश्वर हूँ। यह सब कुछ मेरा ही स्वरूप है। मैं परम पुरुष ब्रह्म हूँ। हम दोनोंके अतिरिक्त लोकोंका परमेश्वर दूसरा अन्य कोई नहीं है, नारायण और पितामहके रूपमें एक मूर्ति ही दो भागोंमें विभक्त हुई है॥ ३८—४० ॥

उनके (ब्रह्माके) द्वारा ऐसा कहे जानेपर वासुदेव ब्रह्मासे इस प्रकार बोले—यह प्रतिज्ञा\* आपके विनाशका कारण बनेगी। क्या आप ब्रह्माधिपति योगेश्वर, अव्यय एवं प्रधान पुरुष ईशान (शंकर)-को नहीं देख रहे हैं? मैं उन परमेश्वरको जानता हूँ। योगीन्द्र तथा सांख्यशास्त्रके ज्ञाता भी जिन महेश्वरका दर्शन नहीं कर पाते, आप उन्हीं अनादिनिधन ब्रह्मकी शरण ग्रहण करें॥ ४१—४३ ॥

\* हम दोनोंके अतिरिक्त दूसरा परमेश्वर नहीं है—यह प्रतिज्ञा।

ततः कुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम्।  
भवान् न नूनमात्मानं वेत्ति तत् परमक्षरम्॥ ४४॥

ब्रह्माणं जगतामेकमात्मानं परमं पदम्।  
नावाभ्यां विद्यते ह्यन्यो लोकानां परमेश्वरः॥ ४५॥

संत्यज्य निद्रां विपुलां स्वमात्मानं विलोकय।  
तस्य तत् क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा विष्णुरभाषत॥ ४६॥

मा मैवं वद कल्याणं परिवादं महात्मनः।  
न मेऽस्त्यविदितं ब्रह्मन् नान्यथाहं वदामि ते॥ ४७॥

किन्तु मोहयति ब्रह्मन् भवन्तं पारमेश्वरी।  
मायाशेषविशेषाणां हेतुरात्मसमुद्भवा॥ ४८॥

एतावदुक्त्वा भगवान् विष्णुस्तूष्णीं बभूव ह।  
ज्ञात्वा तत् परमं तत्त्वं स्वमात्मानं महेश्वरम्॥ ४९॥

कुतोऽप्यपरिमेयात्मा भूतानां परमेश्वरः।  
प्रसादं ब्रह्मणे कर्तुं प्रादुरासीत् ततो हरः॥ ५०॥

ललाटनयनोऽनन्तो जटामण्डलमण्डितः।  
त्रिशूलपाणिर्भगवांस्तेजसां परमो निधिः॥ ५१॥

दिव्यां विशालां ग्रथितां ग्रहैः सार्केन्दुतारकैः।  
मालामत्यद्भुताकारां धारयन् पादलम्बिनीम्॥ ५२॥

तं दृष्ट्वा देवमीशानं ब्रह्मा लोकपितामहः।  
मोहितो माययात्यर्थं पीतवाससमब्रवीत्॥ ५३॥

क एष पुरुषोऽनन्तः शूलपाणिस्त्रिलोचनः।  
तेजोराशिरमेयात्मा समायाति जनार्दन॥ ५४॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा विष्णुर्दानवर्मदनः।  
अपश्यदीश्वरं देवं ज्वलनं विमलेऽभ्यसि॥ ५५॥

ज्ञात्वा तत्परमं भावमैश्वरं ब्रह्माभावनम्।  
प्रोवाचोत्थाय भगवान् देवदेवं पितामहम्॥ ५६॥

अयं देवो महादेवः स्वयंज्योतिः सनातनः।  
अनादिनिधनोऽचिन्त्यो लोकानामीश्वरो महान्॥ ५७॥

तदनन्तर कुद्ध ब्रह्माने कमलकी आभाके समान नेत्रवाले केशवसे कहा—निश्चित ही आप अपने—आपको वह परम अक्षर, जगत्का एकमात्र आत्मरूप, ब्रह्मरूप, परम पद (शरण) नहीं जान रहे हैं। हम दोनोंके अतिरिक्त लोकोंका परमेश्वर और दूसरा कोई विद्यमान नहीं है। आप दीर्घ निद्राका परित्याग कर अपने—आपको देखें (पहचानें)। उनके (ब्रह्माके) इस क्रोधयुक्त वचनको सुनकर विष्णुने कहा—हे कल्याण! इस प्रकार न कहें, इस प्रकार न कहें, (यह उन) महात्माकी निदा है। ब्रह्मन्! मेरे लिये कुछ भी अज्ञात नहीं है, मैं आपसे असत्य नहीं कह रहा हूँ। किंतु ब्रह्मन्! आत्मासे समुद्भूत समस्त विशेषोंकी हेतुभूत परमेश्वरकी माया ही आपको मोहित कर रही है॥ ४४—४८॥

इतना कहकर भगवान् विष्णु अपने आत्मरूप महेश्वरको उस सर्वोत्कृष्ट परम तत्त्वके रूपमें जानकर चुप हो गये॥ ४९॥

तदनन्तर ब्रह्माके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये प्राणियोंके परम ईश्वर अपरिमेयात्मा (असीम सामर्थ्यसम्पन्न) हर (भगवान् शंकर) वहाँ प्रादुर्भूत हो गये। उन अनन्त (भगवान् शंकर)-के ललाटमें नेत्र था। वे जटामण्डलसे सुशोभित थे। तेजके परम निधि वे भगवान् हाथमें त्रिशूल लिये थे। उन्होंने सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों तथा नक्षत्रोंसे गुंथी हुई अद्भुत आकारबाली चरणोंतक लटकती हुई लम्बी दिव्य विशाल मालाको धारण कर रखा था॥ ५०—५२॥

उन ईशानदेवको देखकर मायासे अत्यन्त मोहित लोकपितामह ब्रह्माने (अपनी रक्षाके लिये) पीताम्बरधारी (विष्णु)—से कहा—हे जनार्दन! हाथमें त्रिशूल धारण किये, त्रिनेत्रधारी, तेजकी राशिरूप, अमेयात्मा यह कौन अनन्त पुरुष (यहाँ) चला आ रहा है॥ ५३—५४॥

उनके (ब्रह्माके) इस वचनको सुनकर दानवोंका मर्दन करनेवाले विष्णुने निर्मल जलमें देवीप्यमान देव ईश्वरको देखा। ईश्वर—सम्बन्धी उस परम भावरूप ब्रह्माभावको जानकर (महेश्वरमें परम तत्त्वका दर्शनकर) भगवान् (विष्णु) उठकर गये और देवदेव पितामहसे कहने लगे—॥ ५५—५६॥

ये देव स्वयं प्रकाशित होनेवाले, सनातन, आदि और अन्तसे रहित, अचिन्त्य, महान्, समस्त लोकोंके ईश्वर महादेव हैं॥ ५७॥

शंकरः शम्भुरीशानः सर्वात्मा परमेश्वरः ।  
भूतानामधिपो योगी महेशो विमलः शिवः ॥ ५८ ॥

एष धाता विधाता च प्रधानपुरुषेश्वरः ।  
यं प्रपश्यन्ति यतयो ब्रह्माभावेन भाविताः ॥ ५९ ॥

सृजत्येष जगत् कृत्स्नं पाति संहरते तथा ।  
कालो भूत्वा महादेवः केवलो निष्कलः शिवः ॥ ६० ॥

ब्रह्माणं विदधे पूर्वं भवन्तं यः सनातनः ।  
वेदांश्च प्रददौ तुभ्यं सोऽयमायाति शंकरः ॥ ६१ ॥

अस्यैव चापरां मूर्तिं विश्वयोनिं सनातनीम् ।  
वासुदेवाभिधानां मामवेहि प्रपितामह ॥ ६२ ॥

किं न पश्यसि योगेशं ब्रह्माधिपतिमव्ययम् ।  
दिव्यं भवतु ते चक्षुर्येन द्रक्ष्यसि तत्परम् ॥ ६३ ॥

लब्ध्वा शैवं तदा चक्षुर्विष्णोलोकपितामहः ।  
बुबुधे परमेशानं पुरतः समवस्थितम् ॥ ६४ ॥

स लब्ध्वा परमं ज्ञानमैश्वरं प्रपितामहः ।  
प्रपेदे शरणं देवं तमेव पितरं शिवम् ॥ ६५ ॥

ओंकारं समनुस्मृत्य संस्तभ्यात्मानमात्मना ।  
अथर्वशिरसा देवं तुष्टाव च कृताज्जलिः ॥ ६६ ॥

संस्तुतस्तेन भगवान् ब्रह्मणा परमेश्वरः ।  
अवाप परमां प्रीतिं व्याजहार स्मयन्निव ॥ ६७ ॥

मत्समस्त्वं न संदेहो मद्भक्तश्च यतो भवान् ।  
मयैवोत्पादितः पूर्वं लोकसृष्ट्यर्थमव्ययम् ॥ ६८ ॥

त्वमात्मा ह्यादिपुरुषो मम देहसमुद्घवः ।  
वरं वरय विश्वात्मन् वरदोऽहं तवानघ ॥ ६९ ॥

स देवदेववचनं निशम्य कमलोद्घवः ।  
निरीक्ष्य विष्णुं पुरुषं प्रणम्याह वृषध्वजम् ॥ ७० ॥

भगवन् भूतभव्येश महादेवाभिकापते ।  
त्वामेव पुत्रभिमच्छामि त्वया वा सदूशं सुतम् ॥ ७१ ॥

ये शंकर, शम्भु, ईशान, सर्वात्मा, परमेश्वर, समस्त प्राणियोंके एकमात्र स्वामी, योगी, महेश, विमल एवं शिवरूप (कल्याणरूप) हैं । ये ही धाता, विधाता, प्रधान पुरुष और ईश्वर हैं । यतिजन (संन्यासी लोग) ब्रह्मकी भावनासे भावित होकर जिनका दर्शन करते हैं वे ही केवल, निष्कल, महादेव शिव काल बनकर सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं, रक्षा करते हैं और संहार करते हैं ॥ ५८—६० ॥

ये वे ही शंकर आ रहे हैं, जिन सनातन (देव)-ने पूर्वकालमें आप ब्रह्माको बनाया और आपको वेद प्रदान किया । प्रपितामह ! मुझे इनकी ही विश्वयोनि, सनातन एवं वासुदेव नामवाली दूसरी मूर्ति समझो । क्या आप ब्रह्माके भी अधिपति, अव्यय योगेश्वरको नहीं देख रहे हैं ? आपकी दिव्य दृष्टि हो जाय, जिससे आप उस परम (तत्त्व)-को देख सकें ॥ ६१—६३ ॥

विष्णुसे इस प्रकार शैव-नेत्र (शिव-सम्बन्धी ज्ञान) प्राप्तकर लोक-पितामह (ब्रह्मा)-ने सामने अवस्थित परम ईशानको जाना । उन प्रपितामह (ब्रह्मा)-ने ईश्वर-सम्बन्धी परम ज्ञान प्राप्तकर उन्होंने पितृरूप देव शिवकी शरण ग्रहण की । ओंकार (तत्त्व)-का अनुस्मरणकर और आत्माद्वारा मनका निरोधकर उन्होंने अथर्ववेदके मन्त्रोंसे हाथ जोड़ते हुए (उन) देवकी प्रार्थना की ॥ ६४—६६ ॥

उन ब्रह्माके द्वारा स्तुति किये जानेपर भगवान् परमेश्वर (शिव)-को परम प्रीति प्राप्त हुई और वे मुसकराते हुए (इस प्रकार) बोले— ॥ ६७ ॥

तुम मेरे भक्त हो, इसलिये निःसंदेह तुम मेरे ही समान हो । मेरे द्वारा ही पहले संसारकी सृष्टि करनेके लिये तुम अव्ययको उत्पन्न किया गया था । मेरी देहसे उत्पन्न तुम (मेरी ही) आत्मा और आदि पुरुष हो । हे अनघ ! विश्वात्मन् ! वर माँगो । मैं तुम्हें वर प्रदान करूँगा ॥ ६८—६९ ॥

कमलसे उत्पन्न उन ब्रह्माने देवाधिदेव (शंकर)-के इस वचनको सुनकर विष्णुकी ओर देखा और उन (परम) पुरुष वृषध्वज (शंकर)-को प्रणामकर उनसे कहा— ॥ ७० ॥

हे भगवन् ! भूत एवं भविष्यके स्वामी ! महादेव ! अम्बिकाके पति ! मैं आपको ही पुत्र-रूपमें अथवा आपके ही समान पुत्र प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ ॥ ७१ ॥

मोहितोऽस्मि महादेव मायया सूक्ष्मया त्वया ।  
न जाने परमं भावं यथातथ्येन ते शिव ॥ ७२ ॥

त्वमेव देव भक्तानां भ्राता माता पिता सुहृत् ।  
प्रसीद तव पादाब्जं नमामि शरणं गतः ॥ ७३ ॥

स तस्य वचनं श्रुत्वा जगन्नाथो वृषध्वजः ।  
व्याजहार तदा पुत्रं समालोक्य जनार्दनम् ॥ ७४ ॥

यदर्थितं भगवता तत् करिष्यामि पुत्रक ।  
विज्ञानमैश्वरं दिव्यमुत्पत्स्यति तवानघ ॥ ७५ ॥

त्वमेव सर्वभूतानामादिकर्ता नियोजितः ।  
तथा कुरुष्व देवेश मया लोकपितामह ॥ ७६ ॥

एष नारायणोऽनन्तो ममैव परमा तनुः ।  
भविष्यति तवेशानो योगक्षेमवहो हरिः ॥ ७७ ॥

एवं व्याहृत्य हस्ताभ्यां प्रीतात्मा परमेश्वरः ।  
संस्पृश्य देवं ब्रह्माणं हरिं वचनमब्रवीत् ॥ ७८ ॥

तुष्टोऽस्मि सर्वथाहं ते भक्त्या तव जगन्मय ।  
वरं वृणीष्व नह्यावां विभिन्नौ परमार्थतः ॥ ७९ ॥

श्रुत्वाथ देववचनं विष्णुर्विश्वजगन्मयः ।  
प्राह प्रसन्नया वाचा समालोक्य चतुर्मुखम् ॥ ८० ॥

एष एव वरः श्लाघ्यो यदहं परमेश्वरम् ।  
पश्यामि परमात्मानं भक्तिर्भवतु मे त्वयि ॥ ८१ ॥

तथेत्युक्त्वा महादेवः पुनर्विष्णुपम्भाषत ।  
भवान् सर्वस्य कार्यस्य कर्ताहमधिदैवतम् ॥ ८२ ॥

मन्मयं त्वन्मयं चैव सर्वमेतत्र संशयः ।  
भवान् सोमस्त्वहं सूर्यो भवान् रात्रिरहं दिनम् ॥ ८३ ॥

भवान् प्रकृतिरव्यक्तमहं पुरुष एव च ।  
भवान् ज्ञानमहं ज्ञाता भवान् मायाहमीश्वरः ॥ ८४ ॥

भवान् विद्यात्मिका शक्तिः शक्तिमानहमीश्वरः ।  
योऽहं सुनिष्कलो देवः सोऽपि नारायणः परः ॥ ८५ ॥

एकीभावेन पश्यन्ति योगिनो ब्रह्मवादिनः ।  
त्वामनाश्रित्य विश्वात्मन् न योगी मामुपैष्यति ।  
पालयैतज्जगत् कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम् ॥ ८६ ॥

महादेव ! मैं आपकी सूक्ष्म मायाद्वारा मोहित कर लिया गया हूँ। शिव ! मैं आपके परम भावको यथार्थ-रूपमें नहीं जानता हूँ। देव ! आप ही भक्तोंके मातापिता, भाई तथा मित्र हैं। आप प्रसन्न हों। मैं आपके चरणकम्लोंमें प्रणाम करता हूँ और आपकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ७२-७३ ॥

तदनन्तर जगत्के स्वामी वृषध्वज (शंकर)-ने उनके वचन सुनकर पुत्र (रूप) जनार्दन (विष्णु)-की ओर देखकर (ब्रह्मासे) कहा— ॥ ७४ ॥

हे पुत्रक ! तुमने जैसी इच्छा की है मैं वैसा ही करूँगा। अनघ ! तुम्हें ईश्वर-सम्बन्धी दिव्य ज्ञान प्राप्त होगा। मेरे द्वारा तुम्हीं सभी प्राणियोंके प्रथम स्थानके रूपमें नियुक्त किये गये हो। अतः देवेश ! लोकपितामह ! तुम वैसा ही करो। ये नारायण एवं अनन्त (भगवान् विष्णु) मेरी ही श्रेष्ठ मूर्ति हैं। ये ईशान हरि तुम्हारे योग-क्षेमका वहन करनेवाले होंगे ॥ ७५-७७ ॥

ऐसा कहकर प्रसन्नचित्त परमेश्वर (शिव)-ने हाथोंसे देव ब्रह्माका स्पर्शकर हरि (विष्णु)-से कहा—हे जगन्मूर्ति ! तुम्हारी भक्तिसे मैं तुमपर सर्वथा प्रसन्न हूँ। वर माँगो। तत्त्वतः हम दोनों भिन्न नहीं हैं ॥ ७८-७९ ॥

इसके बाद महादेवका वचन सुनकर विश्वमय, जगन्मय विष्णुने चतुर्मुख ब्रह्माकी ओर देखकर प्रीतियुक्त वाणीमें (महादेवसे) कहा—मेरे लिये यही श्लाघनीय वर है कि मैं आप परमेश्वर परमात्माका दर्शन कर रहा हूँ। मेरी आपमें भक्ति हो ॥ ८०-८१ ॥

‘ऐसा ही हो’, यह कहकर महादेवने पुनः विष्णुसे कहा—आप सभी कार्योंके कर्ता हैं और मैं अधिदेवता हूँ। यह सब कुछ मेरा और आपका ही रूप है, इसमें कोई संदेह नहीं है। आप चन्द्रमा हैं, मैं सूर्य हूँ। आप रात्रि हैं, मैं दिन हूँ। आप प्रकृति हैं और मैं ही अव्यक्त पुरुष हूँ। आप ज्ञानरूप हैं और मैं ज्ञाता हूँ। आप मायारूप हैं और मैं ईश्वर हूँ। आप विद्यात्मिका शक्ति हैं, मैं शक्तिमान् ईश्वर हूँ और निष्कल देव परस्वरूप नारायण भी मैं ही हूँ ॥ ८२-८५ ॥

ब्रह्मवादी योगी (हम दोनोंको) एक भावसे ही देखते हैं। हे विश्वात्मन् ! बिना आपका आश्रय ग्रहण किये योगी मुझे प्राप्त नहीं कर सकते हैं। आप देवता, असुर तथा मनुष्योंसे युक्त इस सम्पूर्ण जगत्का पालन करें ॥ ८६ ॥

इतीदमुक्त्वा भगवाननादिः

स्वमायया मोहितभूतभेदः ।

जगाम जन्मर्थिविनाशहीनं

धामैकमव्यक्तमनन्तशक्तिः ॥ ८७ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्राणां संहितायां पूर्वविभागे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें नवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

## दसवाँ अध्याय

विष्णुद्वारा मधु तथा कैटभका वध, नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति तथा उनके द्वारा सनकादिकी सृष्टि, ब्रह्मासे रुद्रकी उत्पत्ति, रुद्रकी अष्टमूर्तियों, आठ नामों तथा आठ पत्नियोंका वर्णन, रुद्रके द्वारा अनेक रुद्रोंकी उत्पत्ति तथा पुनः वैराग्य ग्रहण करना, ब्रह्माद्वारा रुद्रकी स्तुति तथा माहात्म्य-वर्णन, रुद्रद्वारा ब्रह्माको ज्ञानकी प्राप्ति, महादेवका त्रिमूर्तित्व और ब्रह्माद्वारा अनेक प्रकारकी सृष्टि

श्रीकूर्म उवाच

गते महेश्वरे देवे स्वाधिवासं पितामहः ।  
तदेव सुमहत् पद्मं भेजे नाभिसमुत्थितम् ॥ १ ॥  
अथ दीर्घेण कालेन तत्राप्रतिमपौरुषौ ।  
महासुरौ समायातौ भ्रातरौ मधुकैटभौ ॥ २ ॥

क्रोधेन महताविष्टौ महापर्वतविग्रहौ ।  
कर्णान्तरसमुद्भूतौ देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ ३ ॥

तावागतौ समीक्ष्याह नारायणमजो विभुः ।  
त्रैलोक्यकण्टकावेतावसुरौ हन्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा हरिनारायणः प्रभुः ।  
आज्ञापयामास तयोर्वर्धार्थं पुरुषावुभौ ॥ ५ ॥

तदाज्ञया महद्युद्धं तयोस्ताभ्यामभूद् द्विजाः ।  
व्यनयत् कैटभं विष्णुर्जिष्णुश्च व्यनयन्मधुम् ॥ ६ ॥

ततः पद्मासनासीनं जगन्नाथं पितामहम् ।  
बभाषे मधुरं वाक्यं स्नेहाविष्टमना हरिः ॥ ७ ॥  
अस्मान्मयोच्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो ।  
नाहं भवन्तं शक्नोमि वोदुं तेजोमयं गुरुम् ॥ ८ ॥

ऐसा कहकर अपनी मायासे सम्पूर्ण प्राणियोंको मोहित करनेवाले अनादि एवं अनन्तशक्तिसम्पन्न भगवान् जन्म, विकास एवं विनाशसे रहित (अपने) अव्यक्त धाम (स्थान)-को चले गये ॥ ८७ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्राणां संहितायां पूर्वविभागे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें नवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

श्रीकूर्मने कहा—महेश्वर देवके अपने निवास-स्थानपर चले जानेके बाद पितामह (ब्रह्मा), (भगवान् विष्णुकी) नाभिसे उत्पन्न उसी विशाल सुन्दर कमलपर रहने लगे ॥ १ ॥

एक लम्बा समय व्यतीत हो जानेपर वहाँ अतुलित शक्तिवाले मधु तथा कैटभ नामक दो असुर आये, जो परस्पर भाई थे। देवोंके भी देव शार्ङ्गधारी भगवान् विष्णुके कानसे उत्पन्न तथा विशाल पर्वतके समान शरीरवाले और महान् क्रोधसे आविष्ट उन दोनों (मधु-कैटभ)-को आया हुआ देखकर अजन्मा, विभु (ब्रह्मा)-ने नारायणसे कहा—ये दोनों असुर तीनों लोकोंके लिये कण्टक हैं, आप इन्हें मारें ॥ २—४ ॥

उनके इस वचनको सुनकर प्रभु नारायण हरिने उन दोनोंका वध करनेके लिये (जिष्णु तथा विष्णु नामक) दो पुरुषोंको आज्ञा दी ॥ ५ ॥

हे ब्राह्मणो! उनकी आज्ञासे उन (विष्णु तथा जिष्णु)-से उन दोनों (मधु-कैटभ) असुरोंका महान् युद्ध हुआ। विष्णुने कैटभको जीता और जिष्णुने मधुको जीता। तदनन्तर स्नेहसे आविष्ट मनवाले हरिने कमलके आसनपर आसीन तथा जगन्नाथ पितामहसे मधुर वचन कहा— ॥ ६—७ ॥

प्रभो! मेरे कहनेसे आप अब इस कमलसे नीचे उतरें। तेजोमय, बहुत भारी आपको ढोनेमें मैं असमर्थ हूँ ॥ ८ ॥

ततोऽवतीर्य विश्वात्मा देहमाविश्य चक्रिणः ।  
अवाप वैष्णवीं निद्रामेकीभूयाथ विष्णुना ॥ ९ ॥

सहस्रशीर्षनयनः शङ्खचक्रगदाधरः ।  
ब्रह्मा नारायणाख्योऽसौ सुष्वाप सलिले तदा ॥ १० ॥

सोऽनुभूय चिरं कालमानन्दं परमात्मनः ।  
अनाद्यनन्तमद्वैतं स्वात्मानं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥ ११ ॥

ततः प्रभाते योगात्मा भूत्वा देवश्चतुर्मुखः ।  
ससर्ज सृष्टि तद्रूपां वैष्णवं भावमाश्रितः ॥ १२ ॥  
पुरस्तादसृजद् देवः सनन्दं सनकं तथा ।  
ऋभुं सनत्कुमारं च पूर्वजं तं सनातनम् ॥ १३ ॥

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः परं वैराग्यमास्थिताः ।  
विदित्वा परमं भावं न सृष्टौ दधिरे मतिम् ॥ १४ ॥

तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ पितामहः ।  
बभूव नष्टचेता वै मायया परमेष्ठिनः ॥ १५ ॥

ततः पुराणपुरुषो जगन्मूर्तिर्जनार्दनः ।  
व्याजहारात्मनः पुत्रं मोहनाशाय पद्मजम् ॥ १६ ॥  
विष्णुस्वाच

कच्चिन्विस्मृतो देवः शूलपाणिः सनातनः ।  
यदुक्तवानात्मनोऽसौ पुत्रत्वे तव शंकरः ॥ १७ ॥

अवाप्य संज्ञां गोविन्दात् पद्मयोनिः पितामहः ।  
प्रजाः स्वष्टुमनास्तेषु तपः परमदुश्शरम् ॥ १८ ॥

तस्यैवं तप्यमानस्य न किञ्चित् समवर्तत ।  
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात् क्रोधोऽस्यजायत ॥ १९ ॥  
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतत्रुबिन्दवः ।  
ततस्तेष्योऽश्रुबिन्दुभ्यो भूताः प्रेतास्तथाभवन् ॥ २० ॥

सर्वास्तानश्रुजान् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दत ।  
जहौ प्राणांश्च भगवान् क्रोधाविष्टः प्रजापतिः ॥ २१ ॥

तदा प्राणमयो रुद्रः प्रादुरासीत् प्रभोर्मुखात् ।  
सहस्रादित्यसंकाशो युगान्तदहनोपमः ॥ २२ ॥

तब विश्वात्मा (ब्रह्मा) नीचे उतरे और चक्र धारण करनेवाले विष्णुकी देहमें प्रविष्ट होकर वैष्णवी निद्राको प्राप्त हो गये । इस प्रकार विष्णुसे उनकी एकात्मता हो गयी ॥ ९ ॥

तब हजारों सिर तथा हजारों नेत्रवाले और शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करनेवाले वे नारायण नामवाले ब्रह्मा जलमें सो गये । उन्होंने बहुत समयतक परमात्माके अनादि, अनन्त, आत्मस्वरूप, ब्रह्मसंज्ञक अद्वैत आनन्दका अनुभव किया । तदनन्तर प्रभातकाल होनेपर योगात्मा देव चतुर्मुख होकर और वैष्णव भावका आश्रय ग्रहणकर उसी प्रकारकी (वैष्णवी) सृष्टि करने लगे ॥ १०—१२ ॥

उन देवने सर्वप्रथम पूर्वजोंके भी पूर्वज सनन्दन, सनक, ऋभु, सनत्कुमार तथा सनातनको उत्पन्न किया । (सुख-दुःख आदि) द्वन्द्व एवं मोह (आसक्ति)-से सर्वथा शून्य एवं परम वैराग्यभावमें स्थित इन सनक आदि ऋषियोंने परम तत्त्वको जानकर सृष्टिकार्यमें अपनी बुद्धि नहीं लगायी । उन (सनकादि)-के इस प्रकारके लोक-सृष्टिसे सर्वथा निरपेक्षभावको देखकर पितामह (ब्रह्मा) परमेष्ठी (परमात्मा—जनार्दन)-की मायासे मोहित हो गये । तब जगन्मूर्ति, पुराणपुरुष, जनार्दनने (नाभि) कमलसे उत्पन्न अपने पुत्र (ब्रह्मा)-का मोह नष्ट करनेके लिये उनसे कहा— ॥ १३—१६ ॥

विष्णु बोले—कहीं आप शूलपाणि सनातन-देवको भूल तो नहीं गये ? उन शंकरने अपनेको आपके पुत्र-रूपमें होनेकी बात कही थी ॥ १७ ॥

गोविन्दसे चेतना प्राप्तकर पद्मयोनि पितामह प्रजाकी सृष्टि करनेकी इच्छासे परम दुश्चर तप करने लगे । उनके इस प्रकार (दीर्घकालतक) तप करनेपर (भी) किसी भी प्रकारकी सृष्टि नहीं हुई । बहुत समय बीत जानेपर उन्हें दुःखसे क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ १८—१९ ॥

क्रोधाविष्ट उनके (ब्रह्माके) नेत्रोंसे आँसूकी बूँदें गिरीं । तब उन आँसुओंकी बूँदोंसे भूत-प्रेत उत्पन्न हुए । आँसुओंसे उत्पन्न उन सब (भूत-प्रेतों)-को देखकर क्रोधाविष्ट प्रजापति भगवान् ब्रह्माने अपनी ही निन्दा की और अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया ॥ २०—२१ ॥

तदनन्तर प्रभुके मुखसे हजारों सूर्यके समान देवीय-मान तथा प्रलयकालीन अग्निके सदृश प्राणमय रुद्र प्रकट हुए ॥ २२ ॥

रुरोद सुस्वरं घोरं देवदेवः स्वयं शिवः ।  
रोदमानं ततो ब्रह्मा मा रोदीरित्यभाषत ।  
रोदनाद् रुद्र इत्येवं लोके ख्यातिं गमिष्यसि ॥ २३ ॥

अन्यानि सप्त नामानि पल्नीः पुत्रांश्च शाश्वतान् ।  
स्थानानि चैषामष्टानां ददौ लोकपितामहः ॥ २४ ॥

भवः शर्वस्तथेशानः पशूनां पतिरेव च ।  
भीमश्चोग्रो महादेवस्तानि नामानि सप्त वै ॥ २५ ॥  
सूर्यो जलं मही वहिर्वायुराकाशमेव च ।  
दीक्षितो ब्राह्मणश्चन्द्र इत्येता अष्टमूर्तयः ॥ २६ ॥

स्थानेष्वेतेषु ये रुद्रं ध्यायन्ति प्रणमन्ति च ।  
तेषामष्टतनुदेवो ददाति परमं पदम् ॥ २७ ॥

सुवर्चला तथैवोमा विकेशी च तथा शिवा ।  
स्वाहा दिशश्च दीक्षा च रोहिणी चेति पलयः ॥ २८ ॥

शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः ।  
स्कन्दः सर्गोऽथ संतानो बुधश्चैषां सुताः स्मृताः ॥ २९ ॥  
एवम्प्रकारो भगवान् देवदेवो महेश्वरः ।  
प्रजाधर्मं च कामं च त्यक्त्वा वैराग्यमाश्रितः ॥ ३० ॥

आत्मन्याधाय चात्मानमैश्वरं भावमास्थितः ।  
पीत्वा तदक्षरं ब्रह्म शाश्वतं परमामृतम् ॥ ३१ ॥

प्रजाः सृजेति चादिष्ठो ब्रह्मणा नीललोहितः ।  
स्वात्मना सदृशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिवः ॥ ३२ ॥  
कपर्दिनो निरातङ्गन् नीलकण्ठान् पिनाकिनः ।  
त्रिशूलहस्तान् नृष्टिग्रान् महानन्दांस्त्रिलोचनान् ॥ ३३ ॥

जरामरणनिर्मुक्तान् महावृषभवाहनान् ।  
वीतरागांश्च सर्वज्ञान् कोटिकोटिशतान् प्रभुः ॥ ३४ ॥

तान् दृष्ट्वा विविधान् रुद्रान् निर्मलान् नीललोहितान् ।  
जरामरणनिर्मुक्तान् व्याजहार हरं गुरुः ॥ ३५ ॥

देवोंके भी देव स्वयं शिव उच्च स्वरमें घोर रुदन करने लगे । तब रुदन करते हुए उनसे ब्रह्माने 'मत रोओ'—इस प्रकारसे कहा । तुम रुदन करनेके कारण 'रुद्र' इस नामसे संसारमें प्रसिद्धि प्राप्त करोगे ॥ २३ ॥

लोकपितामहने (उन्हें रुद्रके अतिरिक्त) अन्य सात नाम, (आठ) पल्नियाँ, शाश्वत (दीर्घायु) पुत्र और आठ स्थानों\* (मूर्तियों)-को प्रदान किया ॥ २४ ॥

भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र तथा महादेव—ये सात नाम हैं । सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण तथा चन्द्र—ये (रुद्रकी) आठ मूर्तियाँ हैं ॥ २५-२६ ॥

जो इन आठ स्थानों (मूर्तिरूपों)-में रुद्रका ध्यान करते हैं और उन्हें प्रणाम करते हैं, उन्हें अष्टमूर्तिरूप देव (भगवान् शिव अपना) परम पद देते हैं ॥ २७ ॥

सुवर्चला, उमा, विकेशी, शिवा, स्वाहा, दिशाएँ, दीक्षा तथा रोहिणी—ये ही (रुद्रकी आठ) पल्नियाँ हैं । शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग (मंगल), मनोजव (कामदेव), स्कन्द, सर्ग, संतान तथा बुध—ये (आठ उनके) पुत्र कहे गये हैं ॥ २८-२९ ॥

इस प्रकारके देवाधिदेव भगवान् महेश्वरने प्रजाधर्म (सृष्टिकार्य) एवं काम (वासना)-का परित्यागकर वैराग्यका आश्रय ग्रहण किया । उस शाश्वत, परम अमृतरूपी अक्षर ब्रह्मका आस्वादनकर और आत्मामें आत्मतत्त्वका आधानकर वे ईश्वरभावमें स्थित हो गये ॥ ३०-३१ ॥

ब्रह्माके द्वारा 'प्रजाकी सृष्टि करो' इस प्रकारका आदेश प्राप्तकर नीललोहित शिवने मनसे अपने ही समान रुद्रोंकी सृष्टि की ॥ ३२ ॥

प्रभुने सैकड़ों करोड़ जटाजूट धारण करनेवाले, भयरहित, नीलकण्ठ, पिनाकपाणि, हाथमें त्रिशूल धारण किये, ऋषिष्ठ, महान् आनन्दस्वरूप, तीन नेत्रयुक्त, जरा-मरणसे रहित, विशाल वृषभोंको वाहनरूपमें स्वीकार करनेवाले सर्वज्ञ तथा वीतराग (रुद्रों)-को उत्पन्न किया ॥ ३३-३४ ॥

गुरु (ब्रह्मा)-ने जरा-मरणसे रहित, नीललोहित एवं निर्मल उन अनेक रुद्रोंको देखकर हर (शिव)-से कहा ॥ ३५ ॥

\* ये आठ स्थान सूर्य, जल आदि आगे गिनाये गये हैं । इनमें रुद्रका निवास है । इसीलिये ये आठ रुद्रकी मूर्ति माने जाते हैं ।

मा स्नाक्षीरीदृशीर्देव प्रजा मृत्युविवर्जिताः ।  
अन्याः सृजस्व भूतेश जन्ममृत्युसमन्विताः ॥ ३६ ॥

ततस्तमाह भगवान् कपर्दी कामशासनः ।  
नास्ति मे तादृशः सर्गः सृज त्वमशुभाः प्रजाः ॥ ३७ ॥

ततः प्रभृति देवोऽसौ न प्रसूतेऽशुभाः प्रजाः ।  
स्वात्मजैरेव तै रूद्रैर्निवृत्तात्मा ह्यतिष्ठत ।  
स्थाणुत्वं तेन तस्यासीद् देवदेवस्य शूलिनः ॥ ३८ ॥  
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः ।  
स्नष्टत्वमात्मसम्बोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च ॥ ३९ ॥

अव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शंकरे ।  
स एव शंकरः साक्षात् पिनाकी परमेश्वरः ॥ ४० ॥  
ततः स भगवान् ब्रह्मा वीक्ष्य देवं त्रिलोचनम् ।  
सहैव मानसैः पुत्रैः प्रीतिविस्फारिलोचनः ॥ ४१ ॥

ज्ञात्वा परतरं भावमैश्वरं ज्ञानचक्षुषा ।  
तुष्टाव जगतामेकं कृत्वा शिरसि चाज्जलिम् ॥ ४२ ॥

ब्रह्मोवाच

नमस्तेऽस्तु महादेव नमस्ते परमेश्वर ।  
नमः शिवाय देवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥ ४३ ॥

नमोऽस्तु ते महेशाय नमः शान्ताय हेतवे ।  
प्रथानपुरुषेशाय योगाधिपतये नमः ॥ ४४ ॥

नमः कालाय रुद्राय महाग्रासाय शूलिने ।  
नमः पिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमो नमः ॥ ४५ ॥

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं ब्रह्मणो जनकाय ते ।  
ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने ॥ ४६ ॥

हे देव ! मृत्युसे रहित इस प्रकारकी सृष्टि मत करो । भूतेश ! जन्म एवं मृत्युवाली दूसरी प्रकारकी सृष्टि करो ॥ ३६ ॥

तदनन्तर कामपर शासन करनेवाले जटाजूटधारी भगवान् (शिव) -ने उनसे कहा—मेरे पास उस प्रकारकी (जन्म-मृत्युसे युक्त) सृष्टि नहीं है । (ऐसी) अशुभ प्रजाओंको आप ही उत्पन्न करें । तबसे उन देवने अशुभ प्रजाओंकी सृष्टि नहीं की । (और) अपने आत्मज उन रुद्रोंके साथ वे निवृत्तात्मा (क्रियारहित)-के रूपमें स्थित हो गये । इसी कारण देवोंमें देव उन शूलधारी (शंकर) -का स्थाणुत्व हुआ (अर्थात् वे 'स्थाणु'<sup>१</sup> इस नामसे प्रसिद्ध हो गये) ॥ ३७-३८ ॥

भगवान् शंकरमें ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, स्नष्टत्व, आत्मज्ञान तथा अधिष्ठातृत्व—ये दस अव्यय (शाश्वत) गुण सदा प्रतिष्ठित रहते हैं । ये पिनाक धारण करनेवाले शंकर ही साक्षात् परमेश्वर हैं ॥ ३९-४० ॥

तदनन्तर प्रीतिसे विकसित नेत्रवाले भगवान् ब्रह्माने तीन नेत्रोंवाले देव (शंकर)-को मानस पुत्रोंके साथ देखा । ब्रह्माने अपनी ज्ञान-दृष्टिसे ईश्वर-सम्बन्धी परात्पर भावको जानकर जगत्के एकमात्र स्वामी (भगवान् शंकर)-की अपने मस्तकपर हाथोंकी अंजलि बाँधकर स्तुति की ॥ ४१-४२ ॥

ब्रह्माने कहा—महादेव ! आपको नमस्कार है । परमेश्वर ! आपको नमस्कार है । शिवको नमस्कार है । ब्रह्मरूपी देवको नमस्कार है । महेश ! आपको नमस्कार है । शान्तिके मूलहेतु ! आपको नमस्कार है । प्रधान पुरुषेश ! आपको नमस्कार है तथा योगाधिपति आपको नमस्कार है । काल, रुद्र, महाग्रास<sup>२</sup> तथा शूलीको नमस्कार है । हाथमें पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले आपको नमस्कार है । तीन नेत्रवालेको बार-बार नमस्कार है । त्रिमूर्तिस्वरूप आपको नमस्कार है । ब्रह्माके उत्पत्तिकर्ता आपके लिये नमस्कार है । ब्रह्मविद्याके अधिपति और ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है ॥ ४३-४६ ॥

१-स्थाणु-दृঁঠ। দৃঁঠকী হী তরহ নিক্রিয হোনেসে শিবকো স্থাণু কহা গয়া হৈ ।

২-মহাপ্রলয়মেং ভগবান् শংকর সমস্ত প্রাণিয়োঁকো অপনী গোদমেং সুলা লেতে হৈ—ইসলিয়ে মহাগ্রাস কহে জাতে হৈ ।

नमो वेदरहस्याय कालकालाय ते नमः ।  
वेदान्तसारसाराय नमो वेदात्ममूर्तये ॥ ४७ ॥

नमो बुद्धाय शुद्धाय योगिनां गुरवे नमः ।  
प्रहीणशोकैविविधैर्भूतैः परिवृताय ते ॥ ४८ ॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः ।  
त्रियम्बकाय देवाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥ ४९ ॥

नमो दिग्वाससे तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डने ।  
अनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः ॥ ५० ॥

नमस्ताराय तीर्थाय नमो योगर्द्धिहेतवे ।  
नमो धर्माधिगम्याय योगगम्याय ते नमः ॥ ५१ ॥

नमस्ते निष्प्रपञ्चाय निराभासाय ते नमः ।  
ब्रह्मणे विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने ॥ ५२ ॥

त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव सकलं स्थितम् ।  
त्वया संहित्यते विश्वं प्रथानाद्यं जगन्मय ॥ ५३ ॥

त्वमीश्वरो महादेवः परं ब्रह्म महेश्वरः ।  
परमेष्ठी शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः ॥ ५४ ॥

त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वं कालः परमेश्वरः ।  
त्वमेव पुरुषोऽनन्तः प्रथानं प्रकृतिस्तथा ॥ ५५ ॥

भूमिरापोऽनलो वायुवर्योमाहंकार एव च ।  
यस्य रूपं नमस्यामि भवन्तं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥ ५६ ॥

यस्य द्यौरभवन्मूर्धा पादौ पृथ्वी दिशो भुजाः ।  
आकाशमुदरं तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम् ॥ ५७ ॥

संतापयति यो विश्वं स्वभाभिर्भासयन् दिशः ।  
ब्रह्मतेजोमयं नित्यं तस्मै सूर्यात्मने नमः ॥ ५८ ॥

हव्यं वहति यो नित्यं रौद्री तेजोमयी तनुः ।  
कव्यं पितृगणानां च तस्मै वह्न्यात्मने नमः ॥ ५९ ॥

आप्यायति यो नित्यं स्वधाम्ना सकलं जगत् ।  
पीयते देवतासंधैस्तस्मै सोमात्मने नमः ॥ ६० ॥

बिभर्त्यशेषभूतानि योऽन्तश्श्ररति सर्वदा ।  
शक्तिमहेश्वरी तुभ्यं तस्मै वाय्वात्मने नमः ॥ ६१ ॥

वेदोंके रहस्यरूपको नमस्कार है । कालके भी काल आपको नमस्कार है । वेदान्तसारके भी सारको नमस्कार है । वेदात्ममूर्तिको नमस्कार है । शुद्ध-बुद्धस्वरूपको नमस्कार है । योगियोंके गुरुको नमस्कार है । शोकोंसे रहित विविध भूतोंसे घिरे हुए आपको नमस्कार है । ब्रह्मण्यदेवको नमस्कार है । ब्रह्माधिपतिके लिये नमस्कार है । त्रिलोचन परमेष्ठी देवको नमस्कार है ॥ ४७—४९ ॥

दिग्म्बर ! आपको नमस्कार है । मुण्ड (की माला) एवं दण्ड धारण करनेवालेको नमस्कार है । अनादि तथा मलरहित (शुद्धरूप), ज्ञानगम्य आपको नमस्कार है । तारक एवं तीर्थरूप तथा योगविभूतियोंके मूल कारणको नमस्कार है । धर्म (धर्माचरण)-के द्वारा प्राप्य, योगगम्य आपको नमस्कार है । निष्प्रपञ्चको नमस्कार है । निराभास ! आपको नमस्कार है । विश्वरूप ब्रह्म परमात्माको नमस्कार है ॥ ५०—५२ ॥

जगन्मय ! आपके द्वारा ही यह सम्पूर्ण (जगत्) रचा गया है, आपमें ही यह सम्पूर्ण विश्व प्रतिष्ठित है और आप ही प्रथानादि समस्त विश्वका संहार करते हैं । आप ईश्वर, महादेव, परब्रह्म, महेश्वर, परमेष्ठी, शिव, शान्त, पुरुष, निष्कल तथा हर हैं । आप अक्षर, परम ज्योति हैं, आप काल तथा परमेश्वर हैं और आप ही प्रथान पुरुष, प्रकृति तथा अनन्त हैं ॥ ५३—५५ ॥

भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश एवं अहंकार—ये जिसके रूप हैं, उन ब्रह्मसंज्ञक आपको नमस्कार करता हूँ । द्युलोक जिनका मस्तक है, पृथ्वी पैर है, दिशाएँ जिनकी भुजाएँ हैं और आकाश जिनका उदर है, उन विराट् पुरुषको मेरा प्रणाम है । जो अपने प्रकाशसे समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुए विश्वको अपेक्षित उष्णता प्रदान करते हैं, उन नित्य ब्रह्म तेजोमय सूर्यरूपको नमस्कार है । जो अपने रौद्र तेजोमय शरीरसे (देवताओंको) हव्य तथा पितरोंको कव्य पहुँचाते हैं, उन अग्निस्वरूप (देव)-को नमस्कार है । जो अपने तेजसे सम्पूर्ण जगत्को नित्य संतृप्त करते हैं और देवतासमूहके द्वारा जिनका पान किया जाता है, उन सोमरूप चन्द्रदेवको नमस्कार है ॥ ५६—६० ॥

जो सम्पूर्ण प्राणियोंका भरण-पोषण करती है और जो (सभी प्राणियोंके) भीतर सदा विचरण करती है, ऐसी वायुरूपात्मक माहेश्वरीशक्ति आपको नमस्कार है ॥ ६१ ॥

सृजत्यशेषमेवेदं यः स्वकर्मानुरूपतः ।  
स्वात्मन्यवस्थितस्तस्मै चतुर्वक्त्रात्मने नमः ॥ ६२ ॥

यः शेषशयने शेते विश्वमावृत्य मायया ।  
स्वात्मानुभूतियोगेन तस्मै विश्वात्मने नमः ॥ ६३ ॥

बिभर्ति शिरसा नित्यं द्विसप्तभुवनात्मकम् ।  
ब्रह्माण्डं योऽखिलाधारस्तस्मै शेषात्मने नमः ॥ ६४ ॥  
यः परान्ते परानन्दं पीत्वा दिव्यैकसाक्षिकम् ।  
नृत्यत्यनन्तमहिमा तस्मै रुद्रात्मने नमः ॥ ६५ ॥

योऽन्तरा सर्वभूतानां नियन्ता तिष्ठतीश्वरः ।  
तं सर्वसाक्षिणं देवं नमस्ये भवतस्तनुम् ॥ ६६ ॥

यं विनिद्रा जितश्वासाः संतुष्टाः समदर्शिनः ।  
ज्योतिः पश्यन्ति युज्ञानास्तस्मै योगात्मने नमः ॥ ६७ ॥

यथा संतरते मायां योगी संक्षीणकल्पः ।  
अपारतरपर्यन्तां तस्मै विद्यात्मने नमः ॥ ६८ ॥

यस्य भासा विभातीदमद्वयं तमसः परम् ।  
प्रपद्ये तत् परं तत्त्वं तद्रूपं परमेश्वरम् ॥ ६९ ॥

नित्यानन्दं निराधारं निष्कलं परमं शिवम् ।  
प्रपद्ये परमात्मानं भवन्तं परमेश्वरम् ॥ ७० ॥

एवं स्तुत्वा महादेवं ब्रह्मा तद्भावभावितः ।  
प्राज्जलिः प्रणतस्तस्थौ गृणन् ब्रह्म सनातनम् ॥ ७१ ॥  
ततस्तस्मै महादेवो दिव्यं योगमनुज्ञम् ।  
ऐश्वर्यं ब्रह्मसद्भावं वैराग्यं च ददौ हरः ॥ ७२ ॥

कराभ्यां सुशुभाभ्यां च संस्पृश्य प्रणतार्तिहा ।  
व्याजहार स्वयं देवः सोऽनुगृह्य पितामहम् ॥ ७३ ॥

जो प्राणियोंके अपने-अपने कर्मोंके अनुसार इस सम्पूर्ण (जगत्)-की सृष्टि करते हैं, उन अपनी आत्मामें प्रतिष्ठित चतुर्मुखात्मक (ब्रह्मा)-को नमस्कार है। जो अपने आत्मामें प्रतिष्ठित अनुभूतिरूप योगसे (प्रेरित) मायाद्वारा सम्पूर्ण विश्वको आवृत्कर शेष (शेषानाग)-की शव्यापर शयन करते हैं, उन विश्वात्माको नमस्कार है। जो चौदह भुवनोंवाले ब्रह्माण्डको नित्य अपने सिरपर धारण किये रहते हैं और जो सभीके आश्रय हैं, उन शेषात्माको नमस्कार है ॥ ६२—६४ ॥

जो महाप्रलयकालमें दिव्य एवं एकमात्र साक्षीरूप परमानन्दका आस्वादन करते हुए नृत्य करते हैं, उन अनन्त महिमावाले रुद्रात्माको नमस्कार है। जो ईश्वर सभी प्राणियोंके भीतर नियन्ताके रूपमें प्रतिष्ठित रहते हैं, उन सर्वसाक्षी देव और उनके शरीररूप (देव)-को मैं नमस्कार करता हूँ। निद्रारहित, श्वासको जीतनेवाले, संतुष्ट तथा समदर्शी (योगीजन समाधिमें) जिस ज्योति या प्रकाशका दर्शन करते हैं, उन योगात्माको नमस्कार है। जिस (विद्या)-के द्वारा पुण्यात्मा योगीजन अत्यन्त कठिनतासे पार की जा सकनेवाली मायाको सरलतासे पार कर लेते हैं, उस विद्यास्वरूप (देव)-को नमस्कार है। जिसके प्रकाशसे यह (विश्व) प्रकाशित होता है, मैं (उस) अन्धकारसे सर्वथा रहित अर्थात् प्रकाशस्वरूप और अद्वितीय परम तत्त्व-स्वरूप (तद्रूप परम-तत्त्व मात्र ही जिनका स्वरूप है, उन) परमेश्वरकी शरण ग्रहण करता हूँ। मैं नित्यानन्दस्वरूप, निराधार, निष्कल परमात्मा, परमेश्वर आप परम शिवकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ६५—७० ॥

इस प्रकार महादेवकी स्तुतिकर ब्रह्मा उनकी भावनासे भावित होकर सनातन ब्रह्मको सम्बोधित करते हुए विनयपूर्वक हाथ जोड़े हुए खड़े हो गये ॥ ७१ ॥

तदनन्तर महादेव हरने उन्हें सर्वश्रेष्ठ दिव्य योग (ज्ञान), ऐश्वर्य, ब्रह्मकी सद्भावना (ब्रह्मविषयक उत्तम भाव) तथा वैराग्य प्रदान किया। शरणागतोंका कष्ट हरनेवाले उन (शंकर) देवने स्वयं अपने मनोरम एवं कल्याणकारी हाथोंके द्वारा उनका (ब्रह्माका) स्पर्श किया और उनपर अनुग्रह करके वे बोले— ॥ ७२—७३ ॥

यत्त्वयाभ्यर्थितं ब्रह्मन् पुत्रत्वे भवतो मम।  
कृतं मया तत् सकलं सृजस्व विविधं जगत्॥ ७४ ॥

त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मन् ब्रह्मविष्णुहराख्यया।  
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः॥ ७५ ॥

स त्वं ममाग्रजः पुत्रः सृष्टिहेतोर्विनिर्मितः।  
ममैव दक्षिणादङ्गाद् वामाङ्गात् पुरुषोत्तमः॥ ७६ ॥

तस्य देवादिदेवस्य शाम्भोर्हदयदेशतः।  
सम्बभूवाथ रुद्रोऽसावहं तस्यापरा तनुः॥ ७७ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतवः।  
विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शंकरः स्थितः॥ ७८ ॥

तथान्यानि च रूपाणि मम मायाकृतानि तु।  
निरूपः केवलः स्वच्छो महादेवः स्वभावतः॥ ७९ ॥  
एभ्यः परतरो देवस्त्रिमूर्तिः परमा तनुः।  
माहेश्वरी त्रिनयना योगिनां शान्तिदा सदा॥ ८० ॥

तस्या एव परां मूर्तिं मामवेहि पितामह।  
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानतेजोयोगसमन्विताम्॥ ८१ ॥

सोऽहं ग्रसामि सकलमधिष्ठाय तमोगुणम्।  
कालो भूत्वा न तमसा मामन्योऽभिभविष्यति॥ ८२ ॥

यदा यदा हि मां नित्यं विचिन्तयसि पद्मज।  
तदा तदा मे सांनिध्यं भविष्यति तवानघ॥ ८३ ॥  
एतावदुक्त्वा ब्रह्माणं सोऽभिवन्द्य गुरुं हरः।  
सहैव मानसैः पुत्रैः क्षणादन्तरधीयत॥ ८४ ॥

सोऽपि योगं समास्थाय ससर्ज विविधं जगत्।  
नारायणाख्यो भगवान् यथापूर्वं प्रजापतिः॥ ८५ ॥

मरीचिभृगवङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।  
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजद् योगविद्यया॥ ८६ ॥

नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः।  
सर्वे ते ब्रह्मणा तुल्याः साधका ब्रह्मवादिनः॥ ८७ ॥

ब्रह्मन्! जो आपने 'मेरा पुत्र बनें' इस प्रकारसे मुझसे प्रार्थना की थी, मैंने उसे (रुद्ररूपमें उत्पन्न होकर) पूर्ण कर दिया। (अब आप) विविध प्रकारके जगत्की सृष्टि करें। ब्रह्मन्! मैं ही निष्कल परमेश्वर सृष्टि, रक्षा एवं प्रलय—इन तीन गुणोंसे भावित होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन नामोंसे तीन रूपोंमें विभक्त हूँ। आप मेरे ज्येष्ठ पुत्र हैं और सृष्टिकी रचनाके लिये मेरे ही दाहिने अङ्गसे आप बनाये गये हैं। मेरे ही बायें अङ्गसे पुरुषोत्तम विष्णु उत्पन्न हैं। उन्हों देवोंमें आदिदेव शम्भुके हृदयप्रदेशसे मैं ही रुद्ररूपमें प्रादुर्भूत हूँ और उन्होंकी अपर मूर्ति हूँ। हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव (क्रमशः) सृष्टि, स्थिति तथा संहारके हेतु हैं। एक होते हुए भी वे शंकर अपनी इच्छासे अपनेको (तीन रूपोंमें) विभक्तकर स्थित रहते हैं॥ ७४—७८ ॥

इसी प्रकार अन्य भी जो रूप हैं, वे सब मेरी मायाद्वारा ही निर्मित हैं। स्वरूपतः महादेव स्वच्छ, रूपरहित एवं अद्वितीय हैं॥ ७९ ॥

वे देव इन त्रिमूर्तियों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश)-से उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ शरीरवाले हैं। तीन नेत्रोंवाली वह माहेश्वरी मूर्ति योगियोंको सदा शान्ति प्रदान करनेवाली है॥ ८० ॥

पितामह! मुझे सनातन ऐश्वर्य, विज्ञान, तेज एवं योगसे समन्वित उनकी वही परा मूर्ति समझो। वही मैं कालरूप होकर तमोगुणका आश्रय लेकर समस्त विश्वको ग्रस्त कर लेता हूँ, कोई दूसरा तमद्वारा मुझे अभिभूत नहीं कर सकता। निष्पाप कमलोद्धव! जब-जब मुझ सनातनका तुम ध्यान करोगे, तब-तब तुम मेरी समीपता प्राप्त करोगे॥ ८१—८३ ॥

इतना कहकर गुरु (पिता) ब्रह्माकी वन्दना करके वे हर (महेश्वर) मानस पुत्रोंके साथ क्षणभरमें ही अन्तर्धान हो गये॥ ८४ ॥

नारायण नामवाले उन भगवान्-ने योगका अवलम्बन कर प्रजापतिने जैसी सृष्टि पूर्वमें की थी, वैसी ही विविध प्रकारके जगत्की सृष्टि की। योगविद्यासे उन्होंने मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठको उत्पन्न किया। पुराणोंके अनुसार यह निश्चित है कि ये नौ ब्रह्माण कहलाते हैं। ये सभी ब्रह्माके समान हैं, साधक हैं और ब्रह्मवादी हैं॥ ८५—८७ ॥

संकल्पं चैव धर्मं च युगधर्माश्च शाश्वतान्।  
स्थानाभिमानिनः सर्वान् यथा ते कथितं पुरा ॥ ८८ ॥

जैसा पहले बताया गया था तदनुसार संकल्प, धर्म,  
सनातन युगधर्म तथा सभी स्थानाभिमानी (देवताओं)-  
का वर्णन तुम्हें सुनाया गया ॥ ८८ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १० ॥

## ग्यारहवाँ अध्याय

सती और पार्वतीका आविर्भाव, देवी-माहात्म्य, हैमवती-माहात्म्य, देवीका  
अष्टोत्तरसहस्रनामस्तोत्र, हिमवान्द्वारा देवीकी स्तुति एवं हिमवान्को  
देवीद्वारा उपदेश, देवीसहस्रनामस्तोत्र-जपका माहात्म्य

श्रीकूर्म उवाच

एवं सृष्टा मरीच्यादीन् देवदेवः पितामहः ।  
सहैव मानसैः पुत्रैस्तताप परमं तपः ॥ १ ॥  
तस्यैवं तपतो वक्त्राद् रुद्रः कालाग्निसंनिभः ।  
त्रिशूलपाणिरीशानः प्रादुरासीत् त्रिलोचनः ॥ २ ॥

श्रीकूर्मने कहा—इस प्रकार मरीचि आदिकी  
सृष्टि करके देवोंके देव पितामह (ब्रह्मा अपने) मानस  
पुत्रोंके साथ परम तप करने लगे ॥ १ ॥

इस प्रकार तप करते हुए उनके मुखसे कालाग्निके  
समान अति भयंकर, हाथमें त्रिशूल धारण किये,  
कठिनतासे देखे जाने योग्य, अर्धनारीश्वरका शरीर धारण  
किये हुए, त्रिलोचन ईशान रुद्र प्रकट हुए। ‘अपना  
विभाग करो’ ऐसा कहकर ब्रह्मा भयसे अन्तर्धान हो  
गये ॥ २-३ ॥

(ब्रह्माके द्वारा) ऐसा कहे जानेपर उन्होंने स्त्री  
तथा पुरुषरूपसे दो भाग कर दिये। पुनः पुरुषभागको  
दस और एक—इस प्रकार ग्यारह भागोंमें बाँट दिया।  
ये ग्यारह रुद्र त्रिभुवनेश्वर कहलाते हैं। ब्राह्मणों!  
कपाली-ईशा आदि ये सभी एकादश रुद्र देवताओंके  
कार्यमें नियोजित हैं ॥ ४-५ ॥

उन प्रभु देवने सौभ्य और रौद्र, शान्त और अशान्त  
तथा श्वेत और कृष्णरूपोंसे स्त्रीभागको भी अनेक  
रूपोंमें विभक्त किया। हे विप्रो! ये ही विभूतियाँ शक्तियोंके  
रूपमें लक्ष्मी आदि नामोंसे संसारमें विख्यात हैं। शंकरकी  
शक्ति ईशा इन्हींके द्वारा विश्वमें व्याप्त है ॥ ६-७ ॥

पुनः ईशानी (ईशा) अपनेको विभु शंकरसे विभक्तकर  
महादेवके निर्देशसे वे पितामहके पास गयीं। भगवान्  
ब्रह्माने इनसे कहा—‘दक्षकी पुत्री बनो।’ ये भी उनके  
आदेशसे दक्ष प्रजापतिके यहाँ उत्पन्न हुईं (इन्हींका नाम  
सती है) ॥ ८-९ ॥

अर्धनारीनरवपुः दुष्प्रेक्ष्योऽतिभयंकरः ।  
विभजात्मानमित्युक्त्वा ब्रह्मा चान्तर्दधे भयात् ॥ ३ ॥  
तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रीत्वं पुरुषत्वमथाकरोत् ।  
बिभेद पुरुषत्वं च दशथा चैकथा पुनः ॥ ४ ॥

एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ।  
कपालीशादयो विप्रा देवकार्ये नियोजिताः ॥ ५ ॥  
सौम्यासौम्यैस्तथा शान्ताशान्तैः स्त्रीत्वं च स प्रभुः ।  
बिभेद बहुधा देवः स्वरूपैरसितैः सितैः ॥ ६ ॥

ता वै विभूतयो विप्रा विश्रुताः शक्तयो भुवि ।  
लक्ष्म्यादयो याभिरीशा विश्वं व्याप्तिं शांकरी ॥ ७ ॥  
विभज्य पुनरीशानी स्वात्मानं शांकराद् विभोः ।  
महादेवनियोगेन पितामहमुपस्थिता ॥ ८ ॥

तामाह भगवान् ब्रह्मा दक्षस्य दुहिता भव ।  
सापि तस्य नियोगेन प्रादुरासीत् प्रजापते ॥ ९ ॥

नियोगाद् ब्रह्मणो देवीं ददौ रुद्राय तां सतीम्।  
दक्षाद् रुद्रोऽपि जग्राह स्वकीयामेव शूलभृत्॥ १०॥

प्रजापतिं विनिन्दैषा कालेन परमेश्वरी।  
मेनायामभवत् पुत्री तदा हिमवतः सती॥ ११॥

स चापि पर्वतवरो ददौ रुद्राय पार्वतीम्।  
हिताय सर्वदेवानां त्रिलोकस्यात्मनोऽपि च॥ १२॥  
सैषा माहेश्वरी देवी शंकरार्थशरीरिणी।  
शिवा सती हैमवती सुरासुरनमस्कृता॥ १३॥

तस्याः प्रभावमतुलं सर्वे देवाः सवासवाः।  
विदन्ति मुनयो वेत्ति शंकरो वा स्वयं हरिः॥ १४॥

एतद् वः कथितं विप्राः पुत्रत्वं परमेष्ठिनः।  
ब्रह्मणः पद्मयोनित्वं शंकरस्यामितौजसः॥ १५॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्याथ मुनयः कूर्मरूपेण भाषितम्।  
विष्णुना पुनरेवैनं पप्रच्छुः प्रणता हरिम्॥ १६॥

ऋषय ऊचुः

कैषा भगवती देवी शंकरार्थशरीरिणी।  
शिवा सती हैमवती यथावद् ब्रूहि पृच्छताम्॥ १७॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा मुनीनां पुरुषोत्तमः।  
प्रत्युवाच महायोगी ध्यात्वा स्वं परमं पदम्॥ १८॥

श्रीकूर्म उवाच

पुरा पितामहेनोक्तं मेरुपृष्ठे सुशोभनम्।  
रहस्यमेतद् विज्ञानं गोपनीयं विशेषतः॥ १९॥

सांख्यानां परमं सांख्यं ब्रह्मविज्ञानमुत्तमम्।  
संसारार्णवमग्नानां जन्तूनामेकमोचनम्॥ २०॥

या सा माहेश्वरी शक्तिज्ञानरूपातिलालसा।  
व्योमसंज्ञा परा काष्ठा सेयं हैमवती मता॥ २१॥

शिवा सर्वगतानन्ता गुणातीता सुनिष्कला।  
एकानेकविभागस्था ज्ञानरूपातिलालसा॥ २२॥

(दक्षने) ब्रह्माकी आज्ञासे इन सतीदेवीको रुद्रको प्रदान कर दिया। त्रिशूलधारी रुद्रने भी दक्षसे अपनी ही शक्तिको ग्रहण किया॥ १०॥

कालान्तरमें (यज्ञमें अपने आराध्य शिवका भाग न देखकर) दक्ष प्रजापतिकी निन्दा कर (तथा अपने शरीरका परित्याग कर) वे परमेश्वरी सती पुनः हिमवान्से मेनाकी पुत्री (पार्वती) बनीं। पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्ने भी पार्वतीको सभी देवताओं, तीनों लोकों तथा स्वयं अपने भी कल्याणके लिये रुद्रको समर्पित कर दिया॥ ११-१२॥

ये ही शंकरके आधे शरीरमें स्थित रहनेवाली माहेश्वरी देवी शिवा, सती तथा हैमवतीके रूपमें देवताओं एवं असुरोंद्वारा पूजित हैं। इन्द्रसहित सभी देवता, मुनि, शंकर अथवा स्वयं हरि इनके अतुल प्रभावको जानते हैं॥ १३-१४॥

हे विप्रो! इस प्रकार मैंने आप लोगोंसे अमित तेजस्वी शंकरके पुत्रत्व (पुत्र होनेका) और परमेष्ठी ब्रह्माके पद्मयोनित्व (पद्मयोनि होने)-का वर्णन किया॥ १५॥

सूत बोले—कूर्मरूप धारण किये हुए विष्णुके इस कथनको सुनकर मुनियोंने पुनः हरि (कूर्मरूपधारी विष्णु)-को प्रणाम करते हुए उनसे इस प्रकार पूछा—॥ १६॥

ऋषियोंने कहा—(भगवन्!) शंकरके आधे शरीररूपसे प्रतिष्ठित शिवा, सती तथा हैमवती (इत्यादि नामवाली) ये देवी भगवती कौन हैं? हम सभी पूछनेवालोंको आप यथार्थरूपमें बतलायें। उन मुनियोंके इस वचनको सुनकर पुरुषोंमें उत्तम महायोगी (विष्णु)-ने अपने परम पदका ध्यान करके उन्हें बताया—॥ १७-१८॥

श्रीकूर्म बोले—प्राचीन कालमें अत्यन्त रमणीय मेरु गिरिके पृष्ठपर (बैठकर) पितामह (ब्रह्मा)-ने यह रहस्यपूर्ण ज्ञान कहा था। यह विशेषरूपसे गोपनीय है। सांख्यशास्त्रके तत्त्वज्ञोंके लिये यह परम सांख्य (तत्त्वज्ञान) एवं उत्तम ब्रह्मज्ञान है। यह संसार-सागरमें निमग्न प्राणियोंकी मुक्तिका एकमात्र साधन है॥ १९-२०॥

(महेश्वरकी) जो ज्ञानरूप, उत्कृष्ट इच्छारूप, व्योम नामवाली तथा पराकाष्ठारूप (अन्तिम प्रासव्य) वह माहेश्वरी शक्ति है, ये वही हैमवती कही जाती हैं। (ये हैमवती शक्ति) कल्याण करनेवाली, सर्वत्र व्यास, अनन्त, गुणातीत, नितान्त भेदशून्य, अद्वितीय तथा अनेक रूपोंमें स्थित रहनेवाली, ज्ञानरूप, परम इच्छारूप।

अनन्या निष्कले तत्त्वे संस्थिता तस्य तेजसा ।  
स्वाभाविकी च तमूला प्रभा भानोरिवामला ॥ २३ ॥

एका माहेश्वरी शक्तिरनेकोपाधियोगतः ।  
परावरेण रूपेण क्रीडते तस्य संनिधौ ॥ २४ ॥

सेयं करोति सकलं तस्याः कार्यमिदं जगत् ।  
न कार्यं नापि करणमीश्वरस्येति सूरयः ॥ २५ ॥

चतस्रः शक्तयो देव्याः स्वरूपत्वेन संस्थिताः ।  
अधिष्ठानवशात् तस्याः शृणुष्व मुनिपुंगवाः ॥ २६ ॥

शान्तिर्विद्या प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्चेति ताः स्मृताः ।  
चतुर्व्यूहस्ततो देवः प्रोच्यते परमेश्वरः ॥ २७ ॥

अनया परया देवः स्वात्मानन्दं समश्नुते ।  
चतुर्व्यूपि च वेदेषु चतुर्मूर्तिर्महेश्वरः ॥ २८ ॥  
अस्यास्त्वनादिसंसिद्धमैश्वर्यमतुलं महत् ।  
तत्सम्बन्धादनन्ताया रुद्रेण परमात्मना ॥ २९ ॥  
सैषा सर्वेश्वरी देवी सर्वभूतप्रवर्तिका ।  
प्रोच्यते भगवान् कालो हरिः प्राणो महेश्वरः ॥ ३० ॥  
तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत् ।  
स कालोऽग्निर्हरो रुद्रो गीयते वेदवादिभिः ॥ ३१ ॥

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।  
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद् वशे ॥ ३२ ॥

प्रधानं पुरुषस्तत्त्वं महानात्मा त्वहंकृतिः ।  
कालेनान्यानि तत्त्वानि समाविष्टानि योगिना ॥ ३३ ॥  
तस्य सर्वजगत्सूतिः शक्तिर्मायेति विश्रुता ।  
तथेदं श्रामयेदीशो मायावी पुरुषोत्तमः ॥ ३४ ॥

सैषा मायात्मिका शक्तिः सर्वकारा सनातनी ।  
वैश्वरूप्यं महेशस्य सर्वदा सम्प्रकाशयेत् ॥ ३५ ॥

अनन्य तथा उन (शिव)-के तेजसे निष्कल तत्त्वमें प्रतिष्ठित रहनेवाली, सूर्यकी प्रभाके सदृश स्वच्छ तथा उनके आश्रित एवं स्वभावतः प्रवृत्त होनेवाली हैं। वह एक ही माहेश्वरी शक्ति अनेक उपाधियों (नाम-रूपों)-के संयोगसे उत्तम तथा निम्न रूपसे उन (शिव)-के समीप क्रीडा करती रहती हैं। वे ही यह सम्पूर्ण (सृष्टि इत्यादिका) कार्य करती हैं। यह जगत् उन्हींका कार्य है। ईश्वरका न कोई कार्य है और न कोई करण (साधन) ही होता है—ऐसा विद्वानोंका मत है ॥ २१—२५ ॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! उन देवीकी अधिष्ठान (आश्रय)-भेदसे अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित चार शक्तियाँ हैं, उन्हें आप सुनें ॥ २६ ॥

उन शक्तियोंको शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा तथा निवृत्ति—इस प्रकारसे कहा गया है और इसीलिये (अर्थात् इन चारों शक्तियोंसे सम्पन्न होनेके कारण) परमेश्वर देवको भी चतुर्व्यूहात्मक<sup>१</sup> कहा जाता है। इस पराशक्तिके द्वारा देव (महेश्वर) स्वात्मानन्दका उपभोग करते हैं। चारों ही वेदोंमें चतुर्मूर्ति महेश्वर वर्णित हैं ॥ २७—२८ ॥

उन रुद्र परमात्माके सम्बन्धसे इस अनन्ता (शक्ति)-का महान् अतुलनीय ऐश्वर्य सिद्ध है। वे ही ये सर्वेश्वरी देवी सभी प्राणियोंको प्रवर्तित करती हैं। भगवान् काल, हरि, प्राण तथा महेश्वर कहे जाते हैं ॥ २९—३० ॥

उनमें ही यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है। वेदवादियों (वैदिकों)-के द्वारा वे ही काल, अग्नि, हर तथा रुद्र-रूपमें गाये जाते हैं। काल सभी प्राणियोंकी सृष्टि करता है, काल ही प्रजाओंका संहार करता है। सभी कालके वशीभूत हैं और काल किसीके वशमें नहीं है। (वह काल ही) प्रधान, पुरुष, तत्त्व, महान्, आत्मा तथा अहंकार है। योगी<sup>२</sup> कालमें ही अन्य सभी तत्त्व समाविष्ट हैं ॥ ३१—३३ ॥

सम्पूर्ण जगत्को उनकी (ईशकी) संतान और उनकी शक्तिको माया कहा गया है। मायावी पुरुषोत्तम ईश उस (माया)-के द्वारा ही इस (जगत्)-को भ्रमित (मोहित) करते हैं। वही यह सर्वकारा, सनातनी मायात्मिका शक्ति महेशके विश्वरूपत्वको सदा प्रकाशित करती रहती है ॥ ३४—३५ ॥

१-व्यूहका अर्थ शक्ति है।

२-कालमें सभी प्रकारका सामर्थ्य है, इसीलिये कालको योगी कहा गया है।

अन्याश्च शक्तयो मुख्यास्तस्य देवस्य निर्मिताः ।  
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरिति त्रयम् ॥ ३६ ॥

सर्वासामेव शक्तीनां शक्तिमन्तो विनिर्मिताः ।  
माययैवाथ विप्रेन्द्राः सा चानादिरनन्तया ॥ ३७ ॥

सर्वशक्त्यात्मिका माया दुर्निवारा दुरत्यया ।  
मायाकी सर्वशक्तीशः कालः कालकरः प्रभुः ॥ ३८ ॥

करोति कालः सकलं संहरेत् काल एव हि ।  
कालः स्थापयते विश्वं कालाधीनमिदं जगत् ॥ ३९ ॥

लब्ध्वा देवाधिदेवस्य संनिधिं परमेष्ठिनः ।  
अनन्तस्याखिलेशस्य शम्भोः कालात्मनः प्रभोः ॥ ४० ॥

प्रधानं पुरुषो माया माया चैवं प्रपद्यते ।  
एका सर्वगतानन्ता केवला निष्कला शिवा ॥ ४१ ॥  
एका शक्तिः शिवैकोऽपि शक्तिमानुच्यते शिवः ।  
शक्तयः शक्तिमन्तोऽन्ये सर्वशक्तिसमुद्भवाः ॥ ४२ ॥

शक्तिशक्तिमतोर्भेदं वदन्ति परमार्थतः ।  
अभेदं चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तकाः ॥ ४३ ॥

शक्तयो गिरिजा देवी शक्तिमन्तोऽथ शंकरः ।  
विशेषः कथ्यते चायं पुराणे ब्रह्मवादिभिः ॥ ४४ ॥  
भोग्या विश्वेश्वरी देवी महेश्वरपतिव्रता ।  
प्रोच्यते भगवान् भोक्ता कपर्दी नीललोहितः ॥ ४५ ॥

मन्ता विश्वेश्वरो देवः शंकरो मन्मथान्तकः ।  
प्रोच्यते मतिरीशानी मन्तव्या च विचारतः ॥ ४६ ॥  
इत्येतदखिलं विप्राः शक्तिशक्तिमदुद्भवम् ।  
प्रोच्यते सर्ववेदेषु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४७ ॥

एतत् प्रदर्शितं दिव्यं देव्या माहात्म्यमुक्तम् ।  
सर्ववेदान्तवेदेषु निश्चितं ब्रह्मवादिभिः ॥ ४८ ॥  
एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम् ।  
योगिनस्तत् प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम् ॥ ४९ ॥

उन देवके द्वारा निर्मित ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति तथा प्राणशक्ति—ये तीन अन्य मुख्य शक्तियाँ हैं। विप्रेन्द्रो! अनन्त मायाके द्वारा ही सभी शक्तियोंसे युक्त शक्तिमानोंका निर्माण हुआ है, किंतु वह (माया) अनादि है। सभी शक्तियोंकी आत्मरूप वह माया बड़ी कठिनतासे निवारण करने योग्य और बड़े ही कष्टसे पार करने योग्य है। सभी शक्तियोंके स्वामी मायाकी प्रभु स्वयं काल हैं और कालको भी उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ ३६—३८ ॥

काल ही सब कुछ (उत्पन्न) करता है और काल ही (सबका) संहार करता है। विश्वकी स्थापना काल करता है और कालके ही अधीन यह सारा जगत् है ॥ ३९ ॥

देवाधिदेव, परमेष्ठी, अनन्त और अखिल (विश्व)-के स्वामी कालात्मा प्रभु शम्भुका सांनिध्य प्राप्तकर वही माया शक्ति, प्रधान, पुरुष एवं माया नामकी शक्तिका रूप धारण करती है। वह शक्ति अद्वितीय सर्वत्र व्याप्त, अन्तरहित, केवल, भेदशून्य और कल्याणकारिणी है ॥ ४०-४१ ॥

शक्ति एक है और शिव भी एक हैं। शिव शक्तिमान् कहे जाते हैं। अन्य सभी शक्तियाँ तथा शक्तिमान् (इसी) शक्तिसे उत्पन्न हैं। शक्ति और शक्तिमान्में भेद कहा जाता है, किंतु तत्त्वका चिन्तन करनेवाले योगीजन (उनमें) परमार्थतः अभेदका ही दर्शन करते हैं। जितनी भी शक्तियाँ हैं वे गिरिजादेवी और जितने भी शक्तिमान् हैं वे शंकर हैं। ब्रह्मवादियोंके द्वारा पुराणमें इनके विषयमें विशेष (रूपसे) कहा जाता है ॥ ४२—४४ ॥

महेश्वरकी पतिव्रता देवी विश्वेश्वरीको भोग्या और नीललोहित जटाधारी भगवान् (शंकर)-को भोक्ता कहा गया है। कामदेवका अन्त करनेवाले, विश्वके स्वामी देव शंकरको मनन करनेवाला मन्ता और ईशानीको मति एवं विचारद्वारा मानने योग्य (मन्तव्या) कहा गया है ॥ ४५-४६ ॥

ब्राह्मणो! तत्त्वद्रष्टा मुनियोंके द्वारा सभी वेदोंमें यही कहा गया है कि यह सम्पूर्ण विश्व शक्ति एवं शक्तिमान्से प्रादुर्भूत है। इस प्रकार ब्रह्मवादियोंके द्वारा समस्त वेदान्त एवं वेदोंमें निश्चित किये गये देवीके दिव्य एवं उत्तम माहात्म्यका यह वर्णन किया गया ॥ ४७-४८ ॥

महादेवीका जो सर्वव्यापक, सूक्ष्म, कूटस्थ, अचल तथा ध्रुव परम पद है, उसका योगी साक्षात्कार करते हैं ॥ ४९ ॥

आनन्दमक्षरं ब्रह्म केवलं निष्कलं परम्।  
 योगिनस्तत् प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम्॥ ५० ॥

परात्परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम्।  
 अनन्तप्रकृतौ लीनं देव्यास्तत् परमं पदम्॥ ५१ ॥

शुभं निरञ्जनं शुद्धं निर्गुणं द्वैतवर्जितम्।  
 आत्मोपलब्धिविषयं देव्यास्तत् परमं पदम्॥ ५२ ॥

सैषा धात्री विधात्री च परमानन्दमिच्छताम्।  
 संसारतापानखिलान् निहन्तीश्वरसंश्रया॥ ५३ ॥

तस्माद् विमुक्तिमन्विच्छन् पार्वतीं परमेश्वरीम्।  
 आश्रयेत् सर्वभावानामात्मभूतां शिवात्मिकाम्॥ ५४ ॥

लब्ध्वा च पुत्रीं शर्वाणीं तपस्तप्त्वा सुदुश्श्रम्।  
 सभार्यः शरणं यातः पार्वतीं परमेश्वरीम्॥ ५५ ॥

तां दृष्ट्वा जायमानां च स्वेच्छयैव वराननाम्।  
 मेना हिमवतः पत्नी प्राहेदं पर्वतेश्वरम्॥ ५६ ॥

मेनोवाच

पश्य बालामिमां राजन् राजीवसदृशाननाम्।  
 हिताय सर्वभूतानां जाता च तपसावयोः॥ ५७ ॥

सोऽपि दृष्ट्वा ततः पुत्रीं तरुणादित्यसंनिभाम्।  
 कर्पर्दिनीं चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्रामतिलालसाम्॥ ५८ ॥

अष्टहस्तां विशालाक्षीं चन्द्रावयवभूषणाम्।  
 निर्गुणां सगुणां साक्षात् सदसदव्यक्तिवर्जिताम्॥ ५९ ॥

प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चातिविह्वलः।  
 भीतः कृताञ्जलिस्तस्याः प्रोवाच परमेश्वरीम्॥ ६० ॥

हिमवानुवाच

का त्वं देवि विशालाक्षि शशाङ्कावयवाङ्किते।  
 न जाने त्वामहं वत्से यथावद् ब्रूहि पृच्छते॥ ६१ ॥

गिरीन्द्रवचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी।  
 व्याजहार महाशैलं योगिनामभयप्रदा॥ ६२ ॥

देव्युवाच

मां विद्धि परमां शक्तिं परमेश्वरसमाश्रयाम्।  
 अनन्यामव्ययामेकां यां पश्यन्ति मुमुक्षवः॥ ६३ ॥

महादेवीका जो आनन्दमय, अविनाशी, ब्रह्मरूप, अद्वितीय एवं भेदरहित परम पद है, योगी उसका दर्शन करते हैं। देवीका वह परम पद परसे भी परतर, तत्त्वरूप, सनातन, कल्याणकारी, अच्युत तथा अनन्त प्रकृतिमें लीन है। देवीका वह परम पद शुभ निरञ्जन, शुद्ध, निर्गुण, द्वैतरहित और आत्मज्ञानका विषय है। परम आनन्द चाहनेवालोंके लिये वे ही धात्री तथा विधात्री हैं। वे ईश्वरके आश्रयसे संसारके सारे पापोंका विनाश करती हैं। इसलिये मोक्षकी इच्छा करनेवालोंको चाहिये कि वे सभी भावोंकी आत्मस्वरूपा शिवात्मिका परमेश्वरी पार्वतीका आश्रय ग्रहण करें॥ ५०—५४ ॥

अत्यन्त कठोर तप करनेके अनन्तर शर्वाणी (शंकर-प्रिया)-को पुत्रीरूपमें प्राप्तकर (हिमवान् अपनी) भायके साथ परमेश्वरी पार्वतीकी शरणमें गये। अपनी इच्छासे उत्पन्न उस श्रेष्ठ मुखवालीको देखकर हिमवान्की पली मेनाने गिरिराज हिमालयसे इस प्रकार कहा—॥ ५५—५६ ॥

मेना बोली—राजन्! कमलके समान मुखवाली इस बालिकाको देखो। (यह) हम दोनोंकी तपस्या (-के प्रभाव)-से सभी प्राणियोंके कल्याणके लिये उत्पन्न हुई है॥ ५७ ॥

तरुण सूर्यके समान (देदीप्यमान), जटायुक्त, चतुर्मुख, तीन नेत्रोंवाली, उत्कृष्ट इच्छास्वरूप, आठ हाथों और विशाल नेत्रोंवाली, चन्द्रमाकी कलाओंके आभूषण धारण की हुई, गुणातीत एवं गुणयुक्त तथा सत्-असत्के भावोंसे रहित साक्षात् देवीको पुत्रीरूपमें देखकर हिमवान्-ने भूमिपर मस्तक लगाकर प्रणाम किया और उनके तेजसे अत्यन्त विह्वल तथा भयभीत होते हुए हाथ जोड़कर उन परमेश्वरीसे कहा—॥ ५८—६० ॥

हिमवान् बोले—विशाल नेत्रोंवाली तथा चन्द्रमाकी कलाओंसे सुशोभित देवि! आप कौन हैं? वत्से! मैं आपको नहीं जानता हूँ। मुझ पूछनेवालेको आप यथार्थरूपसे बतलायें॥ ६१ ॥

योगियोंको अभ्य प्रदान करनेवाली उस परमेश्वरीने गिरिराज (हिमालय)-का वचन सुनकर महाशैलसे कहा—॥ ६२ ॥

देवी बोली—मोक्षकी इच्छा करनेवाले (मोक्षार्थी) जिस अनन्य, अविनाशी तथा अद्वितीय (शक्ति)-का दर्शन करते हैं, परमेश्वरके आश्रयमें रहनेवाली वही परम शक्ति मुझे समझो॥ ६३ ॥

अहं वै सर्वभावानामात्मा सर्वान्तरा शिवा ।  
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानमूर्तिः सर्वप्रवर्तिका ॥ ६४ ॥

अनन्तानन्तमहिमा संसारार्णवतारिणी ।  
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे रूपमैश्वरम् ॥ ६५ ॥

एतावदुक्त्वा विज्ञानं दत्त्वा हिमवते स्वयम् ।  
स्वं रूपं दर्शयामास दिव्यं तत् पारमेश्वरम् ॥ ६६ ॥

कोटिसूर्यप्रतीकाशं तेजोबिम्बं निराकुलम् ।  
ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम् ॥ ६७ ॥

दंष्टाकरालं दुर्धर्षं जटामण्डलमण्डितम् ।  
त्रिशूलवरहस्तं च घोररूपं भयानकम् ॥ ६८ ॥

प्रशान्तं सौम्यवदनमनन्ताश्वर्यसंयुतम् ।  
चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥ ६९ ॥

किरीटिनं गदाहस्तं नूपुरैरुपशोभितम् ।  
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥ ७० ॥

शङ्खचक्रधरं काम्यं त्रिनेत्रं कृत्तिवाससम् ।  
अण्डस्थं चाण्डबाह्यस्थं बाह्यमाभ्यन्तरं परम् ॥ ७१ ॥

सर्वशक्तिमयं शुभ्रं सर्वाकारं सनातनम् ।  
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रयोगीन्द्रैर्वन्द्यमानपदाम्बुजम् ॥ ७२ ॥

सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।  
सर्वमावृत्य तिष्ठन्तं ददर्श परमेश्वरम् ॥ ७३ ॥

दृष्टा तदीदृशं रूपं देव्या माहेश्वरं परम् ।  
भयेन च समाविष्टः स राजा हृष्टमानसः ॥ ७४ ॥

आत्मन्याधाय चात्मानमोङ्कारं समनुस्मरन् ।  
नाम्नामष्टसहस्रेण तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥ ७५ ॥

हिमवानुवाच

शिवोमा परमा शक्तिरनन्ता निष्कलामला ।  
शान्ता माहेश्वरी नित्या शाश्वती परमाक्षरा ॥ ७६ ॥

अचिन्त्या केवलानन्त्या शिवात्मा परमात्मिका ।  
अनादिरव्यया शुद्धा देवात्मा सर्वगच्छला ॥ ७७ ॥

मैं ही सभी पदार्थोंकी आत्मा, सभीके अंदर रहनेवाली, कल्याणकारिणी, सनातन ऐश्वर्य तथा विज्ञानकी मूर्ति और सभीको प्रवृत्त करनेवाली हूँ। मैं अनन्त और अनन्त महिमावाली तथा संसारसागरसे पार उत्तरनेवाली हूँ। मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान करती हूँ, मेरे ऐश्वर्यमय रूपको देखो ॥ ६४-६५ ॥

इतना कहकर तथा हिमवान्‌को स्वयं विशिष्ट ज्ञान प्रदान कर (देवीने) अपना वह परमेश्वरमय दिव्य रूप दिखलाया ॥ ६६ ॥

(हिमवान्‌ने) करोड़ों सूर्यके समान (प्रकाशमान) तेजःपुङ्ग, स्थिर, हजारों ज्वालामालाओंसे युक्त, सैकड़ों कालाग्निके समान, भयंकर दाढ़ोंवाला, दुर्धर्ष, जटामण्डलोंसे मण्डित, हाथमें त्रिशूल और वरमुद्रा धारण किये, भयानक, घोर रूप एवं प्रशान्त, सौम्य मुखवाला, अनन्त आश्वर्योंसे युक्त, चन्द्रकलासे चिह्नित, करोड़ों चन्द्रमाओंकी आभावाला मुकुट धारण किये, हाथमें गदा लिये, नूपुरोंसे सुशोभित, दिव्य वस्त्र एवं माला धारण किये, दिव्य सुगन्धित अनुलेपन किये हुए, शङ्ख-चक्रधारी, कमनीय, तीन नेत्रवाले, चर्माम्बरधारी, ब्रह्माण्डके बाहर एवं भीतर (सर्वत्र) स्थित, बाहर तथा भीतर सर्वत्र श्रेष्ठ, सर्वशक्तिमय, शुभ्र, सभी आकारोंसे युक्त, सनातन, ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु और श्रेष्ठ योगियोंद्वारा वन्दित चरणकमलोंवाला, सभी ओर हाथ, पैर, आँख, सिर एवं मुखवाला और सभीको आवृत कर स्थित रहनेवाला (देवीका वह) परमेश्वर-रूप देखा ॥ ६७-७३ ॥

देवीके इस प्रकारके उस परम माहेश्वर रूपको देखकर वे (पर्वतोंके) राजा (हिमवान्) भयसे आविष्ट\* होते हुए भी प्रसन्न मनवाले हो गये। (और) अपनी आत्मामें आत्माको प्रतिष्ठितकर (आत्मनिष्ठ होकर) ओङ्कारका स्मरण करते हुए (वे) परमेश्वरीके एक हजार आठ नामोंसे उनकी स्तुति करने लगे— ॥ ७४-७५ ॥

हिमवान्‌ने कहा—(हे देवी! आप) शिवा, उमा, परमा शक्ति, अनन्ता, निष्कला, अमला, शान्ता, माहेश्वरी, नित्या, शाश्वती, परमाक्षरा, अचिन्त्या, केवला, अनन्त्या, शिवात्मिका, परमात्मिका, अनादि, अव्यया, शृद्धा, देवात्मिका, सर्वगा, अचला ॥ ७६-७७ ॥

\* अपनी पुत्रीमें परस्परविरोधी अनेक रूपोंको देखकर भयभीत होना स्वाभाविक है, पर ऐश्वर्यसम्पन्न देवी ही मेरी पुत्री है—यह अनुभव कर प्रसन्नचित्त होना भी स्वाभाविक ही है।

एकानेकविभागस्था मायातीता सुनिर्मला ।  
 महामाहेश्वरी सत्या महादेवी निरञ्जना ॥ ७८ ॥  
 काष्ठा सर्वान्तरस्था च चिच्छक्तिरतिलालसा ।  
 नन्दा सर्वात्मिका विद्या ज्योतीरूपामृताक्षरा ॥ ७९ ॥  
 शान्तिः प्रतिष्ठा सर्वेषां निवृत्तिरमृतप्रदा ।  
 व्योममूर्तिव्योमलया व्योमाधाराऽच्युताऽमरा ॥ ८० ॥  
 अनादिनिधनामोघा कारणात्पा कलाकला ।  
 क्रतुः प्रथमजा नाभिरमृतस्यात्मसंश्रया ॥ ८१ ॥  
 प्राणेश्वरप्रिया माता महामहिषधातिनी ।  
 प्राणेश्वरी प्राणरूपा प्रधानपुरुषेश्वरी ॥ ८२ ॥  
 सर्वशक्तिकलाकारा ज्योत्त्रा द्यौर्महिमास्पदा ।  
 सर्वकार्यनियन्त्री च सर्वभूतेश्वरेश्वरी ॥ ८३ ॥  
 अनादिरव्यक्तगुहा महानन्दा सनातनी ।  
 आकाशयोनियोगस्था महायोगेश्वरेश्वरी ॥ ८४ ॥  
 महामाया सुदुष्पूरा मूलप्रकृतिरीश्वरी ।  
 संसारयोनिः सकला सर्वशक्तिसमुद्भवा ॥ ८५ ॥  
 संसारपारा दुर्वारा दुर्निरीक्ष्या दुरासदा ।  
 प्राणशक्तिः प्राणविद्या योगिनी परमा कला ॥ ८६ ॥  
 महाविभूतिर्दुर्धर्षा मूलप्रकृतिसम्भवा ।  
 अनाद्यनन्तविभवा परार्था पुरुषारणः ॥ ८७ ॥  
 सर्गस्थित्यन्तकरणी सुदुर्वाच्या दुरत्यया ।  
 शब्दयोनिः शब्दमयी नादाख्या नादविग्रहा ॥ ८८ ॥  
 प्रधानपुरुषातीता प्रधानपुरुषात्मिका ।  
 पुराणी चिन्मयी पुंसामादिः पुरुषरूपिणी ॥ ८९ ॥  
 भूतान्तरात्मा कूटस्था महापुरुषसंज्ञिता ।  
 जन्ममृत्युजरातीता सर्वशक्तिसमन्विता ॥ ९० ॥  
 व्यापिनी चानवच्छिन्ना प्रधानानुप्रवेशिनी ।  
 क्षेत्रज्ञशक्तिरव्यक्तलक्षणा मलवर्जिता ॥ ९१ ॥  
 अनादिमायासम्भवा त्रितत्त्वा प्रकृतिर्गुहा ।  
 महामायासमुत्पन्ना तामसी पौरुषी धूवा ॥ ९२ ॥  
 व्यक्ताव्यक्तात्मिका कृष्णा रक्ता शुक्ला प्रसूतिका ।  
 अकार्या कार्यजननी नित्यं प्रसवधर्मिणी ॥ ९३ ॥  
 सर्गप्रलयनिर्मुक्ता सृष्टिस्थित्यन्तधर्मिणी ।  
 ब्रह्मगर्भा चतुर्विंशा पद्मनाभाच्युतात्मिका ॥ ९४ ॥  
 वैद्युती शाश्वती योनिर्जगन्मातेश्वरप्रिया ।  
 सर्वाधारा महारूपा सर्वैश्वर्यसमन्विता ॥ ९५ ॥

एका, अनेकविभागस्था (विविध रूपोंमें स्थित), मायातीता, सुनिर्मला, महामाहेश्वरी, सत्या, महादेवी, निरञ्जना, काष्ठा, सर्वान्तरस्था (सभीके हृदयमें स्थित रहनेवाली), चिच्छक्ति (चैतन्यशक्तिरूपा), अतिलालसा (उत्कृष्ट इच्छारूपा), नन्दा, सर्वात्मिका, विद्या, ज्योतीरूपा, अमृताक्षरा, शान्ति, सभीकी प्रतिष्ठा, निवृत्ति, अमृतप्रदा, व्योममूर्ति, व्योमलया, व्योमाधारा, अच्युता, अमरा, अनादिनिधना, अमोघा, कारणात्मिका, कला, अकला, क्रतु, प्रथमजा, अमृतनाभि, आत्मसंश्रया, प्राणेश्वरप्रिया, माता, महामहिषधातिनी, प्राणेश्वरी, प्राणरूपा, प्रधानपुरुषेश्वरी ॥ ७८—८२ ॥

सर्वशक्तिकलाकारा, ज्योत्स्ना, द्यौः (आकाश-रूपा), महिमास्पदा, सर्वकार्यनियन्त्री, सर्वभूतेश्वरेश्वरी, अनादि, अव्यक्तगुहा, महानन्दा, सनातनी, आकाश-योनि, योगस्था, महायोगेश्वरेश्वरी, महामाया, सुदुष्पूरा, मूलप्रकृति, ईश्वरी, संसारयोनि, सकला, सर्वशक्ति-समुद्भवा, संसारपारा, दुर्वारा, दुर्निरीक्ष्या, दुरासदा (कठिन तपसे प्राप्त करने योग्य), प्राणशक्ति, प्राण-विद्या, योगिनी, परमा, कला, महाविभूति, दुर्धर्षा, मूलप्रकृतिसम्भवा, अनाद्यनन्तविभवा, परार्था, पुरुषारण पुरुष (परब्रह्म) ही जिनकी अरणि (अग्नि-मन्थनका काष्ठ-विशेष है), सर्गस्थित्यन्तकरणी, सुदुर्वाच्या, दुरत्यया, शब्दयोनि, शब्दमयी, नादाख्या, नाद-विग्रहा, प्रधानपुरुषातीता, प्रधानपुरुषात्मिका, पुराणी, चिन्मयी, पुरुषोंकी आदिस्वरूपा, पुरुषरूपिणी, भूतान्तरात्मा, कूटस्था, महापुरुषसंज्ञिता, जन्म-मृत्यु-जरातीता, सर्वशक्तिसमन्विता, व्यापिनी, अनवच्छिन्ना, प्रधानानुप्रवेशिनी, क्षेत्रज्ञशक्ति, अव्यक्तलक्षणा, मल-वर्जिता, अनादिमायासम्भवा (अनादिमायारूपा), त्रितत्त्वा, प्रकृति, गुहा, महामायासमुत्पन्ना, तामसी, पौरुषी, धूवा ॥ ८३—९२ ॥

व्यक्ताव्यक्तात्मिका, कृष्णा, रक्ता, शुक्ला, प्रसूतिका, अकार्या, कार्यजननी, नित्यप्रसवधर्मिणी, सर्गप्रलयनिर्मुक्ता, सृष्टिस्थित्यन्तधर्मिणी, ब्रह्मगर्भा, चतुर्विंशा (चौबीस तत्त्वोंमें अन्तिम तत्त्व), पद्मनाभा, अच्युतात्मिका, वैद्युती, शाश्वती, योनि (मूल कारण), जगन्माता, ईश्वरप्रिया, सर्वाधारा, महारूपा, सर्वैश्वर्यसमन्विता ॥ ९३—९५ ॥

विश्वरूपा महागर्भा विश्वेशोच्छानुवर्तिनी ।  
महीयसी ब्रह्मयोनिर्महालक्ष्मीसमुद्दवा ॥ १६ ॥

महाविमानमध्यस्था महानिद्रात्महेतुका ।  
सर्वसाधारणी सूक्ष्मा ह्यविद्या पारमार्थिका ॥ १७ ॥

अनन्तरूपानन्तस्था देवी पुरुषमोहिनी ।  
अनेकाकारसंस्थाना कालत्रयविवर्जिता ॥ १८ ॥

ब्रह्मजन्मा हरेर्मूर्तिर्ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ।  
ब्रह्मेशविष्णुजननी ब्रह्माख्या ब्रह्मसंश्रया ॥ १९ ॥

व्यक्ता प्रथमजा ब्राह्मी महती ज्ञानरूपिणी ।  
वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मा ब्रह्ममूर्तिर्हदिस्थिता ।

अपांयोनिः स्वयम्भूतिर्मानसी तत्त्वसम्भवा ॥ २०० ॥

ईश्वराणी च शर्वाणी शंकरार्धशरीरिणी ।  
भवानी चैव रुद्राणी महालक्ष्मीरथाम्बिका ॥ २०१ ॥

महेश्वरसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।  
सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या नित्यं मुदितमानसा ॥ २०२ ॥

ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता शंकरेच्छानुवर्तिनी ।  
ईश्वरार्धासनगता महेश्वरपतिव्रता ॥ २०३ ॥

सकृदविभाविता सर्वा समुद्रपरिशोषिणी ।  
पार्वती हिमवत्पुत्री परमानन्ददायिनी ॥ २०४ ॥

गुणाढ्या योगजा योग्या ज्ञानमूर्तिविकासिनी ।  
सावित्री कमला लक्ष्मीः श्रीरनन्तोरसिस्थिता ॥ २०५ ॥

सरोजनिलया मुद्रा योगनिद्रासुरार्दिनी ।  
सरस्वती सर्वविद्या जगज्ज्येष्ठा सुमङ्गला ॥ २०६ ॥

वाग्देवी वरदा वाच्या कीर्तिः सर्वार्थसाधिका ।  
योगीश्वरी ब्रह्मविद्या महाविद्या सुशोभना ॥ २०७ ॥

गुह्यविद्यात्मविद्या च धर्मविद्यात्मभाविता ।  
स्वाहा विश्वम्भरा सिद्धिः स्वधा मेधा धृतिः श्रुतिः ॥ २०८ ॥

नीतिः सुनीतिः सुकृतिर्मार्थवी नरवाहिनी ।  
अजा विभावरी सौम्या भोगिनी भोगदायिनी ॥ २०९ ॥

शोभा वंशकरी लोला मालिनी परमेष्ठिनी ।  
त्रैलोक्यसुन्दरी रम्या सुन्दरी कामचारिणी ॥ २१० ॥

महानुभावा सत्त्वस्था महामहिषमर्दिनी ।  
पद्ममाला पापहरा विचित्रा मुकुटानना ॥ २११ ॥

कान्ता चित्राम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ।  
हंसाख्या व्योमनिलया जगत्सृष्टिविवर्धिनी ॥ २१२ ॥

विश्वरूपा, महागर्भा, विश्वेशोच्छानुवर्तिनी, महीयसी, ब्रह्मयोनि, महालक्ष्मीसमुद्दवा, महाविमानमध्यस्था, महानिद्रा, आत्महेतुका, सर्वसाधारणी, सूक्ष्मा, अविद्या, पारमार्थिका ॥ १६—१७ ॥

अनन्तरूपा, अनन्तस्था, देवी, पुरुषमोहिनी, अनेकाकारसंस्थाना, कालत्रयविवर्जिता, ब्रह्मजन्मा, हरिमूर्ति (हरिकी मूर्ति), ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका, ब्रह्मेशविष्णुजननी, ब्रह्माख्या, ब्रह्मसंश्रया, व्यक्ता, प्रथमजा, ब्राह्मी, महती, ज्ञानरूपिणी, वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मिका, ब्रह्ममूर्ति, हृदिस्थिता, अपांयोनि (जलकी योनि), स्वयम्भूति, मानसी, तत्त्वसम्भवा, ईश्वराणी, शर्वाणी, शंकरार्धशरीरिणी, भवानी, रुद्राणी, महालक्ष्मी, अम्बिका, महेश्वरसमुत्पन्ना, भुक्तिमुक्तिफलप्रदा, सर्वेश्वरी, सर्ववन्द्या, नित्यमुदितमानसा, ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता, शंकरेच्छानुवर्तिनी, ईश्वरार्धासनगता, महेश्वरपतिव्रता ॥ २८—२०३ ॥

सकृदविभाविता, सर्वा, समुद्रपरिशोषिणी, पार्वती, हिमवत्पुत्री, परमानन्ददायिनी, गुणाढ्या, योगजा, योग्या, ज्ञानमूर्ति, विकासिनी, सावित्री, कमला, लक्ष्मी, श्री, अनन्तोरसिस्थिता (विष्णुके हृदयमें रहनेवाली), सरोजनिलया, मुद्रा, योगनिद्रा, असुरार्दिनी, सरस्वती, सर्वविद्या, जगज्ज्येष्ठा, सुमङ्गला, वाग्देवी, वरदा, वाच्या, कीर्ति, सर्वार्थसाधिका, योगीश्वरी, ब्रह्मविद्या, महाविद्या, सुशोभना, गुह्यविद्या, आत्मविद्या, धर्मविद्या, आत्मभाविता, स्वाहा, विश्वम्भरा, सिद्धि, स्वधा, मेधा, धृति, श्रुति, नीति, सुनीति, सुकृति, माधवी, नरवाहिनी, अजा, विभावरी, सौम्या, भोगिनी, भोगदायिनी, शोभा, वंशकरी, लोला (चञ्चला), मालिनी, परमेष्ठिनी, त्रैलोक्यसुन्दरी, रम्या, सुन्दरी, कामचारिणी ॥ २०४—२१० ॥

महानुभावा, सत्त्वस्था, महामहिषमर्दिनी, पद्ममाला, पापहरा, विचित्रा, मुकुटानना, कान्ता, चित्राम्बरधरा, दिव्याभरणभूषिता, हंसाख्या, व्योमनिलया, जगत्सृष्टिविवर्धिनी ॥ २११—२१२ ॥

निर्यन्त्रा यन्त्रवाहस्था नन्दिनी भद्रकालिका ।  
 आदित्यवर्णा कौमारी मयूरवरवाहिनी ॥ १३ ॥  
 वृषासनगता गौरी महाकाली सुरार्चिता ।  
 अदितिर्नियता रौद्री पद्मगर्भा विवाहना ॥ १४ ॥  
 विरूपाक्षी लेलिहाना महापुरनिवासिनी ।  
 महाफलानवद्याङ्गी कामपूरा विभावरी ॥ १५ ॥  
 विचित्ररत्नमुकुटा प्रणतार्तिप्रभज्जिनी ।  
 कौशिकी कर्षणी रात्रिस्त्रिदशार्तिविनाशिनी ॥ १६ ॥  
 बहुरूपा सुरूपा च विरूपा रूपवर्जिता ।  
 भक्तार्तिशमनी भव्या भवभावविनाशिनी ॥ १७ ॥  
 निर्गुणा नित्यविभवा निःसारा निरपत्रपा ।  
 यशस्विनी सामगीतिर्भवाङ्गनिलयालया ॥ १८ ॥  
 दीक्षा विद्याधरी दीपा महेन्द्रविनिपातिनी ।  
 सर्वांतिशायिनी विद्या सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ १९ ॥  
 सर्वेश्वरप्रिया ताक्ष्या समुद्रान्तरवासिनी ।  
 अकलङ्का निराधारा नित्यसिद्धा निरामया ॥ २० ॥  
 कामधेनुर्बृहद्गर्भा धीमती मोहनाशिनी ।  
 निःसङ्कल्पा निरातङ्का विनया विनयप्रदा ॥ २१ ॥  
 ज्वालामालासहस्राद्या देवदेवी मनोन्मनी ।  
 महाभगवती दुर्गा वासुदेवसमुद्भवा ॥ २२ ॥  
 महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी भक्तिगम्या परावरा ।  
 ज्ञानज्ञेया जरातीता वेदान्तविषया गतिः ॥ २३ ॥  
 दक्षिणा दहना दाह्या सर्वभूतनमस्कृता ।  
 योगमाया विभावज्ञा महामाया महीयसी ॥ २४ ॥  
 संध्या सर्वसमुद्भूतिर्ब्रह्मवृक्षाश्रयानतिः ।  
 बीजाङ्कुरसमुद्भूतिर्महाशक्तिर्महामतिः ॥ २५ ॥  
 ख्यातिः प्रज्ञा चितिः संवित् महाभोगीन्द्रशायिनी ।  
 विकृतिः शांकरी शास्त्री गणगन्धर्वसेविता ॥ २६ ॥  
 वैश्वानरी महाशाला देवसेना गुहप्रिया ।  
 महारात्रिः शिवानन्दा शचीदुःस्वप्ननाशिनी ॥ २७ ॥  
 इन्द्र्या पूज्या जगद्वात्री दुर्विज्ञेया सुरूपिणी ।  
 गुहाम्बिका गुणोत्पत्तिर्महापीठा मरुत्सुता ॥ २८ ॥  
 हव्यवाहान्तरागादिः हव्यवाहसमुद्भवा ।  
 जगद्योनिर्जिगन्माता जन्ममृत्युजरातिगा ॥ २९ ॥  
 बुद्धिमाता बुद्धिमती पुरुषान्तरवासिनी ।  
 तरस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिविसंस्थिता ॥ ३० ॥

निर्यन्त्रा, यन्त्रवाहस्था, नन्दिनी, भद्रकालिका, आदित्यवर्णा, कौमारी, मयूरवरवाहिनी, वृषासनगता, गौरी, महाकाली, सुरार्चिता, अदिति, नियता, रौद्री, पद्मगर्भा, विवाहना, विरूपाक्षी, लेलिहाना, महापुरनिवासिनी, महाफला, अनवद्याङ्गी, कामपूरा, विभावरी, विचित्ररत्नमुकुटा, प्रणतार्तिप्रभज्जिनी, कौशिकी, कर्षणी, रात्रि, त्रिदशार्तिविनाशिनी, बहुरूपा, सुरूपा, विरूपा, रूपवर्जिता, भक्तार्तिशमनी, भव्या, भवभावविनाशिनी ॥ १३—१७ ॥

निर्गुणा, नित्यविभवा, निःसारा, निरपत्रपा, यशस्विनी, सामगीति, भवाङ्गनिलयालया, दीक्षा, विद्याधरी, दीपा, महेन्द्रविनिपातिनी, सर्वांतिशायिनी, विद्या, सर्वसिद्धिप्रदायिनी, सर्वेश्वरप्रिया, ताक्ष्या, समुद्रान्तरवासिनी, अकलंका, निराधारा, नित्यसिद्धा, निरामया, कामधेनु, बृहद्गर्भा, धीमती, मोहनाशिनी, निःसङ्कल्पा, निरातङ्का, विनया, विनयप्रदा, ज्वालामालासहस्राद्या, देवदेवी, मनोन्मनी, महाभगवती, दुर्गा, वासुदेवसमुद्भवा, महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी, भक्तिगम्या, परावरा, ज्ञानज्ञेया, जरातीता, वेदान्तविषया, गति, दक्षिणा, दहना, दाह्या, सर्वभूतनमस्कृता, योगमाया, विभावज्ञा, महामाया, महीयसी ॥ १८—२४ ॥

संध्या, सर्वसमुद्भूति, ब्रह्मवृक्षाश्रयानति, बीजाङ्कुरसमुद्भूति, महाशक्ति, महामति, ख्याति, प्रज्ञा, चिति, संवित्, महाभोगीन्द्रशायिनी, विकृति, शांकरी, शास्त्री, गणगन्धर्वसेविता, वैश्वानरी, महाशाला, देवसेना, गुहप्रिया, महारात्रि, शिवानन्दा, शची, दुःस्वप्ननाशिनी, इन्द्र्या, पूज्या, जगद्वात्री, दुर्विज्ञेया, सुरूपिणी, गुहाम्बिका, गुणोत्पत्ति, महापीठा, मरुत्सुता, हव्यवाहान्तरागादि, हव्यवाहसमुद्भवा, जगद्योनि, जगन्माता, जन्ममृत्युजरातिगा, बुद्धिमाता, बुद्धिमती, पुरुषान्तरवासिनी, तरस्विनी, समाधिस्था, त्रिनेत्रा, दिविसंस्थिता ॥ २५—३० ॥

सर्वेन्द्रियमनोमाता सर्वभूतहृदिस्थिता ।  
 संसारतारिणी विद्या ब्रह्मवादिमनोलया ॥ १३१ ॥  
 ब्रह्माणी बृहती ब्राह्मी ब्रह्मभूता भवारणः ।  
 हिरण्मयी महारात्रिः संसारपरिवर्तिका ॥ १३२ ॥  
 सुमालिनी सुरूपा च भाविनी तारिणी प्रभा ।  
 उन्मीलनी सर्वसहा सर्वप्रत्ययसाक्षिणी ॥ १३३ ॥  
 सुसौम्या चन्द्रवदना ताण्डवासक्तमानसा ।  
 सत्त्वशुद्धिकरी शुद्धिर्मलत्रयविनाशिनी ॥ १३४ ॥  
 जगत्प्रिया जगन्मूर्तिस्त्रिमूर्तिरमृताश्रया ।  
 निराश्रया निराहारा निरङ्कुरवनोद्भवा ॥ १३५ ॥  
 चन्द्रहस्ता विचित्राङ्गी स्त्रिविणी पद्मधारिणी ।  
 परावरविधानज्ञा महापुरुषपूर्वजा ॥ १३६ ॥  
 विद्येश्वरप्रिया विद्या विद्युजिह्वा जितश्रमा ।  
 विद्यामयी सहस्राक्षी सहस्रवदनात्मजा ॥ १३७ ॥  
 सहस्ररश्मिः सत्त्वस्था महेश्वरपदाश्रया ।  
 क्षालिनी सन्मयी व्यासा तैजसी पद्मबोधिका ॥ १३८ ॥  
 महामायाश्रया मान्या महादेवमनोरमा ।  
 व्योमलक्ष्मीः सिंहरथा चेकितानामितप्रभा ॥ १३९ ॥  
 वीरेश्वरी विमानस्था विशोका शोकनाशिनी ।  
 अनाहता कुण्डलिनी नलिनी पद्मवासिनी ॥ १४० ॥  
 सदानन्दा सदाकीर्तिः सर्वभूताश्रयस्थिता ।  
 वाग्देवता ब्रह्मकला कलातीता कलारणिः ॥ १४१ ॥  
 ब्रह्मश्रीर्ब्रह्महृदया ब्रह्मविष्णुशिवप्रिया ।  
 व्योमशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञनशक्तिः परागतिः ॥ १४२ ॥  
 क्षोभिका बधिका भेद्या भेदाभेदविवर्जिता ।  
 अभिन्नाभिन्नसंस्थाना वंशिनी वंशहारिणी ॥ १४३ ॥  
 गुह्यशक्तिर्गुणातीता सर्वदा सर्वतोमुखी ।  
 भगिनी भगवत्पत्नी सकला कालकारिणी ॥ १४४ ॥  
 सर्ववित् सर्वतोभद्रा गुह्यातीता गुहारणिः ।  
 प्रक्रिया योगमाता च गङ्गा विश्वेश्वरेश्वरी ॥ १४५ ॥  
 कपिला कापिला कान्ता कनकाभा कलान्तरा ।  
 पुण्या पुष्करिणी भोक्त्री पुरंदरपुरस्सरा ॥ १४६ ॥  
 पौष्णी परमैश्वर्यभूतिदा भूतिभूषणा ।  
 पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिः परमार्थार्थविग्रहा ॥ १४७ ॥  
 धर्मोदया भानुमती योगिज्ञेया मनोजवा ।  
 मनोहरा मनोरक्षा तापसी वेदरूपिणी ॥ १४८ ॥

सर्वेन्द्रियमनोमाता, सर्वभूतहृदिस्थिता, संसारतारिणी, विद्या, ब्रह्मवादिमनोलया, ब्रह्माणी, बृहती, ब्राह्मी, ब्रह्मभूता, भवारण, हिरण्मयी, महारात्रि, संसारपरिवर्तिका, सुमालिनी, सुरूपा, भाविनी, तारिणी, प्रभा, उन्मीलनी, सर्वसहा, सर्वप्रत्ययसाक्षिणी, सुसौम्या, चन्द्रवदना, ताण्डवासक्तमानसा, सत्त्वशुद्धिकरी\*, शुद्धि, मलत्रयविनाशिनी, जगत्प्रिया, जगन्मूर्ति, त्रिमूर्ति, अमृताश्रया, निराश्रया, निराहारा, निरङ्कुरवनोद्भवा, चन्द्रहस्ता, विचित्राङ्गी, स्त्रिविणी, पद्मधारिणी, परावरविधानज्ञा, महापुरुषपूर्वजा, विद्येश्वरप्रिया, विद्या, विद्युजिह्वा, जितश्रमा, विद्यामयी, सहस्राक्षी, सहस्रवदनात्मजा ॥ १३१—१३७ ॥

सहस्ररश्मि, सत्त्वस्था, महेश्वरपदाश्रया, क्षालिनी, सन्मयी, व्यासा, तैजसी, पद्मबोधिका, महामायाश्रया, मान्या, महादेवमनोरमा, व्योमलक्ष्मी, सिंहरथा, चेकिताना, अमितप्रभा, वीरेश्वरी, विमानस्था, विशोका, शोकनाशिनी, अनाहता, कुण्डलिनी, नलिनी, पद्मवासिनी, सदानन्दा, सदाकीर्ति, सर्वभूताश्रयस्थिता, वाग्देवता, ब्रह्मकला, कलातीता, कलारणि, ब्रह्मश्री, ब्रह्महृदया, ब्रह्मविष्णुशिवप्रिया, व्योमशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति, परागति, क्षोभिका, बन्धिका, भेद्या, भेदाभेदविवर्जिता, अभिन्ना, अभिन्नसंस्थाना, वंशिनी, वंशहारिणी, गुह्यशक्ति, गुणातीता, सर्वदा, सर्वतोमुखी, भगिनी, भगवत्पत्नी, सकला, कालकारिणी ॥ १३८—१४४ ॥

सर्ववित्, सर्वतोभद्रा, गुह्यातीता, गुहारणि, प्रक्रिया, योगमाता, गङ्गा, विश्वेश्वरेश्वरी, कपिला, कापिला, कान्ता, कनकाभा, कलान्तरा, पुण्या, पुष्करिणी, भोक्त्री, पुरंदरपुरस्सरा, पोषणी, परमैश्वर्यभूतिदा, भूतिभूषणा, पञ्चब्रह्मसमुत्पत्ति, परमार्थार्थविग्रहा, धर्मोदया, भानुमती, योगिज्ञेया, मनोजवा, मनोहरा, मनोरक्षा, तापसी, वेदरूपिणी ॥ १४५—१४८ ॥

\* सत्त्व (चित्त)।

वेदशक्तिर्वेदमाता वेदविद्याप्रकाशिनी ।  
 योगेश्वरेश्वरी माता महाशक्तिर्मनोमयी ॥ १४९ ॥  
 विश्वावस्था वियन्मूर्तिर्विद्युन्माला विहायसी ।  
 किंनरी सुरभी वन्द्या नन्दिनी नन्दिवल्लभा ॥ १५० ॥  
 भारती परमानन्दा परापरविभेदिका ।  
 सर्वप्रहरणोपेता काम्या कामेश्वरेश्वरी ॥ १५१ ॥  
 अचिन्त्याचिन्त्यविभवा हल्लेखा कनकप्रभा ।  
 कूष्माण्डी धनरत्नाढ्या सुगन्धा गन्धदायिनी ॥ १५२ ॥  
 त्रिविक्रमपदोद्भूता धनुष्णाणः शिवोदया ।  
 सुदुर्लभा धनाध्यक्षा धन्या पिङ्गललोचना ॥ १५३ ॥  
 शान्तिः प्रभावती दीप्तिः पङ्कजायतलोचना ।  
 आद्या हत्कमलोद्भूता गवां माता रणप्रिया ॥ १५४ ॥  
 सत्क्रिया गिरिजा शुद्धा नित्यपुष्टा निरन्तरा ।  
 दुर्गा कात्यायनी चण्डी चर्चिका शान्तविग्रहा ॥ १५५ ॥  
 हिरण्यवर्णा रजनी जगद्यन्तप्रवर्तिका ।  
 मन्दराद्रिनिवासा च शारदा स्वर्णमालिनी ॥ १५६ ॥  
 रत्नमाला रत्नगर्भा पृथ्वी विश्वप्रमाथिनी ।  
 पद्मानना पद्मनिभा नित्यतुष्टामृतोद्भवा ॥ १५७ ॥  
 धुन्वती दुःप्रकम्प्या च सूर्यमाता दृष्टद्वती ।  
 महेन्द्रभगिनी मान्या वरेण्या वरदर्पिता ॥ १५८ ॥  
 कल्याणी कमला रामा पञ्चभूता वरप्रदा ।  
 वाच्या वरेश्वरी वन्द्या दुर्जया दुरतिक्रमा ॥ १५९ ॥  
 कालरात्रिर्महावेगा वीरभद्रप्रिया हिता ।  
 भद्रकाली जगन्माता भक्तानां भद्रदायिनी ॥ १६० ॥  
 कराला पिङ्गलाकारा नामभेदामहामदा ।  
 यशस्त्विनी यशोदा च षडध्वपरिवर्तिका ॥ १६१ ॥  
 शङ्खिनी पद्मिनी सांख्या सांख्ययोगप्रवर्तिका ।  
 चैत्रा संवत्सरारूढा जगत्सम्पूरणीन्द्रजा ॥ १६२ ॥  
 शुभारिः खेचरी स्वस्था कम्बुग्रीवा कलिप्रिया ।  
 खगध्वजा खगारूढा पराध्या परमालिनी ॥ १६३ ॥  
 ऐश्वर्यवर्त्मनिलया विरक्ता गरुडासना ।  
 जयन्ती हृदगुहा रम्या गद्वेष्टा गणाग्रणीः ॥ १६४ ॥  
 संकल्पसिद्धा साम्यस्था सर्वविज्ञानदायिनी ।  
 कलिकल्पवहन्त्री च गुह्योपनिषदुत्तमा ॥ १६५ ॥

निष्ठा दृष्टिः स्मृतिव्याप्तिः पुष्टिस्तुष्टिः क्रियावती ।  
 विश्वामरेश्वरेशाना भुक्तिर्मुक्तिः शिवामृता ॥ १६६ ॥

वेदशक्ति, वेदमाता, वेदविद्याप्रकाशिनी, योगेश्वरेश्वरी, माता, महाशक्ति, मनोमयी, विश्वावस्था, वियन्मूर्ति, विद्युन्माला, विहायसी, किंनरी, सुरभी, वन्द्या, नन्दिनी, नन्दिवल्लभा, भारती, परमानन्दा, परापरविभेदिका, सर्वप्रहरणोपेता, काम्या, कामेश्वरेश्वरी ॥ १४९—१५१ ॥  
 अचिन्त्या, अचिन्त्यविभवा, हल्लेखा, कनकप्रभा, कूष्माण्डी, धनरत्नाढ्या, सुगन्धा, गन्धदायिनी, त्रिविक्रमपदोद्भूता, धनुष्णाणि, शिवोदया, सुदुर्लभा, धनाध्यक्षा, धन्या, पिङ्गललोचना, शान्ति, प्रभावती, दीप्ति, पङ्कजायतलोचना, आद्या, हत्कमलोद्भूता, गवां माता (गौओंकी माता), रणप्रिया, सत्क्रिया, गिरिजा, शुद्धा, नित्यपुष्टा, निरन्तरा, दुर्गा, कात्यायनी, चण्डी, चर्चिका, शान्तविग्रहा, हिरण्यवर्णा, रजनी, जगद्यन्तप्रवर्तिका, मन्दराद्रिनिवासा, शारदा, स्वर्णमालिनी, रत्नमाला, रत्नगर्भा, पृथ्वी, विश्वप्रमाथिनी, पद्मानना, पद्मनिभा, नित्यतुष्टा, अमृतोद्भवा, धुन्वती, दुःप्रकम्प्या, सूर्यमाता, दृष्टद्वती, महेन्द्रभगिनी, मान्या, वरेण्या, वरदर्पिता ॥ १५२—१५८ ॥  
 कल्याणी, कमला, रामा, पञ्चभूता, वरप्रदा, वाच्या, वरेश्वरी, वन्द्या, दुर्जया, दुरतिक्रमा, कालरात्रि, महावेगा, वीरभद्रप्रिया, हिता, भद्रकाली, जगन्माता, भक्तानां भद्रदायिनी (भक्तोंका कल्याण करनेवाली), कराला, पिङ्गलाकारा, नामभेदा, अमहामदा, यशस्त्विनी, यशोदा, षडध्वपरिवर्तिका, शङ्खिनी, पद्मिनी, सांख्या, सांख्ययोगप्रवर्तिका, चैत्रा, संवत्सरारूढा, जगत्सम्पूरणीन्द्रजा, शुभारिः, खेचरी, स्वस्था, कम्बुग्रीवा, कलिप्रिया, खगध्वजा, खगारूढा, पराध्या, परमालिनी, ऐश्वर्यवर्त्मनिलया, विरक्ता, गरुडासना, जयन्ती, हृदगुहा, रम्या, गह्येषा, गणाग्रणी, संकल्पसिद्धा, साम्यस्था, सर्वविज्ञानदायिनी, कलिकल्पवहन्त्री, गुह्योपनिषत्, उत्तमा ॥ १५९—१६५ ॥

निष्ठा, दृष्टि, स्मृति, व्याप्ति, पुष्टि, तुष्टि, क्रियावती, विश्वामरेश्वरेशाना, भुक्ति, मुक्ति, शिवा, अमृता ॥ १६६ ॥

लोहिता सर्पमाला च भीषणी वनमालिनी ।  
 अनन्तशयनानन्या नरनारायणोद्द्वा ॥ १६७ ॥  
 नृसिंही दैत्यमथनी शङ्खचक्रगदाधरा ।  
 संकर्षणसमुत्पत्तिरम्बिकापादसंश्रया ॥ १६८ ॥  
 महाज्वाला महामूर्तिः सुमूर्तिः सर्वकामधुक् ।  
 सुप्रभा सुस्तना गौरी धर्मकामार्थमोक्षदा ॥ १६९ ॥  
 भ्रूमध्यनिलया पूर्वा पुराणपुरुषारणिः ।  
 महाविभूतिदा मध्या सरोजनयना समा ॥ १७० ॥  
 अष्टादशभुजानाद्या नीलोत्पलदलप्रभा ।  
 सर्वशक्त्यासनारूढा धर्माधर्मार्थवर्जिता ॥ १७१ ॥  
 वैराग्यज्ञाननिरता निरालोका निरिन्द्रिया ।  
 विचित्रगहनाधारा शाश्वतस्थानवासिनी ॥ १७२ ॥  
 स्थानेश्वरी निरानन्दा त्रिशूलवरधारिणी ।  
 अशेषदेवतामूर्तिर्देवता वरदेवता ।  
 गणाम्बिका गिरे: पुत्री निशुभ्विनिपातिनी ॥ १७३ ॥  
 अवर्णा वर्णरहिता निवर्णा बीजसम्भवा ।  
 अनन्तवर्णानन्यस्था शंकरी शान्तमानसा ॥ १७४ ॥  
 अगोत्रा गोमती गोष्ठी गुह्यरूपा गुणोत्तरा ।  
 गौर्गीर्गव्यप्रिया गौणी गणेश्वरनमस्कृता ॥ १७५ ॥  
 सत्यमात्रा सत्यसंधा त्रिसंध्या संधिवर्जिता ।  
 सर्ववादाश्रया संख्या सांख्ययोगसमुद्भवा ॥ १७६ ॥  
 असंख्येयाप्रमेयाख्या शून्या शुद्धकुलोद्द्वा ।  
 बिन्दुनादसमुत्पत्तिः शम्भुवामा शशिप्रभा ॥ १७७ ॥  
 विसङ्गा भेदरहिता मनोज्ञा मधुसूदनी ।  
 महाश्रीः श्रीसमुत्पत्तिस्तमःपारेप्रतिष्ठिता ॥ १७८ ॥  
 त्रितत्त्वमाता त्रिविधा सुसूक्ष्मपदसंश्रया ।  
 शान्त्यतीता मलातीता निर्विकारा निराश्रया ॥ १७९ ॥  
 शिवाख्या चित्तनिलया शिवज्ञानस्वरूपिणी ।  
 दैत्यदानवनिर्मात्री काश्यपी कालकल्पिका ॥ १८० ॥  
 शास्त्रयोनिः क्रियामूर्तिश्चतुर्वर्गप्रदर्शिका ।  
 नारायणी नरोदभूतिः कौमुदी लिङ्गधारिणी ॥ १८१ ॥  
 कामुकी ललिता भावा परापरविभूतिदा ।  
 परान्तजातमहिमा बडवा वामलोचना ॥ १८२ ॥  
 सुभद्रा देवकी सीता वेदवेदाङ्गपारगा ।  
 मनस्विनी मन्युमाता महामन्युसमुद्धवा ॥ १८३ ॥  
 अमृत्युरमृता स्वाहा पुरुहूता पुरुष्टुता ।  
 अशोच्या भिन्नविषया हिरण्यरजतप्रिया ॥ १८४ ॥

लोहिता, सर्पमाला, भीषणी, वनमालिनी अनन्तशयना, अनन्या, नरनारायणोद्द्वा, नृसिंही, दैत्यमथनी, शङ्खचक्रगदाधरा, संकर्षणसमुत्पत्ति, अम्बिकापदसंश्रया, महाज्वाला, महामूर्ति, सुमूर्ति, सर्वकामधुक्, सुप्रभा, सुस्तना, गौरी, धर्मकामार्थमोक्षदा, भ्रूमध्यनिलया, पूर्वा, पुराणपुरुषारणि, महाविभूतिदा, मध्या, सरोजनयना, समा, अष्टादशभुजा, अनाद्या, नीलोत्पलदलप्रभा, सर्वशक्त्यासनारूढा, धर्माधर्मार्थवर्जिता, वैराग्यज्ञाननिरता, निरालोका, निरिन्द्रिया, विचित्रगहनाधारा, शाश्वतस्थानवासिनी, स्थानेश्वरी, निरानन्दा, त्रिशूलवरधारिणी, अशेषदेवतामूर्ति, देवता, वरदेवता, गणाम्बिका, गिरे: पुत्री (गिरिपुत्री), निशुभ्विनिपातिनी ॥ १६७—१७३ ॥

अवर्णा, वर्णरहिता, निवर्णा, बीजसम्भवा, अनन्तवर्णा, अनन्यस्था, शंकरी, शान्तमानसा, अगोत्रा, गोमती, गोष्ठी, गुह्यरूपा, गुणोत्तरा, गौः (गौ), गीः, गव्यप्रिया, गौणी, गणेश्वरनमस्कृता, सत्यमात्रा, सत्यसंधा, त्रिसंध्या, संधिवर्जिता, सर्ववादाश्रया, संख्या, सांख्ययोगसमुद्धवा, असंख्येया, अप्रमेयाख्या, शून्या, शुद्धकुलोद्द्वा, बिन्दुनादसमुत्पत्ति, शम्भुवामा, शशिप्रभा, विसङ्गा, भेदरहिता, मनोज्ञा, मधुसूदनी, महाश्रीः (महाश्री) श्रीसमुत्पत्ति, तमःपारेप्रतिष्ठिता, त्रितत्त्वमाता, त्रिविधा, सुसूक्ष्मपदसंश्रया, शान्त्यतीता, मलातीता, निर्विकारा, निराश्रया, शिवाख्या, चित्तनिलया, शिवज्ञानस्वरूपिणी, दैत्यदानवनिर्मात्री, काश्यपी, कालकल्पिका ॥ १७४—१८० ॥

शास्त्रयोनि, क्रियामूर्ति, चतुर्वर्गप्रदर्शिका, नारायणी, नरोद्भूति, कौमुदी, लिंगधारिणी, कामुकी, ललिता, भावा, परापरविभूतिदा, परान्तजातमहिमा, बडवा, वामलोचना, सुभद्रा, देवकी, सीता, वेदवेदाङ्गपारगा, मनस्विनी, मन्युमाता, महामन्युसमुद्धवा, अमृत्यु, अमृता, स्वाहा, पुरुहूता, पुरुष्टुता, अशोच्या, भिन्नविषया, हिरण्यरजतप्रिया ॥ १८१—१८४ ॥

हिरण्या राजती हैमी हेमाभरणभूषिता ।  
विभ्राजमाना दुर्ज्ञया ज्योतिष्ठोमफलप्रदा ॥ १८५ ॥  
महानिद्रासमुद्भूतिरनिद्रा सत्यदेवता ।  
दीर्घा ककुचिनी हृद्या शान्तिदा शान्तिवर्धिनी ॥ १८६ ॥  
लक्ष्म्यादिशक्तिजननी शक्तिचक्रप्रवर्तिका ।  
त्रिशक्तिजननी जन्या षड्गम्पिरवर्जिता ॥ १८७ ॥  
सुधामा कर्मकरणी युगान्तदहनात्मिका ।  
संकर्षणी जगदधात्री कामयोनि: किरीटिनी ॥ १८८ ॥  
ऐन्द्री त्रैलोक्यनमिता वैष्णवी परमेश्वरी ।  
प्रद्युम्नदयिता दान्ता युगमदृष्टिस्त्रिलोचना ॥ १८९ ॥  
मदोत्कटा हंसगतिः प्रचण्डा चण्डविक्रमा ।  
वृषावेशा वियन्माता विन्ध्यपर्वतवासिनी ॥ १९० ॥  
हिमवन्मेरुनिलया कैलासगिरिवासिनी ।  
चाणूरहन्तुतनया नीतिज्ञा कामरूपिणी ॥ १९१ ॥  
वेदविद्याव्रतस्नाता धर्मशीलानिलाशना ।  
वीरभद्रप्रिया वीरा महाकालसमुद्भवा ॥ १९२ ॥  
विद्याधरप्रिया सिद्धा विद्याधरनिराकृतिः ।  
आप्यायनी हरन्ती च पावनी पोषणी खिला ॥ १९३ ॥  
मातृका मन्मथोद्भूता वारिजा वाहनप्रिया ।  
करीषिणी सुधावाणी वीणावादनतत्परा ॥ १९४ ॥  
सेविता सेविका सेव्या सिनीवाली गरुत्मती ।  
अरुन्धती हिरण्याक्षी मृगाङ्गा मानदायिनी ॥ १९५ ॥  
वसुप्रदा वसुमती वसोर्धारा वसुंधरा ।  
धाराधरा वरारोहा वरावरसहस्रदा ॥ १९६ ॥  
श्रीफला श्रीमती श्रीशा श्रीनिवासा शिवप्रिया ।  
श्रीधरा श्रीकरी कल्या श्रीधरार्थशरीरिणी ॥ १९७ ॥  
अनन्तदृष्टिरक्षुद्रा धात्रीशा धनदप्रिया ।  
निहन्त्री दैत्यसङ्घानां सिंहिका सिंहवाहना ॥ १९८ ॥  
सुषेणा चन्द्रनिलया सुकीर्तिश्छन्नसंशया ।  
रसज्ञा रसदा रामा लेलिहानामृतस्त्रवा ॥ १९९ ॥  
नित्योदिता स्वयंज्योतिरुत्सुका मृतजीवनी ।  
वज्रदण्डा वज्रजिह्वा वैदेही वज्रविग्रहा ॥ २०० ॥  
मङ्गल्या मङ्गला माला मलिना मलहारिणी ।  
गान्धर्वी गारुडी चान्द्री कम्बलाश्वतरप्रिया ॥ २०१ ॥  
सौदामिनी जनानन्दा भुकुटीकुटिलानना ।  
कर्णिकारकरा कक्ष्या कंसप्राणापहारिणी ॥ २०२ ॥  
युगंधरा युगावर्ता त्रिसंध्या हर्षवर्धिनी ।  
प्रत्यक्षदेवता दिव्या दिव्यगन्धा दिवापरा ॥ २०३ ॥

हिरण्या, राजती, हैमी, हेमाभरणभूषिता, विभ्राजमाना, दुर्ज्ञया, ज्योतिष्ठोमफलप्रदा, महानिद्रासमुद्भूति, अनिद्रा, सत्यदेवता, दीर्घा, ककुचिनी, हृद्या, शान्तिदा, शान्तिवर्धिनी, लक्ष्म्यादिशक्तिजननी, शक्तिचक्रप्रवर्तिका, त्रिशक्तिजननी, जन्या, षड्गम्पिरवर्जिता, सुधामा, कर्मकरणी, युगान्तदहनात्मिका, संकर्षणी, जगद्धात्री, कामयोनि, किरीटिनी, ऐन्द्री, त्रैलोक्यनमिता, वैष्णवी, परमेश्वरी, प्रद्युम्नदयिता, दान्ता, युगमदृष्टि, त्रिलोचना ॥ १८५—१८९ ॥

मदोत्कटा, हंसगति, प्रचण्डा, चण्डविक्रमा, वृषावेशा, वियन्माता, विन्ध्यपर्वतवासिनी, हिमवन्मेरुनिलया, कैलासगिरिवासिनी, चाणूरहन्तुतनया, नीतिज्ञा, कामरूपिणी, वेदविद्याव्रतस्नाता, धर्मशीला, अनिलाशना, वीरभद्रप्रिया, वीरा, महाकालसमुद्भवा, विद्याधरप्रिया, सिद्धा, विद्याधरनिराकृति, आप्यायनी, हरन्ती, पावनी, पोषणी, खिला, मातृका, मन्मथोद्भूता, वारिजा, वाहनप्रिया, करीषिणी, सुधावाणी, वीणावादनतत्परा, सेविता, सेविका, सेव्या, सिनीवाली, गरुत्मती, अरुन्धती, हिरण्याक्षी, मृगाङ्गा, मानदायिनी, वसुप्रदा, वसुमती, वसोर्धारा, वसुंधरा, धाराधरा, वरारोहा, वरावरसहस्रदा ॥ १९०—१९६ ॥

श्रीफला, श्रीमती, श्रीशा, श्रीनिवासा, शिवप्रिया, श्रीधरा, श्रीकरी, कल्या, श्रीधरार्थशरीरिणी, अनन्तदृष्टि, अक्षुद्रा, धात्रीशा, धनदप्रिया, दैत्यसंघानां निहन्त्री (दैत्यसंघनिहन्त्री), सिंहिका, सिंहवाहना, सुषेणा, चन्द्रनिलया, सुकीर्ति, छिन्संशया, रसज्ञा, रसदा, रामा, लेलिहाना, अमृतस्त्रवा, नित्योदिता, स्वयंज्योति, उत्सुका, मृतजीवनी, वज्रदण्डा, वज्रजिह्वा, वैदेही, वज्रविग्रहा, मङ्गल्या, मङ्गला, माला, मलिना, मलहारिणी, गान्धर्वी, गारुडी, चान्द्री, कम्बलाश्वतरप्रिया ॥ १९७—२०१ ॥

सौदामिनी, जनानन्दा, भुकुटीकुटिलानना, कर्णिकारकरा, कक्ष्या, कंसप्राणापहारिणी, युगंधरा, युगावर्ता, त्रिसंध्या, हर्षवर्धिनी, प्रत्यक्षदेवता, दिव्या, दिव्यगन्धा, दिवापरा ॥ २०२—२०३ ॥

शक्रासनगता शाक्री साध्वी नारी शवासना ।  
 इष्टा विशिष्टा शिष्टेष्टा शिष्टाशिष्टप्रपूजिता ॥ २०४ ॥  
 शतरूपा शतावर्ता विनता सुरभि: सुरा ।  
 सुरेन्द्रमाता सुद्युम्ना सुषुम्ना सूर्यसंस्थिता ॥ २०५ ॥  
 समीक्ष्या सत्प्रतिष्ठा च निवृत्तिज्ञानपारगा ।  
 धर्मशास्त्रार्थकुशला धर्मज्ञा धर्मवाहना ॥ २०६ ॥  
 धर्माधर्मविनिर्मात्री धार्मिकाणां शिवप्रदा ।  
 धर्मशक्तिर्धर्मयी विधर्मा विश्वधर्मिणी ॥ २०७ ॥  
 धर्मान्तरा धर्ममेघा धर्मपूर्वा धनावहा ।  
 धर्मोपदेष्टी धर्मात्मा धर्मगम्या धराधरा ॥ २०८ ॥  
 कापाली शाकला मूर्तिः कला कलितविग्रहा ।  
 सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता सर्वशक्त्याश्रयाश्रया ॥ २०९ ॥  
 सर्वा सर्वेश्वरी सूक्ष्मा सुसूक्ष्मा ज्ञानरूपिणी ।  
 प्रधानपुरुषेशोशा महादेवैकसाक्षिणी ।  
 सदाशिवा वियन्मूर्तिर्विश्वमूर्तिरमूर्तिका ॥ २१० ॥  
 एवं नामां सहस्रेण स्तुत्वासौ हिमवान् गिरिः ।  
 भूयः प्रणम्य भीतात्मा प्रोवाचेदं कृताज्जलिः ॥ २११ ॥

यदेतदैश्वरं रूपं घोरं ते परमेश्वरि ।  
 भीतोऽस्मि साम्प्रतं दृष्ट्वा रूपमन्यत् प्रदर्शय ॥ २१२ ॥

एवमुक्ताथ सा देवी तेन शैलेन पार्वती ।  
 संहृत्य दर्शयामास स्वरूपमपरं पुनः ॥ २१३ ॥  
 नीलोत्पलदलप्रख्यं नीलोत्पलसुगन्धिकम् ।  
 द्विनेत्रं द्विभुजं सौम्यं नीलालकविभूषितम् ॥ २१४ ॥

रक्तपादाम्बुजतलं सुरक्तकरपल्लवम् ।  
 श्रीमद् विशालसंवृत्तललाटतिलकोज्ज्वलम् ॥ २१५ ॥

भूषितं चारुसर्वाङ्गं भूषणैरतिकोमलम् ।  
 दधानमुरसा मालां विशालां हेमनिर्मिताम् ॥ २१६ ॥

ईषत्सिंतं सुबिम्बोष्टं नूपुरारावसंयुतम् ।  
 प्रसन्नवदनं दिव्यमनन्तमहिमास्पदम् ॥ २१७ ॥

शक्रासनगता, शाक्री, साध्वी, नारी, शवासना, इष्टा, विशिष्टा, शिष्टेष्टा, शिष्टाशिष्टप्रपूजिता, शतरूपा, शतावर्ता, विनता, सुरभि, सुरा, सुरेन्द्रमाता, सुद्युम्ना, सुषुम्ना, सूर्यसंस्थिता, समीक्ष्या, सत्प्रतिष्ठा, निवृत्ति, ज्ञानपारगा, धर्मशास्त्रार्थकुशला, धर्मज्ञा, धर्मवाहना ॥ २०४—२०६ ॥

धर्माधर्मविनिर्मात्री, धार्मिकाणां शिवप्रदा (धार्मिकोंका कल्याण करनेवाली), धर्मशक्ति, धर्मयी, विधर्मा, विश्वधर्मिणी, धर्मान्तरा, धर्ममेघा, धर्मपूर्वा, धनावहा, धर्मोपदेष्टी, धर्मात्मा, धर्मगम्या, धराधरा, कापाली, शाकला, मूर्ति, कला, कलितविग्रहा, सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता, सर्वशक्त्याश्रयाश्रया, सर्वा, सर्वेश्वरी, सूक्ष्मा, सुसूक्ष्मा, ज्ञानरूपिणी, प्रधानपुरुषेशोशा, महादेवैकसाक्षिणी, सदाशिवा, वियन्मूर्ति, विश्वमूर्ति तथा अमूर्तिका—(के नामसे प्रसिद्ध) हैं ॥ २०७—२१० ॥

इस प्रकार हजार नामोंसे (देवीकी) स्तुति करके वे भयभीत हिमवान् पर्वत पुनः प्रणाम कर हाथ जोड़ते हुए इस प्रकार बोले— ॥ २११ ॥

हे परमेश्वरि ! यह जो आपका घोर ऐश्वर (विराट)-रूप है, उसे देखकर मैं इस समय भयभीत हो गया हूँ, आप अपना दूसरा (सौम्य) रूप मुझे दिखायें। उस (हिमवान्) पर्वतके द्वारा ऐसा कहे जानेपर उन देवी पार्वतीने अपने उस विराट रूपको समेटकर दूसरा (सौम्य) रूप उन्हें दिखलाया ॥ २१२—२१३ ॥

(देवीका वह रूप) नीले कमलदलके समान (नीलवर्णवाला), नीलकमलके समान सुगन्धियुक्त, दो नेत्र एवं दो भुजावाला, सौम्य, नीले अलकोंसे विभूषित, रक्तकमलके समान चरणतलवाला, सुन्दर लाल पल्लवके समान हाथवाला, श्रीयुक्त (वह रूप) विशाल एवं प्रशस्त ललाटपर लगे तिलकसे प्रफुल्लित (था)। (उसके) सभी अङ्ग अत्यन्त कोमल, सुन्दर तथा भूषणोंसे आभूषित थे। (उन देवीने) स्वर्णनिर्मित विशाल मालाको अपने वक्षःस्थलपर धारण कर रखा था। सुन्दर बिम्बफलके समान (रक्त) ओठ मन्द मधुर मुसकानयुक्त था। (चरणोंमें धारण किये) नुपुरोंसे ध्वनि निकल रही थी। (देवीका वह रूप) प्रसन्न मुखवाला तथा दिव्य एवं अनन्त महिमामें प्रतिष्ठित था ॥ २१४—२१७ ॥

तदीदृशं समालोक्य स्वरूपं शैलसत्तमः ।  
भीतिं संत्वज्य हृष्टात्मा ब्रभाषे परमेश्वरीम् ॥ २१८ ॥

हिमवानुवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ।  
यन्मे साक्षात् त्वमव्यक्ता प्रसन्ना दृष्टिगोचरा ॥ २१९ ॥

त्वया सृष्टं जगत् सर्वं प्रधानाद्यं त्वयि स्थितम् ।  
त्वय्येव लीयते देवि त्वमेव च परा गतिः ॥ २२० ॥

वदन्ति केचित् त्वामेव प्रकृतिं प्रकृतेः पराम् ।  
अपरे परमार्थज्ञाः शिवेति शिवसंश्रये ॥ २२१ ॥

त्वयि प्रधानं पुरुषो महान् ब्रह्मा तथेश्वरः ।  
अविद्या नियतिर्माया कलाद्याः शतशोऽभवन् ॥ २२२ ॥

त्वं हि सा परमा शक्तिरनन्ता परमेष्ठिनी ।  
सर्वभेदविनिर्मुक्ता सर्वभेदाश्रया निजा ॥ २२३ ॥

त्वामधिष्ठाय योगेशि महादेवो महेश्वरः ।  
प्रधानाद्यं जगत् कृत्स्नं करोति विकरोति च ॥ २२४ ॥

त्वयैव संगतो देवः स्वमानन्दं समश्नुते ।  
त्वमेव परमानन्दस्त्वमेवानन्दाधिनी ॥ २२५ ॥

त्वमक्षरं परं व्योम महज्योतिर्निरञ्जनम् ।  
शिवं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ २२६ ॥

त्वं शक्रः सर्वदेवानां ब्रह्मा ब्रह्मविदामसि ।  
वायुर्बलवतां देवि योगिनां त्वं कुमारकः ॥ २२७ ॥

ऋषीणां च वसिष्ठस्त्वं व्यासो वेदविदामसि ।  
सांख्यानां कपिलो देवो रुद्राणामसि शंकरः ॥ २२८ ॥

आदित्यानामुपेन्द्रस्त्वं वसूनां चैव पावकः ।  
वेदानां सामवेदस्त्वं गायत्री छन्दसामसि ॥ २२९ ॥

अध्यात्मविद्या विद्यानां गतीनां परमा गतिः ।  
माया त्वं सर्वशक्तीनां कालः कलयतामसि ॥ २३० ॥

ओङ्कारः सर्वगुह्यानां वर्णानां च द्विजोत्तमः ।  
आश्रमाणां च गार्हस्थ्यमीश्वराणां महेश्वरः ॥ २३१ ॥

पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् देवीके इस प्रकारके (सौम्य) स्वरूपको देखकर भयका परित्यागकर प्रसन्न-मन होकर परमेश्वरीसे कहने लगे— ॥ २१८ ॥

हिमवान् बोले—मेरा जन्म लेना आज सफल हो गया, आज मेरा तप सफल हो गया, जो मुझे अव्यक्तस्वरूपा आप प्रसन्न होकर दृष्टिगोचर हुई हैं। देवि! आपके द्वारा सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि हुई है, आपमें प्रधानादि प्रतिष्ठित हैं और आपमें ही (वह सब) लीन भी हो जाता है। आप ही परम गति भी हैं। शिवके आश्रयमें रहनेवाली देवि! कुछ लोग आपको ही प्रकृति तथा प्रकृतिसे परे कहते हैं और दूसरे परमार्थको जाननेवाले आपको शिवा कहते हैं। आपमें प्रधान, पुरुष, महान्, ब्रह्मा तथा ईश्वर (प्रतिष्ठित हैं)। (आपसे) अविद्या, नियति, माया और सैकड़ों कला आदिकी उत्पत्ति हुई है ॥ २१९—२२२ ॥

आप ही वह परमा शक्ति, अनन्ता और परमेष्ठिनी हैं। आप सभी भेदोंसे विनिर्मुक्त और सभी भेदोंके आश्रय एवं स्वयं प्रतिष्ठित हैं। हे योगेश्वरी! आपमें ही अधिष्ठित होकर महादेव महेश्वर प्रधान आदि सम्पूर्ण जगत्की रचना करते हैं और फिर (उसका) संहार करते हैं। आपके ही संयोगसे महादेव स्वात्मानन्दका उपभोग करते हैं। आप ही परमानन्द (रूपा) और आप ही आनन्द प्रदान करनेवाली हैं। आप अक्षर, परमव्योम, महान् ज्योति, निरञ्जन, कल्याणरूप, सर्वगत, सूक्ष्म एवं सनातन परम ब्रह्म हैं। देवि! आप सभी देवताओंमें इन्द्र (रूप) और ब्रह्मज्ञानियोंमें ब्रह्मा (रूप) हैं। (आप) बलवानोंमें वायु (रूप) तथा योगियोंमें कुमारक (सनकुमार) हैं ॥ २२३—२२७ ॥

आप ऋषियोंमें वसिष्ठ, वेदविदोंमें व्यास हैं। सांख्यशास्त्रके जाननेवालोंमें कपिलदेव तथा रुद्रोंमें शंकर हैं। आप आदित्योंमें उपेन्द्र (विष्णु) तथा वसुओंमें पावक हैं। वेदोंमें आप सामवेद तथा छन्दोंमें गायत्री छन्द हैं। विद्याओंमें अध्यात्मविद्या तथा गतियोंमें परम गति हैं। आप सभी शक्तियोंमें माया और संहार करनेवालोंमें काल (रूप) हैं। आप सभी गुह्योंमें ओंकार और वर्णोंमें द्विजोत्तम हैं। आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम तथा ईश्वरोंमें महेश्वर हैं ॥ २२८—२३१ ॥

पुंसां त्वमेकः पुरुषः सर्वभूतहृदि स्थितः ।  
सर्वोपनिषदां देवि गुह्योपनिषदुच्च्यसे ॥ २३२ ॥

ईशानश्वासि कल्पानां युगानां कृतमेव च ।  
आदित्यः सर्वमार्गाणां वाचां देवी सरस्वती ॥ २३३ ॥

त्वं लक्ष्मीश्वारुरूपाणां विष्णुर्मायाविनामसि ।  
अरुन्धती सतीनां त्वं सुर्पणः पततामसि ॥ २३४ ॥

सूक्तानां पौरुषं सूक्तं ज्येष्ठसाम च सामसु ।  
सावित्री चासि जप्यानां यजुषां शतरुद्रियम् ॥ २३५ ॥  
पर्वतानां महामेरुरनन्तो भोगिनामसि ।  
सर्वेषां त्वं परं ब्रह्मा त्वन्मयं सर्वमेव हि ॥ २३६ ॥  
रूपं तवाशेषकलाविहीन-

मगोचरं निर्मलमेकरूपम् ।  
अनादिमध्यान्तमनन्तमाद्यं  
नमामि सत्यं तमसः परस्तात् ॥ २३७ ॥

यदेव पश्यन्ति जगत्प्रसूतिं  
वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थाः ।

आनन्दमात्रं प्रणवाभिधानं  
तदेव रूपं शरणं प्रपद्ये ॥ २३८ ॥

अशेषभूतान्तरसंनिविष्टुं  
प्रधानपुंयोगवियोगहेतुम् ।

तेजोमयं जन्मविनाशहीनं  
प्राणाभिधानं प्रणतोऽस्मि रूपम् ॥ २३९ ॥

आद्यन्तहीनं जगदात्मभूतं  
विभिन्नसंस्थं प्रकृतेः परस्तात् ।

कूटस्थमव्यक्तवपुस्तवैव  
नमामि रूपं पुरुषाभिधानम् ॥ २४० ॥

सर्वाश्रयं सर्वजगद्विधानं  
सर्वत्रगं जन्मविनाशहीनम् ।

सूक्ष्मं विचित्रं त्रिगुणं प्रधानं  
नतोऽस्मि ते रूपमलुमभेदम् ॥ २४१ ॥

आद्यं महत् ते पुरुषात्मरूपं  
प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मबीजम् ।

ऐश्वर्यविज्ञानविरागधर्मैः  
समन्वितं देवि नतोऽस्मि रूपम् ॥ २४२ ॥

पुरुषोंमें जो (उत्तम) पुरुष है और जो सभी प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाला है, वह एकमात्र आप ही हैं। देवि! आप सभी उपनिषदोंमें गुह्योपनिषत् कही जाती हैं। कल्पोंमें आप ईशानकल्प हैं और युगोंमें सत्ययुग हैं। सभी भ्रमण करनेवालों (ग्रह-नक्षत्रों आदि)-में आदित्य (सूर्य) तथा वाणियोंमें सरस्वती देवी हैं। सुन्दर रूपवालोंमें आप लक्ष्मी और मायावियोंमें विष्णु हैं। आप पतिव्रताओंमें अरुन्धती तथा पक्षियोंमें गरुड हैं। आप सूक्तोंमें पुरुषसूक्त, सामगानोंमें ज्येष्ठ साम हैं। जपने योग्य मन्त्रोंमें सावित्री मन्त्र और यजुर्वेदके मन्त्रोंमें शतरुद्रिय आप ही हैं ॥ २३२—२३५ ॥

आप पर्वतोंमें महामेरु और सर्पोंमें अनन्त (नाग) हैं। सभीमें आप परब्रह्म हैं, सब कुछ आपमें ही व्याप्त है। मैं आपके तमोगुणसे परे रहनेवाले उस सत्यरूपको नमस्कार करता हूँ जो समस्त कलाओंसे रहित, अगोचर, निर्मल, अद्वितीय, आदि, मध्य तथा अन्तरहित, अनन्त और आदिस्वरूप हैं। वेदान्तरूपी विज्ञानके अर्थका निश्चय करनेवाले, जगत्के उत्पादक प्रणव नामवाले जिस अद्वितीय आनन्दका साक्षात्कार करते हैं, मैं उसी रूपकी शरण ग्रहण करता हूँ। (मैं) समस्त प्राणियोंके भीतर रहनेवाले, प्रधान और पुरुषके संयोग तथा वियोगके कारण, उत्पत्ति एवं विनाशसे रहित तथा तेजोमय उस प्राण नामवाले रूपको प्रणाम करता हूँ ॥ २३६—२३९ ॥

(मैं) आदि तथा अन्तसे रहित, संसारके आत्मारूप, अनेक रूपोंमें स्थित, प्रकृतिसे परे रहनेवाले, कूटस्थ एवं अव्यक्त शरीर धारण करनेवाले पुरुष नामक आपके रूपको नमस्कार करता हूँ। मैं सभीके आश्रयरूप, सम्पूर्ण संसारका विधान करनेवाले, सर्वत्र व्याप्त, जन्म और मरणसे रहित, सूक्ष्म, विचित्र, त्रिगुणात्मक, प्रधानस्वरूप तथा अलुप्त भेदवाले आपके रूपको प्रणाम करता हूँ। देवि! आपका जो आद्य, महान्, पुरुषात्मक रूप है, जो प्रकृतिमें अवस्थित है, त्रिगुणात्मक मूल बीजरूप है तथा ऐश्वर्य, विज्ञान और विराग-धर्मोंसे समन्वित है, मैं उसे नमस्कार करता हूँ ॥ २४०—२४२ ॥

द्विसप्तलोकात्मकमम्बुसंस्थं  
 विचित्रभेदं पुरुषैकनाथम्।  
 अनन्तभूतैरधिवासितं ते  
     नतोऽस्मि रूपं जगदण्डसंज्ञम्॥ २४३ ॥  
 अशेषवेदात्मकमेकमाद्यं  
     स्वतेजसा पूरितलोकभेदम्।  
 त्रिकालहेतुं परमेष्ठिसंज्ञं  
     नमामि रूपं रविमण्डलस्थम्॥ २४४ ॥  
 सहस्रमूर्धान्मनन्तशक्तिं  
     सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम्।  
 शयानमन्तःसलिले तथैव  
     नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम्॥ २४५ ॥  
 दंष्टाकरालं त्रिदशाभिवन्द्यं  
     युगान्तकालानलकल्परूपम् ।  
 अशेषभूताण्डविनाशहेतुं  
     नमामि रूपं तव कालसंज्ञम्॥ २४६ ॥  
 फणासहस्रेण विराजमानं  
     भोगीन्द्रमुख्यैरभिपूज्यमानम् ।  
 जनार्दनारुद्धतनुं प्रसुमं  
     नतोऽस्मि रूपं तव शेषसंज्ञम्॥ २४७ ॥  
 अव्याहतैश्वर्यमयुग्मनेत्रं  
     ब्रह्ममृतानन्दरसज्जमेकम् ।  
 युगान्तशेषं दिवि नृत्यमानं  
     नतोऽस्मि रूपं तव रुद्रसंज्ञम्॥ २४८ ॥  
 प्रहीणशोकं विमलं पवित्रं  
     सुरासुररचितपादपद्मम् ।  
 सुकोमलं देवि विशालशुभ्रं  
     नमामि ते रूपमिदं नमामि॥ २४९ ॥  
 ॐ नमस्ते महादेवि नमस्ते परमेश्वरि ।  
 नमो भगवतीशानि शिवायै ते नमो नमः॥ २५० ॥  
 त्वन्मयोऽहं त्वदाधारसत्त्वमेव च गतिर्मम ।  
 त्वामेव शरणं यास्ये प्रसीद परमेश्वरि॥ २५१ ॥  
 मया नास्ति समो लोके देवो वा दानवोऽपि वा ।  
 जगन्मातैव मत्पुत्री सम्भूता तपसा यतः॥ २५२ ॥

चौदह लोकात्मक, जलमें अवस्थित, विचित्रभेदवाले, परम पुरुषको ही अपना स्वामी स्वीकार करनेवाले, अनन्त प्राणियोंके निवासस्थान, उस जगदण्ड(ब्रह्माण्ड)-संज्ञक आपके रूपको मैं नमस्कार करता हूँ। (मैं) समग्र वेदरूप, अद्वितीय, आदि, अपने तेजसे सम्पूर्ण संसारको व्याप्त करनेवाले, तीनों कालोंके कारण तथा सूर्यमण्डलमें प्रतिष्ठित परमेष्ठी नामवाले रूपको नमस्कार करता हूँ। जो हजारों सिरवाले हैं, अनन्त शक्ति-सम्पन्न हैं, हजारों हाथवाले हैं तथा जलके मध्यमें शयन करनेवाले हैं, मैं उन 'नारायण' नामसे प्रसिद्ध पुराणपुरुषके रूपको प्रणाम करता हूँ। (देवि!) आपका जो रूप भयंकर दाढ़वाला, देवताओंद्वारा सब प्रकारसे वन्दनीय, प्रलयकालीन अग्निके समान रूपवाला और सम्पूर्ण प्राणियोंके विनाशके लिये कारण-रूप है, मैं उस काल नामवाले रूपको नमस्कार करता हूँ॥ २४३—२४६॥

(देवि!) मैं आपके शेष नामवाले उस रूपको प्रणाम करता हूँ, जो हजारों फणोंसे सुशोभित है, प्रधान-प्रधान नागराजोंसे पूजित है, जनार्दन नामसे शरीर धारण किये हुए है तथा प्रगाढ़ निद्रामें है। जिसका ऐश्वर्य अव्याहत (अबाधित)है, जिसके नेत्र विषम हैं, (जो तीन नेत्रोंसे युक्त है), जो ब्रह्मके अमृतरूपी आनन्द-रसको जाननेवाला है, अद्वितीय है, प्रलयकालमें स्थित रहनेवाला है और जो द्युलोकमें नृत्य करता रहता है। (देवि!) मैं आपके उस रुद्र नामवाले रूपको प्रणाम करता हूँ। देवि! (मैं) शोकसे सर्वथा शून्य, निर्मल, पवित्र, देवताओं तथा असुरोंसे पूजित चरणकमलवाले आपके अत्यन्त कोमल, विशाल एवं उज्ज्वल इस रूपको नमस्कार करता हूँ, बार-बार नमस्कार करता हूँ। महादेवि! आपको नमस्कार है, परमेश्वरि! आपको नमस्कार है। भगवती ईशानीको नमस्कार है, कल्याणरूपिणी आपको बार-बार नमस्कार है॥ २४७—२५०॥

मैं आपसे व्याप्त हूँ, आप मेरे आधार हैं और आप ही मेरी गति हैं। परमेश्वरि! मैं आपकी ही शरण ग्रहण करता हूँ, आप (मुझपर) प्रसन्न हों। मेरे समान संसारमें देवता या दानव कोई भी नहीं है, क्योंकि (मेरे) तपके कारण आप जगन्माता ही मेरी पुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुई हैं॥ २५१—२५२॥

एषा तवाम्बिका देवि किलाभूत् पितृकन्यका ।  
मेनाशेषजगन्मातुरहो पुण्यस्य गौरवम् ॥ २५३ ॥

पाहि माममेरेशानि मेनया सह सर्वदा ।  
नमामि तव पादाब्जं व्रजामि शरणं शिवाम् ॥ २५४ ॥  
अहो मे सुमहद् भाग्यं महादेवीसमागमात् ।  
आज्ञापय महादेवि किं करिष्यामि शंकरि ॥ २५५ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं तदा हिमगिरीश्वरः ।  
सम्प्रेक्षमाणो गिरिजां प्राज्जलिः पाश्वर्तोऽभवत् ॥ २५६ ॥

अथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतोऽरणिः ।  
सस्मितं प्राह पितरं स्मृत्वा पशुपतिं पतिम् ॥ २५७ ॥

देव्युवाच

शृणुष्व चैतत् परमं गुह्यमीश्वरगोचरम् ।  
उपदेशं गिरिश्रेष्ठ सेवितं ब्रह्मवादिभिः ॥ २५८ ॥  
यन्मे साक्षात् परं रूपमैश्वरं दृष्टमद्भुतम् ।  
सर्वशक्तिसमायुक्तमनन्तं प्रेरकं परम् ॥ २५९ ॥

शान्तः समाहितमना दम्भाहंकारवर्जितः ।  
तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदेव शरणं व्रज ॥ २६० ॥

भक्त्या त्वनन्यथा तात मद्दावं परमाश्रितः ।  
सर्वयज्ञतपोदानैस्तदेवार्चय सर्वदा ॥ २६१ ॥

तदेव मनसा पश्य तद् ध्यायस्व जपस्व च ।  
ममोपदेशात् संसारं नाशयामि तवानघ ॥ २६२ ॥  
अहं वै मत्परान् भक्तानैश्वरं योगमास्थितान् ।  
संसारसागरादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु ॥ २६३ ॥

ध्यानेन कर्मयोगेन भक्त्या ज्ञानेन चैव हि ।  
प्राप्याहं ते गिरिश्रेष्ठ नान्यथा कर्मकोटिभिः ॥ २६४ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक् कर्म वर्णश्रिमात्मकम् ।  
अध्यात्मज्ञानसहितं मुक्तये सततं कुरु ॥ २६५ ॥

धर्मात् संजायते भक्तिर्भक्त्या सम्प्राप्यते परम् ।  
श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितो धर्मो यज्ञादिको मतः ॥ २६६ ॥

देवि! ये पितरोंकी कन्या मेना सम्पूर्ण संसारकी मातास्वरूप आपकी माता हैं, अहो! पुण्यके गौरवका क्या कहना? अमरेशानि! आप मेनाके साथ मेरी सर्वदा रक्षा करें। मैं आपके चरणकमलोंमें नमस्कार करता हूँ और आप कल्याणकारिणीकी शरणमें हूँ ॥ २५३-२५४ ॥

अहो! महादेवीके (मेरे घर) आ जानेसे मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य हुआ। महादेवि! शंकरि! आप मुझे आज्ञा दें कि मैं क्या करूँ? ऐसा वचन कहकर वह गिरिराज हिमालय गिरिजाको देखते हुए एवं हाथ जोड़ते हुए उनके पास खड़े हो गये। जगत्की अरणि (मूल कारण)-रूप उस देवीने उनका (हिमवानका) वचन सुनकर अपने पति पशुपति (शंकर)-का स्मरणकर मधुर-मधुर मुसकराते हुए पिता (हिमवान)-से कहा— ॥ २५५—२५७ ॥

देवी बोली—गिरिश्रेष्ठ! ब्रह्मवादियोंद्वारा सेवित केवल ईश्वरको ज्ञात इस परम गुह्य उपदेशको सुनो। मेरे जिस सर्वशक्तिसम्पन्न, अनन्त, परम प्रेरक, अद्भुत एवं ऐश्वर्यसम्पन्न रूपको तुमने देखा है, शान्त एवं एकाग्रमन होकर, दम्भ और अहंकारका सर्वथा परित्यागकर, अत्यन्त निष्ठा रखकर, तत्परायण हो उसी (रूप)-की शरण ग्रहण करो। तात! अनन्य भक्तिपूर्वक मेरे श्रेष्ठ भावका आश्रय ग्रहणकर, सभी यज्ञ, तप, दान (आदि साधनों)-के द्वारा सदा उसी (रूप)-की अर्चना करो। मेरे उपदेशको मानकर मनसे उसी (रूप)-को देखो, उसीका ध्यान करो और उसीका जप करो। अनघ! मैं तुम्हारे संसार (भवबन्धन)-को विनष्ट कर दूँगी ॥ २५८—२६२ ॥

ऐश्वर-योगमें स्थित अपने भक्तोंका मैं इस संसार-सागरसे शीघ्र ही उद्धार कर देती हूँ। गिरिश्रेष्ठ! मैं ध्यान, कर्मयोग, भक्ति तथा ज्ञानके द्वारा ही तुम्हारे लिये प्राप्य हूँ, दूसरे करोड़ों कर्मोंके द्वारा मुझे प्राप्त नहीं किया जा सकता। श्रुति तथा स्मृति—शास्त्रोंमें जो सम्यक् वर्णश्रिमर्कम् (धर्म) बतलाया गया है, मुक्ति-प्राप्तिके लिये अध्यात्मज्ञानयुक्त उस (कर्म)-का निरन्तर आचरण करो। धर्मसे भक्ति उत्पन्न होती है और भक्तिसे परम (तत्त्व) प्राप्त होता है। श्रुति एवं स्मृतिद्वारा प्रतिपादित यज्ञादि कर्मको धर्म कहा गया है ॥ २६३—२६६ ॥

नान्यतो जायते धर्मो वेदाद् धर्मो हि निर्बंधौ ।  
तस्मान्मुक्षुर्धर्मार्थी मद्भूपं वेदमाश्रयेत् ॥ २६७ ॥

ममैवेषा परा शक्तिर्वेदसंज्ञा पुरातनी ।  
ऋग्यजुःसामरूपेण सर्गादौ सम्प्रवर्तते ॥ २६८ ॥

तेषामेव च गुप्त्यर्थं वेदानां भगवानजः ।  
ब्राह्मणादीन् ससर्जाथं स्वे स्वे कर्मण्ययोजयत् ॥ २६९ ॥

ये न कुर्वन्ति तद् धर्मं तदर्थं ब्रह्मनिर्मितम् ।  
तेषामधस्तान्नरकांस्तामिस्त्रादीनकल्पयत् ॥ २७० ॥

न च वेदाद् ऋते किञ्चिच्छास्त्रधर्माभिधायकम् ।  
योऽन्यत्र रमते सोऽसौ न सम्भाष्यो द्विजातिभिः ॥ २७१ ॥

यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन् विविधानि तु ।  
श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि निष्ठा तेषां हि तामसी ॥ २७२ ॥

कापालं पञ्चरात्रं च यामलं वाममार्हतम् ।  
एवंविधानि चान्यानि मोहनार्थानि तानि तु ॥ २७३ ॥

ये कुशास्त्राभियोगेन मोहयन्तीह मानवान् ।  
मया सृष्टानि शास्त्राणि मोहायैषां भवान्तरे ॥ २७४ ॥

वेदार्थविज्ञमैः कार्यं यत् स्मृतं कर्म वैदिकम् ।  
तत् प्रयत्नेन कुर्वन्ति मत्प्रियास्ते हि ये नराः ॥ २७५ ॥

वर्णानामनुकम्पार्थं मन्त्रियोगाद् विराट् स्वयम् ।  
स्वायम्भुवो मनुर्धर्मान् मुनीनां पूर्वमुक्तवान् ॥ २७६ ॥

श्रुत्वा चान्येऽपि मुनयस्तमुखाद् धर्ममुत्तमम् ।  
चक्रुर्धर्मप्रतिष्ठार्थं धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥ २७७ ॥

तेषु चान्तर्हितेष्वेवं युगान्तेषु महर्षयः ।  
ब्रह्मणो वचनात् तानि करिष्यन्ति युगे युगे ॥ २७८ ॥

अष्टादश पुराणानि व्यासेन कथितानि तु ।  
नियोगाद् ब्रह्मणो राजस्तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः ॥ २७९ ॥

अन्यान्यपुराणानि तच्छिष्यैः कथितानि तु ।  
युगे युगेऽत्र सर्वेषां कर्ता वै धर्मशास्त्रवित् ॥ २८० ॥

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दं एव च ।  
ज्योतिःशास्त्रं न्यायविद्या मीमांसा चोपबृंहणम् ॥ २८१ ॥

धर्म किसी अन्यसे उत्पन्न नहीं होता, वेदसे ही धर्म निर्गत है। इसलिये धर्मार्थी एवं मुमुक्षुको चाहिये कि मेरे स्वरूपभूत वेदका आश्रय ग्रहण करे। मेरी ही यह 'वेद' नामवाली पुरातन परा शक्ति ऋक्, यजुष् तथा सामवेदके रूपमें सृष्टिके आदिमें प्रवर्तित होती है ॥ २६७—२६८ ॥

उन्हीं वेदोंकी रक्षाके लिये भगवान् ब्रह्माने ब्राह्मणादिको उत्पन्न कर अपने-अपने कर्मोंमें लगाया। ब्रह्माद्वारा बनाये गये उस (वेदविहित वर्णाश्रम) धर्मका जो पालन नहीं करते हैं, उनके लिये (ब्रह्माने) नीचेके लोकोंमें स्थित तामिस आदि नरकोंको बनाया है। धर्मका विधान करनेवाले अथवा धर्मको बतलानेवाले वेदको छोड़कर और अन्य कोई शास्त्र नहीं हैं। जो (वेदाभ्यासके अतिरिक्त) अन्यत्र मन लगाते हैं, द्विजातियोंके द्वारा वे सम्भाषण करने योग्य नहीं हैं। इस संसारमें श्रुति एवं स्मृतिके विरुद्ध जो विविध शास्त्र देखे जाते हैं, निश्चय ही उनमें निष्ठा (विश्वास) रखना तमोगुणी (निष्ठा) है। जो कुत्सित शास्त्रोंके प्रभावको बतलाकर मनुष्योंको मोहित करते हैं, इस संसारमें उन लोगोंको मोहित करनेके लिये मैंने (ऐसे) शास्त्रोंको बनाया है ॥ २६९—२७४ ॥

वेदके अर्थको जाननेवाले श्रेष्ठ विद्वानोंके द्वारा जिस कर्मको वेदसम्मत कहा गया है वही (कर्म) करणीय है और जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक उस कर्मको करते हैं, वे मुझे प्रिय हैं। प्राचीन कालमें विराट् (पुरुष) स्वायम्भुव मनुने सभी वर्णोंपर अनुग्रह करनेके लिये मेरी ही आज्ञासे (भृगु आदि) मुनियोंसे धर्म (मनुस्मृति) कहा था। उनके मुखसे श्रेष्ठ धर्मका श्रवणकर अन्य मुनियोंने भी धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये अन्य धर्मशास्त्रों (स्मृतियों)-की रचना की। प्रलयकालमें उनके (धर्मशास्त्रोंके) अन्तर्हित हो जानेपर प्रत्येक युगमें वे महर्षिगण ब्रह्माके कहनेपर पुनः उन शास्त्रोंकी रचना करते हैं ॥ २७५—२७८ ॥

राजन्! ब्रह्माके आदेशसे व्यासजीने अठारह (महा-) पुराणोंको कहा है। उन (पुराणों)-में धर्म प्रतिष्ठित है। अन्य उपपुराण उन व्यासजीके शिष्योंद्वारा कहे गये हैं। यहाँ प्रत्येक युगमें इन सभी शास्त्रोंका कर्ता ही धर्मशास्त्रका ज्ञाता होता है। सत्तम! चार वेदोंसहित शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिषशास्त्र, न्यायविद्या, मीमांसा तथा उपबृंहण (इतिहास और पुराण) ॥ २७९—२८१ ॥

एवं चतुर्दशैतानि विद्यास्थानानि सत्तम ।  
चतुर्वेदैः सहोक्तानि धर्मो नान्यत्र विद्यते ॥ २८२ ॥  
एवं पैतामहं धर्मं मनुव्यासादयः परम् ।  
स्थापयन्ति ममादेशाद् यावदाभूतसप्लवम् ॥ २८३ ॥

ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसंचरे ।  
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् ॥ २८४ ॥  
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत् ।  
धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत् ॥ २८५ ॥

ये तु सङ्घान् परित्यज्य मामेव शरणं गताः ।  
उपासते सदा भक्त्या योगमैश्वरमास्थिताः ॥ २८६ ॥

सर्वभूतदयावन्तः शान्ता दान्ता विमत्सराः ।  
अमानिनो बुद्धिमन्तस्तापसाः शंसितव्रताः ॥ २८७ ॥

मच्चित्ता मदगतप्राणा मञ्जानकथने रताः ।  
संन्यासिनो गृहस्थाश्च वनस्था ब्रह्मचारिणः ॥ २८८ ॥

तेषां नित्याभियुक्तानां मायातत्त्वसमुत्थितम् ।  
नाशयामि तमः कृत्स्नं ज्ञानदीपेन मा चिरात् ॥ २८९ ॥

ते सुनिधूततमसो ज्ञानेनैकेन मन्मयाः ।  
सदानन्दास्तु संसारे न जायन्ते पुनः पुनः ॥ २९० ॥  
तस्मात् सर्वप्रकारेण मद्भक्तो मत्परायणः ।  
मामेवार्चय सर्वत्र मेनया सह संगतः ॥ २९१ ॥

अशक्तो यदि मे ध्यातुमैश्वरं रूपमव्ययम् ।  
ततो मे सकलं रूपं कालाद्यं शरणं व्रज ॥ २९२ ॥

यद् यत् स्वरूपं मे तात मनसो गोचरं भवेत् ।  
तत्रिष्टस्तत्परो भूत्वा तदर्चनपरो भव ॥ २९३ ॥  
यत्तु मे निष्कलं रूपं चिन्मात्रं केवलं शिवम् ।  
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तमनन्तममृतं परम् ॥ २९४ ॥

ज्ञानेनैकेन तल्लभ्यं क्लेशेन परमं पदम् ।  
ज्ञानमेव प्रपश्यन्तो मामेव प्रविशन्ति ते ॥ २९५ ॥

इस प्रकार ये चौदह विद्यास्थान कहे गये हैं । इनके अतिरिक्त अन्यत्र धर्म विद्यमान नहीं है ॥ २८२ ॥

इस प्रकार मनु व्यास आदि पितामह ब्रह्माके द्वारा निर्दिष्ट श्रेष्ठ धर्मको मेरे ही आदेशसे प्रलयकालपर्यन्त स्थापित करते हैं । ब्रह्माकी आयु पूर्ण हो जानेपर प्रलय-काल उपस्थित होनेपर वे सभी पुण्यात्मा (व्यासादि) ब्रह्माके साथ ही परम पदमें प्रवेश करते हैं ॥ २८३-२८४ ॥

इसलिये धर्मके (परिज्ञानके) लिये सभी प्रकारके प्रयत्नसे वेदका आश्रय ग्रहण करना चाहिये, (इससे) धर्मसहित ज्ञान और परम ब्रह्म प्रकाशित हो जाता है ॥ २८५ ॥

जो सभी प्रकारकी आसक्तियोंका परित्याग कर अनन्यभावसे मेरी शरण ग्रहण कर लेते हैं, ईश्वर-सम्बन्धी योगमें स्थित होकर भक्तिपूर्वक सदा मेरी उपासना करते हैं, सभी प्राणियोंपर दया करते हैं, शान्त, जितेन्द्रिय, मात्सर्यरहित, मानरहित, बुद्धिमान् तपस्वी तथा ब्रतपरायण हैं, मुझमें जिनका चित्त और प्राण लगा हुआ है, मेरे तत्त्व-वर्णनमें ही जो लगे हुए हैं ऐसे संन्यासी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा ब्रह्मचारी जो कोई भी हों, उन नित्य भक्तिमें लगे हुए भक्तोंके माया-तत्त्वसे उत्पन्न सम्पूर्ण अन्धकारका ज्ञानरूपी दीपकके द्वारा मैं अविलम्ब ही विनाश कर देती हूँ । अद्वितीय ज्ञानके द्वारा जिनके अन्धकारका भलीभाँति विनाश हो गया है ऐसे ही मत्परायण (भक्त) सदा आनन्दित रहते हैं और संसारमें बार-बार जन्म नहीं लेते ॥ २८६-२९० ॥

इसलिये सब प्रकारसे मेरे भक्त और मेरे परायण रहते हुए (तुम) मैनाके साथ सर्वत्र मेरी ही अर्चना करो । यदि तुम मेरे ऐश्वर्यसप्नन् अव्यय-स्वरूपका ध्यान करनेमें असमर्थ हो तो मेरे आदिकालस्वरूप कलात्मक रूपकी शरण ग्रहण करो । तात ! मेरा जो-जो भी रूप आपके मनको अभीष्ट हो, उसीमें निष्ठा रखो और उसीके परायण होकर उसकी ही आराधनामें संलग्न रहो ॥ २९१-२९३ ॥

मेरा जो कलारहित, चिन्मात्र, अद्वितीय, कल्याणकारी, सभी उपाधियोंसे सर्वथा मुक्त, अनन्त, अमर एवं परमरूप है, वह परमपद एकमात्र ज्ञानके द्वारा बड़े ही कष्टसे प्राप्त किया जाता है । ज्ञानका साक्षात्कार करनेवाले लोग मुझमें ही प्रवेश करते हैं ॥ २९४-२९५ ॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्त्रिष्ठास्तत्परायणः ।  
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्पषाः ॥ २९६ ॥

मामनाश्रित्य परमं निर्वाणममलं पदम् ।  
प्राप्यते न हि राजेन्द्र ततो मां शरणं व्रज ॥ २९७ ॥

एकत्वेन पृथक्त्वेन तथा चोभयतोऽपि वा ।  
मामुपास्य महाराज ततो यास्यसि तत्पदम् ॥ २९८ ॥

मामनाश्रित्य तत् तत्त्वं स्वभावविमलं शिवम् ।  
ज्ञायते न हि राजेन्द्र ततो मां शरणं व्रज ॥ २९९ ॥

तस्मात् त्वमक्षरं रूपं नित्यं चारूपमैश्वरम् ।  
आराधय प्रयत्नेन ततो बन्धं प्रहास्यसि ॥ ३०० ॥

कर्मणा मनसा वाचा शिवं सर्वत्र सर्वदा ।  
समाराधय भावेन ततो यास्यसि तत्पदम् ॥ ३०१ ॥

न वै पश्यन्ति तत् तत्त्वं मोहिता मम मायया ।  
अनाद्यनन्तं परमं महेश्वरमजं शिवम् ॥ ३०२ ॥

सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं निरञ्जनम् ।  
नित्यानन्दं निराभासं निर्गुणं तमसः परम् ॥ ३०३ ॥

अद्वैतमचलं ब्रह्म निष्कलं निष्प्रपञ्चकम् ।  
स्वसंवेद्यमवेद्यं तत् परे व्योम्नि व्यवस्थितम् ॥ ३०४ ॥

सूक्ष्मेण तमसा नित्यं वेष्टिता मम मायया ।  
संसारसागरे घोरे जायन्ते च पुनः पुनः ॥ ३०५ ॥

भक्त्या त्वनन्यया राजन् सम्यग् ज्ञानेन चैव हि ।  
अन्वेष्टव्यं हि तद् ब्रह्म जन्मबन्धनिवृत्ये ॥ ३०६ ॥

अहंकारं च मात्सर्यं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।  
अथर्माभिनिवेशं च त्यक्त्वा वैराग्यमास्थितः ॥ ३०७ ॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।  
अन्वीक्ष्य चात्मनात्मानं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ३०८ ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा सर्वभूताभयप्रदः ।  
ऐश्वर्णि परमां भक्तिं विन्देतानन्यगामिनीम् ॥ ३०९ ॥

वीक्षते तत् परं तत्त्वमैश्वरं ब्रह्मनिष्कलम् ।  
सर्वसंसारनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ ३१० ॥

उसीमें (मेरे दिव्य रूपमें) बुद्धि रखनेवाले, उसीमें अपनेको लगानेवाले, उसीमें निष्ठा रखनेवाले तथा उसीके परायण और ज्ञानके द्वारा जिनके समस्त पाप विनष्ट हो गये हैं, वे सभी आवागमनके चक्रमें नहीं पड़ते अर्थात् मोक्षको प्राप्त करते हैं । राजेन्द्र ! मेरी शरण ग्रहण किये बिना परम निर्वाण, निर्मल पद प्राप्त नहीं होता, इसलिये मेरी शरण ग्रहण करो । महाराज ! द्वैत या अद्वैत अथवा दोनों ही रूपोंसे मेरी उपासना कर तुम्हें उस पदकी प्राप्ति हो जायगी ॥ २९६—२९८ ॥

हे राजेन्द्र ! बिना मेरा आश्रय लिये स्वभावसे ही निर्मल, उस शिवतत्त्वको जाना नहीं जा सकता, अतः मेरी शरण ग्रहण करो । इसलिये तुम नित्य, अक्षरस्वरूप एवं रूपरहित ईश्वर (तत्त्व)-की प्रयत्नपूर्वक आराधना करो । इससे (तुम) बन्धनसे मुक्त हो जाओगे । मन, वाणी तथा कर्मसे बड़े ही भावसे सर्वत्र शिवकी आराधना करो, इससे (तुम) उस पदको प्राप्त करोगे । मेरी मायासे मोहित (प्राणी) उस अनादि, अनन्त, अजन्मा, कल्याणकारी, परम महेश्वर, सभी प्राणियोंके अन्तरमें निवास करनेवाले, सभीके आधार, निरङ्गन, नित्य आनन्दस्वरूप, निराभास, निर्गुण, अन्धकारसे परे, अद्वैत, अचल, कलारहित, निष्प्रपञ्च, स्वसंवेद्य, अज्ञेय तथा परमाकाशमें स्थित ब्रह्मसंज्ञक तत्त्वको नहीं जान पाते ॥ २९९—३०४ ॥

मेरी मायाद्वारा नित्य सूक्ष्म तमोगुणसे घिरे हुए प्राणी (इस) घोर संसारसागरमें बार-बार जन्म लेते हैं । राजन् ! जन्मरूपी बन्धनकी निवृत्तिके लिये अनन्य भक्ति एवं सम्यक् ज्ञानके द्वारा उस ब्रह्मका अन्वेषण करना चाहिये । (राजन् ! जो) अहंकार, मात्सर्य, काम, क्रोध, संग्रहकी प्रवृत्ति तथा अधर्माचरणमें रुचिका सर्वथा परित्याग कर अनासक्तभावमें स्थित रहते हैं और सभी प्राणियोंमें अपनेको एवं सभी प्राणियोंको अपनी अन्तरात्मामें स्थित देखते हैं, वे आत्माद्वारा अन्तरात्माका साक्षात्कार कर ब्रह्मको प्राप्त करनेके योग्य बन जाते हैं । सभी प्राणियोंको अभय प्रदान करनेवाले तथा प्रसन्न मनवाले ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित, अनन्यगामिनी परम ईश्वरभक्तिको प्राप्त कर लेते हैं । वे उस ऐश्वर्ययुक्त निष्कल ब्रह्मतत्त्वका साक्षात् करते हैं और समस्त संसारसे अनासक्त होते हुए एकमात्र ब्रह्ममें ही प्रतिष्ठित हो जाते हैं ॥ ३०५—३१० ॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठायं परस्य परमः शिवः ।  
अनन्तस्याव्ययस्यैकः स्वात्माधारो महेश्वरः ॥ ३११ ॥

ज्ञानेन कर्मयोगेन भक्तियोगेन वा नृप ।  
सर्वसंसारमुक्त्यर्थमीश्वरं सततं श्रय ॥ ३१२ ॥

एष गुह्योपदेशस्ते मया दत्तो गिरीश्वर ।  
अन्वीक्ष्य चैतदखिलं यथेष्टुं कर्तुमर्हसि ॥ ३१३ ॥  
अहं वै याचिता देवैः संजाता परमेश्वरात् ।  
विनिन्द्य दक्षं पितरं महेश्वरविनिन्दकम् ॥ ३१४ ॥

धर्मसंस्थापनार्थाय तवाराधनकारणात् ।  
मेनादेहसमुत्पन्ना त्वामेव पितरं श्रिता ॥ ३१५ ॥

सत्वं नियोगाद् देवस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।  
प्रदास्यसे मां रुद्राय स्वयंवरसमागमे ॥ ३१६ ॥

तत्सम्बन्धाच्च ते राजन् सर्वे देवाः सवासवाः ।  
त्वां नमस्यन्ति वै तात प्रसीदति च शंकरः ॥ ३१७ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मां विद्धीश्वरगोचराम् ।  
सम्पूज्य देवमीशानं शरण्यं शरणं ब्रज ॥ ३१८ ॥  
स एवमुक्तो भगवान् देवदेव्या गिरीश्वरः ।  
प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलिः पुनरब्रवीत् ॥ ३१९ ॥

विस्तरेण महेशानि योगं माहेश्वरं परम् ।  
ज्ञानं चैवात्मनो योगं साधनानि प्रचक्षव मे ॥ ३२० ॥  
तस्यैतत् परमं ज्ञानमात्मयोगमनुत्तमम् ।  
यथावद् व्याजहोरेशा साधनानि च विस्तरात् ॥ ३२१ ॥

निशम्य वदनाष्पोजाद् गिरीन्द्रो लोकपूजितः ।  
लोकमातुः परं ज्ञानं योगासक्तोऽभवत् पुनः ॥ ३२२ ॥

प्रददौ च महेशाय पार्वतीं भाग्यगौरवात् ।  
नियोगाद् ब्रह्मणः साध्वीं देवानां चैव संनिधौ ॥ ३२३ ॥  
य इमं पठतेऽध्यायं देव्या माहात्म्यकीर्तनम् ।  
शिवस्य संनिधौ भक्त्या शुचिस्तद्भावभावितः ॥ ३२४ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो दिव्ययोगसमन्वितः ।  
उल्लङ्घ्य ब्रह्मणो लोकं देव्याः स्थानमवाप्नुयात् ॥ ३२५ ॥

ये अद्वितीय, अपनी आत्माके आश्रय महेश्वर परमशिव ही अनन्त तथा अव्यय पर ब्रह्मकी प्रतिष्ठा-रूप हैं। राजन्! ज्ञानयोग, कर्मयोग अथवा भक्तियोगके द्वारा समस्त संसारसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये निरन्तर ईश्वरका आश्रय ग्रहण करो। पर्वतराज हिमालय! मैंने यह गुह्य उपदेश तुम्हें प्रदान किया है, इस सम्पूर्ण उपदेशपर विचारकर तुम जैसा चाहो वैसा करो ॥ ३११—३१३ ॥

महादेव शंकरकी निन्दा करनेवाले अपने पिता दक्षकी आलोचना कर देवताओंके द्वारा प्रार्थना करनेपर मैं परमेश्वरसे प्रादुर्भूत हुई हूँ। तुम्हारी आराधनाके कारण धर्मकी स्थापना करनेके लिये तुम्हें ही पिताके रूपमें आश्रय बनाकर मैं मेनाकी देहसे उत्पन्न हुई हूँ। आप परमात्मा ब्रह्मदेवके निर्देशसे स्वयंवरके समय मुझे रुद्रको प्रदान करेंगे। राजन्! तात! उस सम्बन्धके कारण इन्द्रसहित सभी देवता आपको नमस्कार करेंगे तथा भगवान् शंकर भी आपसे प्रसन्न होंगे। इसलिये सभी प्रकारके प्रयत्नोंके द्वारा मुझे ही ईश्वरकी विषयस्वरूपा (ईश्वरका सर्वस्व) समझो और शरण ग्रहण करने योग्य भगवान् शंकरकी पूजाकर उनकी शरणमें जाओ ॥ ३१४—३१८ ॥

भगवान् महादेवकी देवी (शंकरपत्नी)-के द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वे पर्वतराज हिमालय विनयपूर्वक प्रणामकर हाथ जोड़ते हुए पुनः महेश्वरीसे कहने लगे—महेशानि! आप मुझे परम माहेश्वर योगको विस्तारसे बतलाइये और ज्ञान तथा साधनोंसहित आत्मयोगको भी विस्तारपूर्वक बतलायें ॥ ३१९—३२० ॥

(इसपर) भगवती पार्वतीने उन्हें वह परम ज्ञान, श्रेष्ठ आत्मयोग और उसकी प्राप्तिके साधनोंको भी विस्तारपूर्वक भलीभाँति बतलाया। जगज्जननीके मुखकमलसे परम ज्ञान सुनकर वे लोकपूजित पर्वतराज हिमालय पुनः योगमें आसक्त हो गये। (कालान्तरमें हिमालयने) ब्रह्माजीके आदेशसे देवताओंकी संनिधिमें (अपने) सौभाग्यकी अभिवृद्धि समझते हुए साध्वी पार्वतीको महेश्वरके लिये प्रदान किया ॥ ३२१—३२३ ॥

जो व्यक्ति भगवान् शिवके संनिधिमें उनके भावसे भावित होकर पवित्रतापूर्वक देवीके माहात्म्यका वर्णन करनेवाले इस अध्यायका पाठ करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और दिव्य योगसे समन्वित होकर ब्रह्मलोकको पारकर देवीके स्थानको प्राप्त करता है ॥ ३२४—३२५ ॥

यश्चैतत् पठते स्तोत्रं ब्राह्मणानां समीपतः ।  
देव्याः समाहितमनाः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३२६ ॥

नाम्नामष्टसहस्रं तु देव्या यत् समुदीरितम् ।  
ज्ञात्वार्कमण्डलगतां सम्भाव्य परमेश्वरीम् ॥ ३२७ ॥

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पादौ र्भक्तियोगसमन्वितः ।  
संस्मरन् परमं भावं देव्या माहेश्वरं परम् ॥ ३२८ ॥

अनन्यमानसो नित्यं जपेदामरणाद् द्विजः ।  
सोऽन्तकाले स्मृतिं लब्ध्वा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ३२९ ॥  
अथवा जायते विप्रो ब्राह्मणानां कुले शुचौ ।  
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मविद्यामवाप्य सः ॥ ३३० ॥

सम्प्राप्य योगं परमं दिव्यं तत् पारमेश्वरम् ।  
शान्तः सर्वगतो भूत्वा शिवसायुज्यमानुयात् ॥ ३३१ ॥

प्रत्येकं चाथ नामानि जुहुयात् सवनत्रयम् ।  
पूतनादिकृतैर्दोषैर्ग्रहदोषैश्च मुच्यते ॥ ३३२ ॥  
जपेद् वाहरहर्नित्यं संवत्सरमतन्द्रितः ।  
श्रीकामः पार्वतीं देवीं पूजयित्वा विधानतः ॥ ३३३ ॥

सम्पूज्य पाश्वर्तः शम्भुं त्रिनेत्रं भक्तिसंयुतः ।  
लभते महतीं लक्ष्मीं महादेवप्रसादतः ॥ ३३४ ॥  
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जसव्यं हि द्विजातिभिः ।  
सर्वपापापनोदार्थं देव्या नाम सहस्रकम् ॥ ३३५ ॥

प्रसङ्गात् कथितं विप्रा देव्या माहात्म्यमुत्तमम् ।  
अतः परं प्रजासर्गं भृगवादीनां निबोधत ॥ ३३६ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्राणं संहितायां पूर्वविभागे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार छ: हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

जो एकाग्रमनसे ब्राह्मणोंके समीपमें देवीके इस (सहस्रनाम) स्तोत्रका पाठ करता है, वह सभी पापोंसे विमुक्त हो जाता है ॥ ३२६ ॥

देवीका जो एक सहस्र आठ नामवाला स्तोत्र बतलाया गया है, उसे जानकर सूर्यमण्डलमें स्थित परमेश्वरीकी भावना करते हुए गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा भक्तियोगपूर्वक उनकी अर्चना द्विजको करनी चाहिये और देवीके परम माहेश्वर श्रेष्ठ भावका अनन्य-मनसे मरणपर्यन्त स्मरण करते हुए इस उपदिष्ट एक हजार आठ नामोंका नित्य जप करना चाहिये। ऐसा करनेसे द्विज अन्त-समयमें (देवीकी) स्मृति प्राप्तकर परब्रह्मको प्राप्त करता है ॥ ३२७—३२९ ॥

अथवा वह विप्र ब्राह्मणोंके पवित्र कुलमें उत्पन्न होता है और पूर्वजन्मके संस्कारोंके प्रभावसे वह ब्रह्मविद्याको प्राप्त करता है। परमेश्वर-सम्बन्धी उस परम दिव्य योगको प्राप्तकर वह शान्त तथा सर्वत्र व्याप्त होते हुए शिवसायुज्यको प्राप्त करता है। (जो व्यक्ति प्रातः, मध्याह तथा सायं—) तीनों समय देवीके प्रत्येक नामसे हवन करता है, वह पूतना आदिद्वारा उत्पन्न (अरिष्ट) दोषों तथा ग्रहोंके दोषोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ३३०—३३२ ॥

अथवा लक्ष्मीप्राप्तिकी इच्छा करनेवाला द्विज विधिपूर्वक देवीकी पूजाकर और उनके पाश्वर्भाग (समीप)-में तीन नेत्रवाले भगवान् शंकरकी पूजा करता है तथा एक वर्षतक आलस्यरहित होकर प्रतिदिन निरन्तर (देवीके सहस्रनामका) जप करता है, वह महादेव भगवान् शंकरकी कृपासे महालक्ष्मीको प्राप्त करता है ॥ ३३३—३३४ ॥

इसलिये द्विजातियोंको सभी प्रकारके प्रयत्नोंके द्वारा सभी पापोंसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिये देवीके सहस्रनामका जप करना चाहिये। विप्रो! मैंने प्रसङ्गवश देवीका उत्तम माहात्म्य आप लोगोंसे कहा। अब इसके बाद आपलोग भृगु आदि महर्षियोंकी प्रजासृष्टिको सुनें ॥ ३३५—३३६ ॥

## बारहवाँ अध्याय

महर्षि भृगु, मरीचि, पुलस्त्य तथा अत्रि आदिद्वारा दक्ष-कन्याओंसे उत्पन्न संतान-परम्पराका वर्णन, उनचास अग्नियों, पितरों तथा गङ्गाके प्रादुर्भावका वर्णन

सूत उवाच

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीनारायणप्रिया ।  
देवौ धाताविधातारौ मेरोर्जमातरौ तथा ॥ १ ॥  
आयतिर्नियतिर्मरोः कन्ये चैव महात्मनः ।  
धाताविधात्रोस्ते भार्य्ये तयोर्जातौ सुतावुभौ ॥ २ ॥  
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुतः ।  
तथा वेदशिरा नाम प्राणस्य द्युतिमान् सुतः ॥ ३ ॥  
मरीचेरपि सम्भूतिः पौर्णमासमसूयत ।  
कन्याचतुष्टयं चैव सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ४ ॥

तुष्टिर्ज्येष्ठा तथा वृष्टिः कृष्टिश्चापचितिस्तथा ।  
विरजाः पर्वतश्चैव पौर्णमासस्य तौ सुतौ ॥ ५ ॥  
क्षमा तु सुषुवे पुत्रान् पुलहस्य प्रजापतेः ।  
कर्दमं च वरीयांसं सहिष्णुं मुनिसत्तमम् ॥ ६ ॥  
तथैव च कनीयांसं तपोनिर्धूतकल्मषम् ।  
अनसूया तथैवात्रेज्जे पुत्रानकल्मषान् ॥ ७ ॥  
सोमं दुर्वाससं चैव दत्तात्रेयं च योगिनम् ।  
स्मृतिश्चाङ्गिरसः पुत्रीर्ज्जे लक्षणसंयुताः ॥ ८ ॥  
सिनीवालीं कुहूं चैव राकामनुमतिं तथा ।  
प्रीत्यां पुलस्त्यो भगवान् दत्तात्रिमसृजत् प्रभुः ॥ ९ ॥

पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।  
वेदबाहुं तथा कन्यां सन्नतिं नाम नामतः ॥ १० ॥  
पुत्राणां षष्ठिसाहस्रं संततिः सुषुवे क्रतोः ।  
ते चोर्ध्वरेतसः सर्वे बालखिल्या इति स्मृताः ॥ ११ ॥

वसिष्ठश्च तथोर्जायां सप्त पुत्रानजीजनत् ।  
कन्यां च पुण्डरीकाक्षां सर्वशोभासमन्विताम् ॥ १२ ॥

सूतजी बोले—महर्षि भृगुकी ‘ख्याति’ नामक पलीसे नारायणकी पली लक्ष्मी उत्पन्न हुई तथा धाता एवं विधाता नामक दो देवता भी उनसे उत्पन्न हुए, जो मेरुके जामाता हुए। महात्मा मेरुकी आयति तथा नियति नामकी दो कन्याएँ थीं, वे क्रमशः धाता तथा विधाताकी पत्नियाँ थीं, उनसे दो पुत्र उत्पन्न हुए—प्राण और मृकण्डु। मृकण्डुसे मार्कण्डेय हुए तथा प्राणके कान्तिमान् वेदशिरा नामके पुत्र हुए ॥ १—३ ॥

महर्षि मरीचिके भी सम्भूति (नामक पली)-ने सभी (शुभ) लक्षणोंसे सम्पन्न पौर्णमास नामक पुत्र और चार कन्याओंको उत्पन्न किया। सबसे बड़ी (कन्याका नाम) तुष्टि तथा अन्य तीन कन्याओंका नाम वृष्टि, कृष्टि और अपचिति था। पौर्णमासके विरजा तथा पर्वत नामके दो पुत्र थे ॥ ४-५ ॥

प्रजापति पुलहकी पली क्षमाने कर्दम, वरीयान् और उनसे छोटे सहिष्णु नामक श्रेष्ठ मुनिको जन्म दिया जो तपके कारण पाप-रहित थे। उसी प्रकार अत्रिकी पली अनसूयाने चन्द्रमा, दुर्वासा और योगी दत्तात्रेय नामक पुण्यात्मा पुत्रोंको उत्पन्न किया। महर्षि अङ्गिराकी स्मृति नामक पलीने सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति (नामवाली) शुभलक्षणसम्पन्न (चार) पुत्रियोंको जन्म दिया। प्रभु भगवान् पुलस्त्यने (अपनी पली) प्रीतिसे दत्तात्रि (नामक पुत्र)-को उत्पन्न किया। स्वायम्भुव मन्वन्तरके (अपने) पूर्वजन्ममें वे ही अगस्त्य नामसे प्रसिद्ध थे। (पुलस्त्यको प्रीतिसे) वेदबाहु (नामक एक अन्य पुत्र) और ‘सत्रति’ इस नामसे प्रसिद्ध (एक) कन्या थी ॥ ६—१० ॥

महर्षि क्रतुकी पली संततिने साठ हजार पुत्रोंको जन्म दिया। वे सभी ऊर्ध्वरेता बालखिल्य इस नामसे प्रसिद्ध हुए। महर्षि वसिष्ठने ऊर्जा नामक पलीसे सात पुत्रों और कमलके समान नेत्रवाली तथा सभी प्रकारकी शोभाओंसे सम्पन्न एक कन्याको जन्म दिया ॥ ११-१२ ॥

रजोहश्चोर्ध्वबाहुश्च सवनश्चानघस्तथा ।  
सुतपाः शुक्र इत्येते सप्त पुत्रा महौजसः ॥ १३ ॥

योऽसौ रुद्रात्मको वह्निर्ब्रह्मणस्तनयो द्विजाः ।  
स्वाहा तस्मात् सुतान् लेभे त्रीनुदारान् महौजसः ॥ १४ ॥

पावकः पवमानश्च शुचिरग्निश्च ते त्रयः ।  
निर्मथ्यः पवमानः स्याद् वैद्युतः पावकः स्मृतः ॥ १५ ॥

यश्चासौ तपते सूर्यः शुचिरग्निस्त्वसौ स्मृतः ।  
तेषां तु संततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ १६ ॥

पावकः पवमानश्च शुचिस्तेषां पिता च यः ।  
एते चैकोनपञ्चाशद् वह्नयः परिकीर्तिः ॥ १७ ॥

सर्वे तपस्विनः प्रोक्ताः सर्वे यज्ञेषु भागिनः ।  
रुद्रात्मकाः स्मृताः सर्वे त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः ॥ १८ ॥

अयज्वानश्च यज्वानः पितरो ब्रह्मणः स्मृताः ।  
अग्निष्वान्ता बर्हिषदो द्विधा तेषां व्यवस्थितिः ॥ १९ ॥

तेभ्यः स्वधा सुतां जज्ञे मेनां वैतरणीं तथा ।  
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ मुनिसत्तमाः ॥ २० ॥

असूत मेना मैनाकं क्रौञ्चं तस्यानुजं तथा ।  
गङ्गा हिमवतो जज्ञे सर्वलोकैकपावनी ॥ २१ ॥

स्वयोगाग्निबलाद् देवीं लेभे पुत्रीं महेश्वरीम् ।  
यथावत् कथितं पूर्वं देव्या माहात्म्यमुत्तमम् ॥ २२ ॥

एषा दक्षस्य कन्यानां मयापत्यानुसंततिः ।  
व्याख्याता भवतामद्य मनोः सृष्टि निबोधत ॥ २३ ॥

रज, उह, उर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, सुतपा और  
शुक्र—(नामवाले) ये (वसिष्ठके) सात महान् ओजस्वी  
पुत्र थे। द्विजो! ब्रह्माका रुद्रस्वरूप जो वह वहि नामक  
पुत्र था, उससे स्वाहाने महातेजस्वी तीन उदार पुत्रोंको  
प्राप्त किया। वे तीनों पावक, पवमान तथा शुचि  
(नामवाले) अग्नि थे। मन्थनद्वारा उत्पन्न अग्निको  
पवमान और विद्युत्से सम्बद्ध अग्निको पावक कहा  
जाता है। जो यह सूर्य चमकता है वही शुचि अग्नि  
कहलाता है। उन (तीनों अग्नियों)-की पैतालीस संतानें  
हुई। (इस प्रकार) पावक, पवमान तथा शुचि (नामक  
तीन अग्नियाँ) और इन तीनोंके पिता (रुद्रात्मक अग्नि)  
एवं (उन तीनों अग्नियोंके पैतालीस पुत्र) ये सभी  
मिलाकर उनचास अग्नियाँ कही गयी हैं। ये सभी  
(उनचास) तपस्वी कहे गये हैं, सभी यज्ञभागके  
अधिकारी हैं, रुद्रात्मक कहलाते हैं और सभी मस्तकपर  
त्रिपुण्ड्रके चिह्नसे अङ्कित रहते हैं ॥ १३—१८ ॥

ब्रह्माके अग्निष्वान्त तथा बर्हिषद् नामक दो पुत्र  
कहे गये हैं जो पितर हैं। उनमें अयज्वा (यज्ञ न  
करनेवाले) तथा यज्वा (यज्ञ करनेवाले)-के रूपमें दो  
प्रकारकी व्यवस्था है। मुनिश्रेष्ठो! स्वधाने उनके द्वारा  
मेना और वैतरणी नामक दो पुत्रियोंको प्राप्त किया।  
वे दोनों ही ब्रह्मवादिनी और योगिनी थीं। मेनाने मैनाक  
और उसके अनुज क्रौञ्च (नामक पर्वत)-को जन्म  
दिया। हिमालयसे समस्त लोकोंको पवित्र करनेमें  
अद्वितीय गङ्गा उत्पन्न हुई। (हिमालयने) अपनी योगाग्निके  
बलसे (उन) देवी महेश्वरीको पुत्री-रूपमें प्राप्त किया,  
जिन देवीके उत्तम माहात्म्यको भलीभाँति पहले बता  
दिया गया है ॥ १९—२२ ॥

मैने प्रजापति दक्षकी कन्याओंकी संतान-परम्पराका  
आप लोगोंसे वर्णन किया। अब आप (स्वायम्भूव)  
मनुकी सृष्टिका वर्णन सुनें ॥ २३ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षद्साहस्राणं संहितायां पूर्वविभागे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

## तेरहवाँ अध्याय

स्वायम्भुव मनुके वंशका वर्णन, चाक्षुष मनुकी उत्पत्ति, महाराज पृथुका आख्यान, पृथुका वंश-वर्णन, पृथुके पौत्र 'सुशील' का रोचक आख्यान, सुशीलको हिमालयके 'धर्मपद' नामक वनमें महापाशुपत श्वेताश्वतर मुनिके दर्शन तथा उनसे पाशुपत-ब्रतका ग्रहण, दक्षके पूर्वजन्मका वृत्तान्त तथा पुनः दक्ष प्रजापतिके रूपमें आविर्भाविकी कथा, दक्षद्वारा शंकरका अपमान, सतीद्वारा देह-त्याग तथा शंकरका दक्षको शाप

सूत उवाच

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवस्य तु।  
धर्मज्ञौ सुमहावीर्यौ शतरूपा व्यजीजनत्॥ १ ॥

ततस्तूत्तानपादस्य ध्रुवो नाम सुतोऽभवत्।  
भक्तो नारायणे देवे प्रासवान् स्थानमुत्तमम्॥ २ ॥

ध्रुवात् शिलष्टि च भव्यं च भार्या शम्भुर्वर्जायत।  
शिलष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान्॥ ३ ॥

वसिष्ठवचनाद् देवी तपस्तप्त्वा सुदुश्शरम्।  
आराध्य पुरुषं विष्णुं शालग्रामे जनार्दनम्॥ ४ ॥

रिपुं रिपुञ्जयं विप्रं वृक्कलं वृषतेजसम्।  
नारायणपरान् शुद्धान् स्वधर्मपरिपालकान्॥ ५ ॥

रिपोराधत्त बृहती चक्षुषं सर्वतेजसम्।  
सोऽजीजनत् पुष्करिण्यां वैरण्यां चाक्षुषं मनुम्।  
प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः॥ ६ ॥

मनोरजायन्त दश नद्वलायां महौजसः।  
कन्यायां सुमहावीर्या वैराजस्य प्रजापतेः॥ ७ ॥

ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् शुचिः।  
अग्निष्ठुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चाभिमन्युकः॥ ८ ॥

ऊरोरजनयत् पुत्रान् घडाग्नेयी महाबलान्।  
अङ्गं सुमनसं स्वातिं क्रतुमङ्गिरसं शिवम्॥ ९ ॥

अङ्गाद् वेनोऽभवत् पश्चाद् वैन्यो वेनादजायत।  
योऽसौ पृथुरिति ख्यातः प्रजापालो महाबलः॥ १० ॥

येन दुग्धा मही पूर्वं प्रजानां हितकारणात्।  
नियोगाद् ब्रह्मणः सार्थं देवेन्द्रेण महौजसा॥ ११ ॥

सूतजी बोले—स्वायम्भुव मनुकी पत्नी शतरूपाने प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामवाले दो पुत्रोंको जन्म दिया, जो धर्मको जाननेवाले तथा महान् पराक्रमी थे। कालान्तरमें उत्तानपादका ध्रुव नामक पुत्र हुआ। भगवान् विष्णुके उस भक्तने उत्तम स्थान प्राप्त किया। ध्रुवकी शम्भुनामक पत्नीने शिलष्टि तथा भव्य नामक पुत्रोंको जन्म दिया। शिलष्टिकी सुच्छाया नामक पत्नीने पाँच पुण्यात्मा पुत्रोंको उत्पन्न किया। महर्षि वसिष्ठके कथनानुसार सुच्छाया नामक देवीने अत्यन्त कठोर तप करके शालग्राममें जनार्दन पुरुष विष्णुकी आराधना कर रिपु, रिपुञ्जय, विप्र, वृक्कल तथा वृषतेजस् नामवाले पाँच पुत्रोंको जन्म दिया, जो नारायणमें अनन्य निष्ठा रखनेवाले, शुद्ध तथा अपने धर्मका विशेषरूपसे पालन करनेवाले थे॥ १—५ ॥

रिपुकी पत्नी बृहतीने सब प्रकारके तेजोंसे सम्पन्न चक्षुष (नामक पुत्र)-को जन्म दिया। उस चक्षुषने महात्मा वीरण प्रजापतिकी पुष्करिणी\* नामवाली पुत्रीसे चाक्षुष मनुको जन्म दिया। अत्यन्त तेजस्वी (चाक्षुष) मनुके वैराज प्रजापतिकी कन्या नद्वलासे दस पुत्र उत्पन्न हुए, जो ऊरु, पूरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, शुचि, अग्निष्ठुत, अतिरात्र, सुद्युम्न तथा अभिमन्युक (नामवाले) थे। ऊरुकी पत्नी आग्नेयीने अङ्ग, सुमनस्, स्वाति, क्रतु, अङ्गिरस् एवं शिव (नामवाले) महाबलशाली छः पुत्रोंको उत्पन्न किया। अङ्गसे वेन हुआ और फिर वेनसे वैन्य उत्पन्न हुए। प्रजापालक, महाबलवान् वे ही वैन्य पृथु नामसे विख्यात हुए। पूर्वकालमें उन्होंने प्रजाओंके कल्याणकी कामनासे ब्रह्माके आदेशसे महातेजस्वी देवराज इन्द्रके साथ (गोरुपा) पृथ्वीका दोहन किया था॥ ६—११ ॥

\* यह पुष्करिणी प्रजापति वीरणकी पुत्री होनेसे वैरणी भी कही जाती है।

वेनपुत्रस्य वितते पुरा पैतामहे मखे।  
सूतः पौराणिको जज्ञे मायारूपः स्वयं हरिः ॥ १२ ॥

प्रवक्ता सर्वशास्त्राणां धर्मज्ञो गुणवत्सलः।  
तं मां वित्त मुनिश्रेष्ठाः पूर्वोद्भूतं सनातनम् ॥ १३ ॥

अस्मिन् मन्वन्तरे व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम्।  
श्रावयामास मां प्रीत्या पुराणं पुरुषो हरिः ॥ १४ ॥

मदन्वये तु ये सूताः सम्भूता वेदवर्जिताः।  
तेषां पुराणवक्तृत्वं वृत्तिरासीदजाज्ञया ॥ १५ ॥  
स तु वैन्यः पृथुर्थीमान् सत्यसंधो जितेन्द्रियः।  
सार्वभौमो महातेजाः स्वधर्मपरिपालकः ॥ १६ ॥

तस्य बाल्यात् प्रभृत्येव भक्तिर्नारायणोऽभवत्।  
गोवर्धनगिरिं प्राप्य तपस्तेषे जितेन्द्रियः ॥ १७ ॥

तपसा भगवान् प्रीतः शङ्खचक्रगदाधरः।  
आगत्य देवो राजानं प्राह दामोदरः स्वयम् ॥ १८ ॥

धार्मिकौ रूपसम्पन्नौ सर्वशस्त्रभूतां वरौ।  
मत्प्रसादादसंदिग्धं पुत्रौ तव भविष्यतः।  
एवमुक्त्वा हृषीकेशः स्वकीयां प्रकृतिं गतः ॥ १९ ॥

वैन्योऽपि वेदविधिना निश्चलां भक्तिमुद्भवन्।  
अपालयत् स्वकं राज्यं न्यायेन मधुसूदने ॥ २० ॥  
अचिरादेव तन्वङ्गी भार्या तस्य शुचिस्मिता।  
शिखण्डनं हविर्धानमन्तर्धाना व्यजायत ॥ २१ ॥

शिखण्डनोऽभवत् पुत्रः सुशील इति विश्रुतः।  
धार्मिको रूपसम्पन्नो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ २२ ॥

सोऽधीत्य विधिवद् वेदान् धर्मेण तपसि स्थितः।  
मतिं चक्रे भाग्ययोगात् संन्यासं प्रति धर्मवित् ॥ २३ ॥  
स कृत्वा तीर्थसंसेवां स्वाध्याये तपसि स्थितः।  
जगाम हिमवत्पृष्ठं कदाचित् सिद्धसेवितम् ॥ २४ ॥

तत्र धर्मपदं नाम धर्मसिद्धिप्रदं वनम्।  
अपश्यद् योगिनां गम्यमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम् ॥ २५ ॥

प्राचीन कालमें वेनके पुत्र पृथुके पैतामह नामक यज्ञ करते समय मायारूपधारी साक्षात् विष्णु ही पौराणिक सूतके रूपमें उत्पन्न हुए। वे सभी शास्त्रोंके प्रवक्ता, धर्मको जाननेवाले तथा वात्सल्यगुणसे सम्पन्न थे। मुनिश्रेष्ठो! प्राचीन कालमें आविर्भूत वही सनातन (विष्णु) मुझे जानो। इस मन्वन्तरमें स्वयं कृष्णद्वैपायन व्यास नामक पुराणपुरुष विष्णुने प्रीतिपूर्वक मुझे पुराण सुनाया। मेरे वंशमें वेदवर्जित जो सूत उत्पन्न हुए, ब्रह्माकी आज्ञासे ‘पुराणोंका प्रवचन करना’ उनकी वृत्ति हुई ॥ १२—१५ ॥

वेनके पुत्र वे पृथु बुद्धिमान्, सत्यसंकल्प, जितेन्द्रिय, सम्पूर्ण पृथ्वीके स्वामी, महान् तेजस्वी तथा अपने धर्मका पालन करनेवाले थे। उनकी बाल्यकालसे ही नारायणमें भक्ति थी। इन्द्रियजयी पृथुने गोवर्धन पर्वतपर जाकर तप किया। शंख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु तपस्यासे प्रसन्न हो गये। स्वयं भगवान् दामोदर (विष्णु)-ने उनके पास आकर कहा—मेरी कृपासे निश्चित ही तुम्हें सुन्दर रूपसे सम्पन्न, सभी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ दो धर्मात्मा पुत्र होंगे। ऐसा कहकर भगवान् हृषीकेश अपने प्राकृतिक रूपमें स्थित हो गये (अपने धाम चले गये)। वैन्य (पृथु) भी भगवान् मधुसूदनमें वैदिक विधानसे निश्चल भक्ति रखते हुए न्यायपूर्वक अपने राज्यका पालन करने लगे ॥ १६—२० ॥

मधुर एवं पवित्र मुसकानवाली तथा कृश शरीरवाली उनकी पत्नी अन्तर्धानाने थोड़े ही समयमें शिखण्डी तथा हविर्धान नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया। शिखण्डीका पुत्र ‘सुशील’ नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह धार्मिक, रूपसम्पन्न तथा वेद-वेदाङ्गका पारगामी विद्वान् था। विधिपूर्वक वेदोंका अध्ययन कर वह धर्मपूर्वक तपस्यामें स्थित हुआ। भाग्ययोगसे उस धर्मज्ञने संन्यास ग्रहण करनेका विचार किया। वह तीर्थस्थानोंका सेवन करते हुए स्वाध्याय तथा तपस्यामें स्थित रहने लगा। एक बार वह सिद्धोंके द्वारा सेवित हिमालय पर्वतपर गया। वहाँ उसने धर्म एवं सिद्धिको प्रदान करनेवाले, योगियोंके लिये प्राप्य, किंतु ब्रह्मसे द्वेष करनेवालोंके लिये अप्राप्य धर्मपद नामक एक वनको देखा ॥ २१—२५ ॥

तत्र मन्दाकिनी नाम सुपुण्या विमला नदी ।  
पद्मोत्पलवनोपेता सिद्धाश्रमविभूषिता ॥ २६ ॥

स तस्या दक्षिणे तीरे मुनीन्द्रैयोगिभिर्वृत्तम् ।  
सुपुण्यमाश्रमं रम्यमपश्यत् प्रीतिसंयुतः ॥ २७ ॥

मन्दाकिनीजले स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः ।  
अर्चयित्वा महादेवं पुष्टैः पद्मोत्पलादिभिः ॥ २८ ॥

ध्यात्वाक्संस्थमीशानं शिरस्याधाय चाञ्जलिम् ।  
सम्प्रेक्षमाणो भास्वनं तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ २९ ॥

रुद्राध्यायेन गिरिशं रुद्रस्य चरितेन च ।  
अन्यैश्च विविधैः स्तोत्रैः शास्त्रवैर्वेदसम्भवैः ॥ ३० ॥  
अथास्मिन्नन्तरेऽपश्यत् समायान्तं महामुनिम् ।  
श्वेताश्वतरनामानं महापाशुपतोत्तमम् ॥ ३१ ॥

भस्मसंदिग्धसर्वाङ्गं कौपीनाच्छादनान्वितम् ।  
तपसा कर्षितात्मानं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् ॥ ३२ ॥  
  
समाप्य संस्तवं शम्भोरानन्दास्त्राविलेक्षणः ।  
ववन्दे शिरसा पादौ प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३३ ॥  
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मे साक्षान्मुनीश्वरः ।  
योगीश्वरोऽद्य भगवान् दृष्टो योगविदां वरः ॥ ३४ ॥

अहो मे सुमहद्वाग्यं तपांसि सफलानि मे ।  
किं करिष्यामि शिष्योऽहं तव मां पालयान्ध ॥ ३५ ॥  
सोऽनुगृह्याथ राजानं सुशीलं शीलसंयुतम् ।  
शिष्यत्वे परिजग्राह तपसा क्षीणकल्मषम् ॥ ३६ ॥

सांन्यासिकं विधिं कृत्स्नं कारयित्वा विचक्षणः ।  
ददौ तदैश्वरं ज्ञानं स्वशाखाविहितं व्रतम् ॥ ३७ ॥

अशेषवेदसारं तत् पशुपाशविमोचनम् ।  
अन्त्याश्रममिति ख्यातं ब्रह्मादिभिरनुष्ठितम् ॥ ३८ ॥

वहाँ सिद्धोंके आश्रमसे सुशोभित तथा विभिन्न प्रकारके कमल-समूहोंसे सम्पन्न निर्मल जलवाली तथा पुण्य प्रदान करनेवाली मन्दाकिनी नामक एक नदी (प्रवाहित होती) थी। उसने प्रीतिपूर्वक उस मन्दाकिनी नदीके दक्षिण किनारेपर स्थित मुनीन्द्रों तथा योगियोंसे सेवित पुण्यदायी एक रमणीय आश्रम देखा। उसने मन्दाकिनीके जलमें स्नानकर देवस्वरूप पितरोंको (तर्पण आदिसे) संतृप्तकर विभिन्न वर्णके कमल आदि पुष्टोंके द्वारा भगवान् शंकरकी अर्चना की और सूर्यमण्डलमें स्थित भगवान् ईशानका ध्यानकर सिरसे हाथ जोड़ते हुए प्रकाशमान सूर्यका दर्शन करते हुए वह रुद्राष्टाध्यायी, रुद्रके चरित्र एवं और भी अनेक वेदवर्णित विविध प्रकारके शिव-सम्बन्धी स्तोत्रोंके द्वारा परमेश्वर गिरिशकी स्तुति करने लगा ॥ २६—३० ॥

इसी बीच उसने समस्त अङ्गोंमें भस्म लगाये हुए, कौपीन वस्त्रसे समन्वित, सफेद यज्ञोपवीत धारण किये हुए, तपस्याके द्वारा क्षीण शरीरवाले उत्तम महापाशुपत श्वेताश्वतर नामवाले महामुनिको समीपमें आते हुए देखा। नेत्रोंमें आनन्दाश्रु भरे हुए उसने भगवान् शंकरकी स्तुति समाप्त कर उनके चरणोंमें सिरसे प्रणाम किया और हाथ जोड़ते हुए यह वाक्य कहा— ॥ ३१—३३ ॥

मैं धन्य हूँ, मैं अनुगृहीत हूँ, जो (आज) मुझे योगज्ञानियोंमें त्रेष्ठ, मुनियोंके ईश्वर साक्षात् भगवान् योगीश्वरके दर्शन हुए। अहो! मेरा बड़ा ही सुन्दर भाग्य है। (आज) मेरे सभी तप सफल हो गये। अनघ! मैं क्या करूँ, आपका मैं शिष्य हूँ, आप मेरी रक्षा करें ॥ ३४-३५ ॥

तपस्यासे जिसका सम्पूर्ण कल्मष नष्ट हो गया है, ऐसे उस निष्पाप एवं शीलसम्पन्न ‘सुशील’ नामवाले राजाके ऊपर अनुग्रह करके (शंकरने अपने) शिष्यरूपमें उसे ग्रहण किया। उन बुद्धिमान् (मुनि)-ने संन्यास-सम्बन्धी सम्पूर्ण विधि करवाकर उसे ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान तथा अपनी शाखाद्वारा विहित नियम और पशुरूपी जीवके पाश अर्थात् मायारूपी बन्धनसे मुक्त करनेवाला वह सम्पूर्ण वेदका सार प्रदान किया, साथ ही ब्रह्मा आदिके द्वारा सेवित ‘अन्त्याश्रम’ नामवाले आश्रमको भी प्रदान किया ॥ ३६—३८ ॥

उवाच शिष्यान् सम्प्रेक्ष्य ये तदाश्रमवासिनः ।  
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् ब्रह्मचर्यपरायणान् ॥ ३९ ॥

मया प्रवर्तितं शाखामधीत्यैवेह योगिनः ।  
समासते महादेवं ध्यायन्तो निष्कलं शिवम् ॥ ४० ॥

इह देवो महादेवो रममाणः सहोमया ।  
अध्यास्ते भगवानीशो भक्तानामनुकम्पया ॥ ४१ ॥

इहाशेषजगद्भाता पुरा नारायणः स्वयम् ।  
आराधयन्महादेवं लोकानां हितकाम्यया ॥ ४२ ॥

इहैव देवमीशानं देवनामपि दैवतम् ।  
आराध्य महतीं सिद्धिं लेभिरे देवदानवाः ॥ ४३ ॥

इहैव मुनयः पूर्वं मरीच्याद्या महेश्वरम् ।  
दृष्ट्वा तपोबलाज्ञानं लेभिरे सार्वकालिकम् ॥ ४४ ॥

तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र तपोयोगसमन्वितः ।  
तिष्ठ नित्यं मया सार्थं ततः सिद्धिमवाप्यसि ॥ ४५ ॥

एवमाभाष्य विप्रेन्द्रो देवं ध्यात्वा पिनाकिनम् ।  
आचचक्षे महामन्त्रं यथावत् स्वार्थसिद्धये ॥ ४६ ॥

सर्वपापोपशमनं वेदसारं विमुक्तिदम् ।  
अग्निरित्यादिकं पुण्यमृषिभिः सम्प्रवर्तितम् ॥ ४७ ॥

सोऽपि तद्वचनाद् राजा सुशीलः श्रद्धयान्वितः ।  
साक्षात् पाशुपतो भूत्वा वेदाभ्यासरतोऽभवत् ॥ ४८ ॥

भस्मोद्भूलितसर्वाङ्गः कन्दमूलफलाशनः ।  
शान्तो दान्तो जितक्रोधः सन्यासविधिमाश्रितः ॥ ४९ ॥

हविर्धानस्तथाग्नेष्वां जनयामास सत्सुतम् ।  
प्राचीनबर्हिषं नाम्ना धनुर्वेदस्य पारगम् ॥ ५० ॥

प्राचीनबर्हिर्भगवान् सर्वशस्त्रभृतां वरः ।  
समुद्रतनयायां वै दश पुत्रानजीजनत् ॥ ५१ ॥

प्रचेतसस्ते विख्याता राजानः प्रथितौजसः ।  
अधीतवन्तः स्वं वेदं नारायणपरायणाः ॥ ५२ ॥

दशभ्यस्तु प्रचेतोऽथो मारिषायां प्रजापतिः ।  
दक्षो जज्ञे महाभागो यः पूर्वं ब्रह्मणः सुतः ॥ ५३ ॥

उस आश्रममें रहनेवाले ब्रह्मचर्यपरायण ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य शिष्योंको देखकर वे (श्वेताश्वतर मुनि) बोले—मेरे द्वारा प्रवर्तित शाखाका अध्ययन करते हुए योगीजन निष्कल महादेव शिवका ध्यान करते हुए यहाँ निवास करते हैं। भक्तोंपर अनुकम्पा करनेके लिये भगवान् महादेव उमाके साथ रमण करते हुए यहाँ विराजमान रहते हैं ॥ ३९—४१ ॥

प्राचीन कालमें संसारके कल्याणकी कामनासे समस्त जगत्को धारण करनेवाले स्वयं नारायण महादेवकी आराधना करते हुए यहाँ रहते थे। यहींपर देवताओंके भी देवता भगवान् शिवकी आराधना कर देवता तथा दानवोंने महान् सिद्धि प्राप्त की थी और यहींपर प्राचीन कालमें मरीचि आदि ऋषियोंने अपनी तपस्याके प्रभावसे महेश्वरका दर्शनकर सभी कालोंमें उपयोगी—हितकर ज्ञान प्राप्त किया था ॥ ४२—४४ ॥

इसलिये राजेन्द्र! तुम भी तप एवं योगसे समन्वित होकर नित्य ही मेरे साथ रहो, इससे तुम सिद्धि प्राप्त करोगे। ऐसा कहकर उन ब्राह्मण-श्रेष्ठ (श्वेताश्वतर मुनि)-ने पिनाक (नामक धनुष) धारण करनेवाले भगवान् (शंकर)-का ध्यान करके स्वार्थ-सिद्धिके लिये सभी पापोंका शमन करनेवाले, वेदसारस्वरूप, मुक्ति प्रदान करनेवाले तथा ऋषियोंद्वारा प्रवर्तित 'अग्नि' इत्यादि पुण्यजनक महामन्त्रका उसे (सुशीलको) विधिपूर्वक उपदेश दिया। उनके कथनानुसार 'सुशील' नामक वह राजा भी बड़ी ही श्रद्धासे साक्षात् पाशुपत होकर वेदाभ्यासमें निरत हो गया ॥ ४५—४८ ॥

अपने सभी अङ्गोंमें भस्म धारणकर कन्द, मूल एवं फलोंका आहार करते हुए शान्त, इन्द्रियजयी एवं क्रोधजयी राजाने संन्यास-विधिका आश्रय लिया। हविर्धानने आग्नेयी नामक अपनी पत्नीसे धनुर्वेदमें पारंगत प्राचीन बर्हिष नामक श्रेष्ठ पुत्रको उत्पन्न किया। सभी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भगवान् प्राचीनबर्हिने समुद्रकी पुत्रीसे दस पुत्रोंको उत्पन्न किया। नारायणपरायण तथा अपने तेजके लिये विख्यात प्रचेतस् नामसे प्रसिद्ध उन राजाओंने अपने वेदका अध्ययन किया। इन्हीं दस प्रचेताओंद्वारा मारिषा (नामक उनकी पत्नी)-से महाभाग प्रजापति दक्ष (पुत्ररूपमें) उत्पन्न हुए, जो पूर्वं समयमें ब्रह्माके पुत्र थे ॥ ४९—५३ ॥

स तु दक्षो महेशेन रुद्रेण सह धीमता।  
कृत्वा विवादं रुद्रेण शापः प्राचेतसोऽभवत्॥ ५४ ॥

समायान्तं महादेवो दक्षं देव्या गृहं हरः।  
दृष्ट्वा यथोचितां पूजां दक्षाय प्रददौ स्वयम्॥ ५५ ॥

तदा वै तमसाविष्टः सोऽधिकां ब्रह्मणः सुतः।  
पूजामनर्हमन्विच्छन् जगाम कुपितो गृहम्॥ ५६ ॥

कदाचित् स्वगृहं प्राप्तां सतीं दक्षः सुदुर्मनाः।  
भर्त्रा सह विनिन्द्यैनां भर्त्सयामास वै रुषा॥ ५७ ॥

अन्ये जामातरः श्रेष्ठा भर्तुस्तव पिनाकिनः।  
त्वमप्यसत्सुतास्माकं गृहाद् गच्छ यथागतम्॥ ५८ ॥

तस्य तद्वाक्यमाकरण्यं सा देवी शंकरप्रिया।  
विनिन्द्य पितरं दक्षं ददाहात्मानमात्मना॥ ५९ ॥

प्रणम्य पशुभर्तारं भर्तारं कृत्तिवाससम्।  
हिमवद्दुहिता साभूत् तपसा तस्य तोषिता॥ ६० ॥

ज्ञात्वा तद्वगवान् रुद्रः प्रपन्नार्तिहरो हरः।  
शशाप दक्षं कुपितः समागत्याथ तदगृहम्॥ ६१ ॥

त्यक्त्वा देहमिमं ब्रह्मन् क्षत्रियाणां कुलोद्धवः।  
स्वस्यां सुतायां मूढात्मन् पुत्रमुत्यादयिष्यसि॥ ६२ ॥

एवमुक्त्वा महादेवो ययौ कैलासपर्वतम्।  
स्वायम्भुवोऽपि कालेन दक्षः प्राचेतसोऽभवत्॥ ६३ ॥

एतद् वः कथितं सर्वं मनोः स्वायम्भुवस्य तु।  
विसर्गं दक्षपर्यन्तं शृण्वतां पापनाशनम्॥ ६४ ॥

उन दक्षने बुद्धिमान् महेश रुद्रके साथ विवाद किया था, इससे रुद्रद्वारा शाप प्राप्तकर वे प्रचेताओंके पुत्र बने॥ ५४ ॥

महादेव हरने स्वयं देवी (पार्वती)-के घर आये हुए दक्षको देखकर उनकी यथोचित पूजा की। (किंतु) उस समय तमोगुणके आवेशसे समाविष्ट ब्रह्माके पुत्र दक्ष (शंकरद्वारा की गयी अपनी) पूजाको अपर्याप्त और अयोग्य समझकर और भी अधिक पूजाकी इच्छा करनेके कारण कुपित होकर अपने घर चले गये। तदनन्तर कभी दूषित मनवाले दक्षने अपने घर आयी हुई (अपनी पुत्री) सतीकी (उनके) पति (भगवान् शंकर)-के साथ निन्दा करते हुए क्रुद्ध होकर भर्त्सना की॥ ५५—५७ ॥

(दक्ष बोले—सती!) तुम्हारे पिनाकधारी पतिसे मेरे अन्य जामाता श्रेष्ठ हैं। तुम भी अच्छी पुत्री नहीं हो, इसलिये मेरे घरसे वहीं चले जाओ जहाँसे आयी हो। शंकरप्रिया उन देवी सतीने उस (कठोर) वाक्यको सुनकर पिता दक्षकी निन्दा की और चर्माम्बरधारी अपने स्वामी पशुपतिको प्रणामकर स्वयं ही उन्होंने (योगाग्निद्वारा) अपनेको भस्म कर डाला। तदनन्तर वे ही हिमालयकी तपस्यासे प्रसन्न होकर उनकी पुत्री बनी॥ ५८—६० ॥

उस बातको जानकर शरणागतोंका कष्ट हरनेवाले भगवान् रुद्र हर दक्षके घर आये और क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया। ब्रह्मन्! मूढात्मन्! इस शरीरको छोड़कर तुम क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न होओगे और पापवश अकार्यमें तुम्हारी प्रवृत्ति होगी। ऐसा कहकर महादेव कैलासपर्वतपर चले गये और समय आनेपर स्वायम्भुव दक्ष भी प्रचेताओंके पुत्र बने॥ ६१—६३ ॥

(सूतजीने इस प्रकार कहा—) आप लोगोंसे मैंने स्वायम्भुव मनुकी दक्षपर्यन्त विशेष सृष्टिका वर्णन किया। (यह वर्णन) सुननेवालोंके पापको नष्ट करनेवाला है॥ ६४ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्रयां संहितायां पूर्वविभागे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १३ ॥



## चौदहवाँ अध्याय

हरिद्वारमें दक्षद्वारा यज्ञका आयोजन, यज्ञमें शंकरका भाग न देखकर महर्षि दधीचद्वारा दक्षकी भर्त्सना तथा यज्ञमें भाग लेनेवाले ब्राह्मणोंको शाप, देवी पार्वतीके कहने-पर शंकरद्वारा रुद्रों, भद्रकाली तथा वीरभद्रको प्रकट करना, वीरभद्रादिद्वारा दक्षके यज्ञका विध्वंस, शंकर-पार्वतीका यज्ञस्थलमें प्राकट्य, भयभीत दक्षद्वारा शंकर तथा पार्वतीकी स्तुति और वर प्राप्त करना,  
 ब्रह्माद्वारा दक्षको उपदेश और शिव-विष्णुके एकत्रिका प्रतिपादन तथा दक्षद्वारा शिवकी शरण ग्रहण करना

नैमित्तीय ऊचुः

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।  
 उत्पत्तिं विस्तरात् सूत ब्रूहि वैवस्वतेऽन्तरे॥ १ ॥

स शासः शम्भुना पूर्व दक्षः प्राचेतसो नृपः।  
 किमकार्षीन्महाबुद्धे श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम्॥ २ ॥

सूत उवाच

वक्ष्ये नारायणेनोक्तं पूर्वकल्पानुषङ्गिकम्।  
 त्रिकालबद्धं पापघ्नं प्रजासर्गस्य विस्तरम्॥ ३ ॥

स शासः शम्भुना पूर्व दक्षः प्राचेतसो नृपः।  
 विनिन्द्य पूर्ववैरेण गङ्गाद्वारेऽयजद् भवम्॥ ४ ॥

देवाश्व सर्वे भागार्थमाहूता विष्णुना सह।  
 सहैव मुनिभिः सर्वैरागता मुनिपुङ्गवाः॥ ५ ॥

दृष्ट्वा देवकुलं कृत्स्नं शंकरेण विनागतम्।  
 दधीचो नाम विप्रर्षिः प्राचेतसमथाब्रवीत्॥ ६ ॥

दधीच उवाच

ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यस्याज्ञानुविधायिनः।  
 स देवः साम्प्रतं रुद्रो विधिना किं न पूज्यते॥ ७ ॥

दक्ष उवाच

सर्वेष्वेव हि यज्ञेषु न भागः परिकल्पितः।  
 न मन्त्रा भार्या सार्थं शंकरस्येति नेत्यते॥ ८ ॥

विहस्य दक्षं कुपितो वचः प्राह महामुनिः।  
 शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वज्ञानमयः स्वयम्॥ ९ ॥

नैमित्तीय ऋषि बोले—सूतजी महाराज! वैवस्वत मन्वन्तरमें हुई देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, नागों तथा राक्षसोंकी उत्पत्तिको आप विस्तारसे बतलायें। महाबुद्धिमान् सूतजी! इस समय हम यह सुनना चाहते हैं कि प्राचीन कालमें प्रचेताके पुत्र राजा दक्षने भगवान् शंकरसे शाप प्राप्तकर क्या किया था॥ १-२ ॥

सूतजीने कहा—मैं पूर्वकल्पके प्रसंगमें नारायणद्वारा कहे गये (भूत, भविष्य तथा वर्तमान—इस प्रकार) तीनों कालोंसे सम्बद्ध तथा पाप हरनेवाले प्रजा-सर्गको विस्तारसे बतलाता हूँ॥ ३ ॥

प्राचीन कालकी बात है, भगवान् शंकरके शापसे ग्रस्त उन प्रचेतापुत्र राजा दक्षने पूर्व वैरके कारण शंकरकी निन्दा कर गङ्गाद्वार हरिद्वारमें एक यज्ञका अनुष्ठान प्रारम्भ किया। श्रेष्ठ मुनियो! विष्णुके साथ सभी देवता उस यज्ञमें भाग ग्रहण करनेके लिये बुलाये गये। सभी मुनियोंके साथ वे वहाँ आये। शंकरको छोड़कर आये हुए समस्त देव-समूहोंको देखकर दधीच नामक विप्रर्षिने प्राचेतस-दक्षसे (इस प्रकार) कहा—॥ ४-६ ॥

दधीच बोले—ब्रह्मा आदिसे लेकर पिशाचतक जिनकी आज्ञाका शीघ्र ही अनुपालन करते हैं, उन रुद्रदेवकी पूजा इस समय क्यों नहीं की जा रही है?॥ ७ ॥

दक्षने कहा—सभी यज्ञोंमें भार्यासहित शंकरके भाग एवं मन्त्रोंकी परिकल्पना नहीं हुई है, इसलिये उनकी पूजा नहीं की जाती। इसपर साक्षात् सर्वज्ञानमय महामुनि दधीचने कोपपूर्वक हँसते हुए सभी देवताओंको सुनाते हुए दक्षसे कहा—॥ ८-९ ॥

दधीच उवाच

यतः प्रवृत्तिर्विश्वेषां यश्चास्य परमेश्वरः ।  
सम्पूज्यते सर्वयज्ञर्विदित्वा किल शंकरः ॥ १० ॥

दक्ष उवाच

न ह्यं शंकरो रुद्रः संहर्ता तामसो हरः ।  
नग्नः कपाली विकृतो विश्वात्मा नोपपद्यते ॥ ११ ॥

ईश्वरो हि जगत्त्वष्टा प्रभुर्नारायणः स्वराट् ।  
सत्त्वात्मकोऽसौ भगवानिज्यते सर्वकर्मसु ॥ १२ ॥

दधीच उवाच

किं त्वया भगवानेष सहस्रांशुर्न दृश्यते ।  
सर्वलोकैकसंहर्ता कालात्मा परमेश्वरः ॥ १३ ॥

यं गृणन्तीह विद्वांसो धार्मिका ब्रह्मवादिनः ।  
सोऽयं साक्षी तीव्रोचिः कालात्मा शांकरी तनुः ॥ १४ ॥

एष रुद्रो महादेवः कपर्दी च घृणी हरः ।  
आदित्यो भगवान् सूर्यो नीलग्रीवो विलोहितः ॥ १५ ॥

संस्तूयते सहस्रांशुः सामगाध्वर्युहोतृभिः ।  
पश्यैनं विश्वकर्माणं रुद्रमूर्ति त्रयीमयम् ॥ १६ ॥

दक्ष उवाच

य एते द्वादशादित्या आगता यज्ञभागिनः ।  
सर्वे सूर्या इति ज्ञेया न ह्यन्यो विद्यते रविः ॥ १७ ॥

एवमुक्ते तु मुनयः समायाता दिदृक्षवः ।  
बाढ्मित्यब्लृवन् वाक्यं तस्य साहाय्यकारिणः ॥ १८ ॥

तमसाविष्टमनसो न पश्यन्ति वृषध्वजम् ।  
सहस्रशोऽथ शतशो भूय एव विनिन्द्यते ॥ १९ ॥

निन्दन्तो वैदिकान् मन्त्रान् सर्वभूतपतिं हरम् ।  
अपूजयन् दक्षवाक्यं मोहिता विष्णुमायया ॥ २० ॥

देवाश्च सर्वे भागार्थमागता वासवादयः ।  
नापश्यन् देवमीशानमृते नारायणं हरिम् ॥ २१ ॥

हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।  
पश्यतामेव सर्वेषां क्षणादन्तरधीयत ॥ २२ ॥

दधीच बोले—जिनसे सभीकी प्रवृत्ति होती है और जो इस (विश्व)-के परमेश्वर हैं, वे शंकर निश्चय ही सभी यज्ञोंद्वारा ज्ञानपूर्वक पूजित होते हैं ॥ १० ॥

दक्षने कहा—संहार करनेवाले, तमोगुणी, नग्न, कपाल धारण करनेवाले तथा विकृत (वेशवाले) रुद्र, हर, शंकर किसी भी प्रकार विश्वात्मा नहीं हो सकते। संसारकी सृष्टि करनेवाले स्वराट्, प्रभु नारायण ही ईश्वर हैं और सभी कर्मोंमें उन सत्त्वात्मक भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है ॥ ११-१२ ॥

दधीच बोले—क्या तुम समस्त लोकोंके एकमात्र संहारकर्ता कालस्वरूप, तथा हजारों किरणवाले इन परमेश्वर भगवान् (सूर्य)-को नहीं देख रहे हो। धर्मात्मा, ब्रह्मवादी विद्वान् जिनकी स्तुति करते हैं, वही ये (सूर्य) तीव्र तेजसे सम्पन्न कालात्मक साक्षी यहाँ शंकरके शरीररूपमें ही स्थित हैं। देवी अदिति के पुत्र ये भगवान् सूर्य ही रुद्र, महादेव, कपर्दी, घृणी, हर, नीलग्रीव, विलोहित (नामवाले) हैं। सामवेदका गान करनेवाले तथा अध्वर्यु एवं होताओंके द्वारा हजारों किरणवाले सूर्यकी स्तुति की जाती है। विश्वको बनानेवाले त्रयीमय—ऋक्, यजुः तथा सामवेदस्वरूप रुद्रकी मूर्तिको देखो ॥ १३-१६ ॥

दक्षने कहा—यज्ञमें भाग ग्रहण करनेवाले ये जो बारह (अदिति-पुत्र) आदित्य यहाँ आये हुए हैं, ये सभी सूर्यके नामसे ही जाने जाते हैं। इनसे अतिरिक्त कोई अन्य सूर्य नहीं हैं। ऐसा कहनेपर यज्ञ देखनेकी इच्छासे आये हुए उनके (दक्षके) सहयोगी मुनियोंने (समर्थन करते हुए) दक्षसे कहा—ठीक है। तमोगुणसे आविष्ट मनवाले सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें आये हुए उन लोगोंने भगवान् वृषध्वज शंकरको न देखते हुए पुनः उनकी निन्दा करनी आरम्भ की। विष्णुकी मायासे मोहित होकर वे वैदिक मन्त्रोंकी निन्दा करते हुए सभी प्राणियोंके एकमात्र स्वामी भगवान् हरकी पूजा न करके दक्षके वचनका अनुमोदन करने लगे। यज्ञमें भाग ग्रहण करनेके लिये आये हुए इन्द्रादि सभी देवताओंने भी नारायण हरिके अतिरिक्त देव ईशान (शंकर)-को भी नहीं देखा (अर्थात् शिवके माहात्म्यको वे जान नहीं पाये)। ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा सभीके देखते-देखते क्षणभरमें ही अन्तर्धान हो गये ॥ १७-२२ ॥

अन्तर्हिते भगवति दक्षो नारायणं हरिम्।  
रक्षकं जगतां देवं जगाम शरणं स्वयम्॥ २३॥

प्रवर्तयामास च तं यज्ञं दक्षोऽथ निर्भयः।  
रक्षते भगवान् विष्णुः शरणागतरक्षकः॥ २४॥

पुनः प्राह च तं दक्षं दधीचो भगवानृषिः।  
सम्प्रेक्ष्यर्षिगणान् देवान् सर्वान् वै ब्रह्मविद्विषः॥ २५॥

अपूर्ज्यपूजने चैव पूर्ज्यानां चाप्यपूजने।  
नरः पापमवाप्नोति महद् वै नात्र संशयः॥ २६॥

असतां प्रग्रहो यत्र सतां चैव विमानना।  
दण्डो देवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः॥ २७॥

एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिः शशापेश्वरविद्विषः।  
समागतान् ब्राह्मणांस्तान् दक्षसाहाय्यकारिणः॥ २८॥  
यस्माद् बहिष्कृता वेदा भवद्दिः परमेश्वरः।  
विनिन्दितो महादेवः शंकरो लोकवन्दितः॥ २९॥

भविष्यध्वं त्रयीबाह्याः सर्वेऽपीश्वरविद्विषः।  
निन्दन्तो हौश्वरं मार्गं कुशास्त्रासक्तमानसाः॥ ३०॥

मिथ्याधीतसमाचारा मिथ्याज्ञानप्रलापिनः।  
प्राप्य घोरं कलियुगं कलिजैः किल पीडिताः॥ ३१॥

त्यक्त्वा तपोबलं कृत्स्नं गच्छध्वं नरकान् पुनः।  
भविष्यति हृषीकेशः स्वाश्रितोऽपि पराङ्मुखः॥ ३२॥  
एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिर्विराम तपोनिधिः।  
जगाम मनसा रुद्रमशेषाधविनाशनम्॥ ३३॥

एतस्मिन्नन्तरे देवी महादेवं महेश्वरम्।  
पतिं पशुपतिं देवं ज्ञात्वैतत् प्राह सर्वदृक्॥ ३४॥

देव्युवाच

दक्षो यज्ञेन यजते पिता मे पूर्वजन्मनि।  
विनिन्द्य भवतो भावमात्मानं चापि शंकर॥ ३५॥  
देवाः सहर्षिभिश्चासंस्तत्र साहाय्यकारिणः।  
विनाशयाशु तं यज्ञं वरमेकं वृणोम्यहम्॥ ३६॥

भगवान् ब्रह्माके अन्तर्धान हो जानेपर स्वयं दक्ष संसारकी रक्षा करनेवाले देव नारायण हरिकी शरणमें गये। तदनन्तर भयसे मुक्त होकर दक्षने वह यज्ञ आरम्भ किया। शरणागतकी रक्षा करनेवाले भगवान् विष्णु (उस यज्ञकी) रक्षा करने लगे। भगवान् दधीच ऋषिने ब्रह्म (शंकर)-से द्वेष माननेवाले उन सभी ऋषिगणों तथा देवताओंकी ओर देखकर उन दक्षसे पुनः कहा— जो अपूर्ज्य है, उसका पूजन करनेसे और जो पूर्ज्य है, उसका पूजन न करनेसे मनुष्य निश्चित ही महान् पापको प्राप्त करता है, इसमें किंचित् भी संदेह नहीं है। जहाँ दुर्जनोंका आदर होता है और सत्पुरुषोंका अनादर होता है, वहाँ अति शीघ्र ही दारुण दैवी दण्ड उपस्थित होता है। ऐसा कहकर विप्रर्षि दधीचने दक्षकी सहायता करनेके लिये आये हुए उन ईश्वर (शंकर)-से विद्वेष रखनेवाले ब्राह्मणोंको शाप देते हुए कहा— ॥ २३—२८॥

चौंकि तुम लोगोंने वेदोंकी अवमानना की है और समस्त संसारके द्वारा वन्दित परमेश्वर महादेव शंकरकी निन्दा की है, अतः ईश्वर (शंकर)-से द्वेष रखनेवाले तुम सभी वेदत्रयीसे रहित हो जाओगे और असत्-शास्त्रोंमें मन लगाते हुए ईश्वर-मार्ग (शिव-मार्ग)-की निन्दा करोगे तथा घोर कलियुग आनेपर मिथ्या अध्ययन और मिथ्या आचारयुक्त होकर मिथ्या ज्ञानका प्रलाप करनेवाले होओगे, साथ ही कलिके द्वारा उत्पन्न कष्ट एवं दुःखों आदिसे पीड़ित रहोगे। पुनः तुम सभी अपने सम्पूर्ण तपोबलका त्याग करके नरक प्राप्त करोगे। तुम लोगोंके द्वारा हृषीकेश विष्णुके भलीभाँति आश्रय ग्रहण करनेपर भी वे तुम लोगोंसे विमुख ही रहेंगे॥ २९—३२॥

ऐसा कहकर तपस्याकी निधि वे विप्रर्षि (दधीच) चुप हो गये और मानसिक रूपसे सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाले रुद्रकी शरणमें गये। इसी बीच यह सारी घटना जानकर सर्वदर्शी (सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाली) देवी (पार्वती)-ने (अपने) पतिदेव पशुपति महादेव महेश्वरसे कहा— ॥ ३३—३४॥

देवी बोलीं—शंकर! पूर्वजन्मके मेरे (सतीके) पिता दक्ष यज्ञ कर रहे हैं और आपके भाव तथा स्वरूपकी निन्दा कर रहे हैं। ऋषियोंके साथ देवता वहाँ उनकी सहायता करते हुए उपस्थित हैं। मैं आपसे एक वर माँगती हूँ कि 'आप शीघ्र ही उस यज्ञको नष्ट करें'॥ ३५—३६॥

एवं विज्ञापितो देव्या देवो देववरः प्रभुः ।  
ससर्ज सहसा रुद्रं दक्षयज्ञजिधांसया ॥ ३७ ॥

सहस्रशीर्षपादं च सहस्राक्षं महाभुजम् ।  
सहस्रपाणिं दुर्धर्षं युगान्तानलसंनिभम् ॥ ३८ ॥

दंष्ट्राकरालं दुष्ट्रेक्ष्यं शङ्खचक्रगदाधरम् ।  
दण्डहस्तं महानादं शार्ङ्गिणं भूतिभूषणम् ॥ ३९ ॥

वीरभद्र इति ख्यातं देवदेवसमन्वितम् ।  
स जातमात्रो देवेशमुपतस्थे कृताञ्जलिः ॥ ४० ॥  
तमाह दक्षस्य मखं विनाशय शिवोऽस्त्विति ।  
विनिन्द्य मां स यजते गङ्गाद्वारे गणेश्वर ॥ ४१ ॥

ततो बन्धुप्रयुक्तेन सिंहेनैकेन लीलया ।  
वीरभद्रेण दक्षस्य विनाशमगमत् क्रतुः ॥ ४२ ॥

मन्युना चोमया सृष्टा भद्रकाली महेश्वरी ।  
तया च सार्थं वृषभं समारुह्य यथौ गणः ॥ ४३ ॥

अन्ये सहस्रशो रुद्रा निसृष्टास्तेन धीमता ।  
रोमजा इति विख्यातास्तस्य साहाय्यकारिणः ॥ ४४ ॥

शूलशक्तिगदाहस्ताष्ठङ्गोपलकरास्तथा ।  
कालाग्निरुद्रसंकाशा नादयन्तो दिशो दश ॥ ४५ ॥

सर्वे वृषासनारूढाः सभार्याश्रातिभीषणाः ।  
समावृत्य गणश्रेष्ठं ययुर्दक्षमखं प्रति ॥ ४६ ॥  
सर्वे सम्प्राप्य तं देशं गङ्गाद्वारमिति श्रुतम् ।  
ददृशुर्यज्ञदेशं तं दक्षस्यामिततेजसः ॥ ४७ ॥

देवाङ्गनासहस्राद्यमप्सरोगीतनादितम् ।  
वीणावेणुनिनादाद्यं वेदवादाभिनादितम् ॥ ४८ ॥

दृष्ट्वा सहर्षिभिर्देवैः समासीनं प्रजापतिम् ।  
उवाच भद्रया रुद्रैर्वीरभद्रः स्मयन्निव ॥ ४९ ॥

देवीके द्वारा ऐसा कहे जानेपर देवताओंमें श्रेष्ठ प्रभु भगवान् (शंकर)-ने दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेके लिये शीघ्र ही हजारों सिर एवं पैरवाले, हजारों आँखवाले, विशाल भुजायुक्त, हजारों हाथवाले, दुर्जेय प्रलयकालीन अग्निके समान, भयंकर दाढ़युक्त, देखनेमें भयंकर, शंख, चक्र तथा गदा धारण किये, हाथमें दण्ड धारण करनेवाले, घोर नाद करनेवाले, सींगसे बने धनुषको धारण किये, विभूतिसे सुशोभित तथा अनेक देवताओंसे घिरे हुए वीरभद्र नामवाले रुद्रको उत्पन्न किया। उत्पन्न होते ही वह हाथ जोड़कर देवताओंके स्वामी भगवान् शंकरके सम्मुख उपस्थित हुआ ॥ ३७—४० ॥

(शंकरने उससे कहा—) गणेश्वर! दक्षके यज्ञका विध्वंस करो, वह गङ्गाद्वार (हरिद्वार)-में मेरी निन्दा करते हुए यज्ञ कर रहा है। तुम्हारा कल्याण हो। तदनन्तर बन्धु (शिव)-के द्वारा निर्दिष्ट वीरभद्रने सिंहके समान लीला करते हुए अकेले ही दक्षके यज्ञका विध्वंस कर दिया। उमाने भी क्रोध करते हुए महेश्वरी भद्रकालीको उत्पन्न किया, उसके साथ वृषभपर आरूढ़ होकर वह गण (वीरभद्र) वहाँ (गङ्गाद्वार यज्ञमें) गया। बुद्धिमान् उन शंकरने उनकी सहायता करनेवाले हजारों दूसरे रुद्रोंको भी उत्पन्न किया। (शंकरके) रोमोंसे उत्पन्न होनेके कारण वे रुद्र 'रोमज' कहलाये। हाथोंमें त्रिशूल, शक्ति, गदा, टङ्ग (पत्थर तोड़नेके हथियार—घन, हथौड़ा, छेनी आदि) तथा पत्थर लिये हुए और कालाग्नि रुद्रके समान अत्यन्त भीषण सभी अपनी-अपनी भार्याओंके साथ वृषभरूप आसनपर आरूढ़ होकर दसों दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए गणोंमें सर्वश्रेष्ठ वीरभद्रको अपने समूहके बीच रखते हुए जहाँ दक्षयज्ञ हो रहा था, उस ओर चल पड़े ॥ ४१—४६ ॥

गङ्गाद्वार (हरिद्वार) नामसे प्रसिद्ध उस देशमें पहुँचकर उन सभीने अमित तेजस्वी दक्षके उस यज्ञस्थलको देखा, जो हजारों देवाङ्गनाओंसे सुशोभित था, अप्सराओंके गीतोंसे मुखरित था, वीणा तथा वेणुके निनादसे प्रतिध्वनित और वेद-मन्त्रोंसे गुञ्जित था। देवताओं तथा ऋषियोंके साथ बैठे हुए प्रजापति दक्षको देखकर भद्रकाली तथा रुद्रोंसहित वीरभद्रने हँसते हुए कहा— ॥ ४७—४९ ॥

वयं ह्यनुचरा: सर्वे शर्वस्यामिततेजसः ।  
भागाभिलिप्स्या प्राप्ता भागान् यच्छ्वमीप्सितान् ॥ ५० ॥

अथ चेत् कस्यचिदियमाज्ञा मुनिसुरोत्तमाः ।  
भागो भवद्ध्यो देयस्तु नास्मभ्यमिति कथ्यताम् ।  
तं ब्रूताज्ञापयति यो वेत्स्यामो हि वयं ततः ॥ ५१ ॥

एवमुक्ता गणेशेन प्रजापतिपुरःसराः ।  
देवा ऊचुर्यज्ञभागे न च मन्त्रा इति प्रभुम् ॥ ५२ ॥  
मन्त्रा ऊचुः सुरान् यूयं तमोपहतचेतसः ।  
ये नाथ्वरस्य राजानं पूजयध्वं महेश्वरम् ॥ ५३ ॥

ईश्वरः सर्वभूतानां सर्वभूततनुहरः ।  
पूज्यते सर्वयज्ञेषु सर्वाभ्युदयसिद्धिदः ॥ ५४ ॥

एवमुक्ता अपीशानं मायया नष्टचेतसः ।  
न मेनिरे युर्मन्त्रा देवान् मुक्त्वा स्वमालयम् ॥ ५५ ॥

ततः स रुद्रो भगवान् सभार्यः सगणेश्वरः ।  
स्पृशन् कराभ्यां ब्रह्मर्षिं दधीचं प्राह देवता ॥ ५६ ॥  
मन्त्राः प्रमाणं न कृता युष्माभिर्बलं गर्वितैः ।  
यस्मात् प्रसह्य तस्माद् वो नाशयाम्यद्य गर्वितम् ॥ ५७ ॥

इत्युक्त्वा यज्ञशालां तां ददाह गणपुड्डवः ।  
गणेश्वराश्च संकुच्छा यूपानुत्पाट्य चिक्षिपुः ॥ ५८ ॥

प्रस्तोत्रा सह होत्रा च अश्वं चैव गणेश्वराः ।  
गृहीत्वा भीषणाः सर्वे गङ्गास्त्रोतसि चिक्षिपुः ॥ ५९ ॥

वीरभद्रोऽपि दीप्तात्मा शक्रस्योद्यच्छतः करम् ।  
व्यष्टिभ्यददीनात्मा तथान्येषां दिवौकसाम् ॥ ६० ॥

भगस्य नेत्रे चोत्पाट्य करजाग्रेण लीलया ।  
निहत्य मुष्टिना दन्तान् पूष्णाश्चैवमपातयत् ॥ ६१ ॥

हम सभी अमित तेजस्वी शंकरके अनुचर हैं, यज्ञमें भाग प्राप्त करनेकी इच्छासे यहाँ आये हैं, आप हमें अभीप्सित यज्ञभाग प्रदान करें। अथवा श्रेष्ठ मुनियों और देवताओं! आप हमें यह बतलायें कि किसने आपको ऐसी आज्ञा दी है कि मुझे यज्ञभाग न दें और आप लोगोंका ही सब भाग है। जो ऐसी आज्ञा देनेवाला है, उसे बतलायें, फिर हम उसे देख लेंगे। गणोंके स्वामी वीरभद्रके ऐसा कहे जानेपर प्रजापति दक्षसहित देवताओंने प्रभु (वीरभद्र)-से कहा—‘आपको यज्ञभाग देने-सम्बन्धी मन्त्र नहीं हैं’॥ ५०—५२ ॥

(यह सुनकर वेद-) मन्त्रोंने (मूर्तिमान् स्वरूप धारणकर) देवताओंसे कहा—आपका मन तमोगुणसे आक्रान्त हो गया है, इसीलिये आप यज्ञके स्वामी महेश्वरकी पूजा नहीं कर रहे हैं। सभी प्राणियोंके एकमात्र स्वामी और सभी प्राणियोंके शरीर-रूप तथा समस्त अभ्युदय एवं सिद्धियोंको प्रदान करनेवाले हर (शंकर) सभी यज्ञोंमें पूजित होते हैं। ईशान अर्थात् शंकरके बारेमें ऐसा कहे जानेपर भी मायाके कारण नष्ट चेतनावाले देवोंने (जब उनकी बातको) नहीं माना, तब मन्त्र उन्हें छोड़कर अपने स्थानको छले गये। तदनन्तर भार्या और गणेश्वरोंसहित उन (वीरभद्रस्वरूप) रुद्रने ब्रह्मर्षि दधीचको हाथोंसे स्पर्श करते हुए देवताओंसे कहा— ॥ ५३—५६ ॥

तुम लोगोंने अपने बलसे गर्वित होकर मन्त्रोंको प्रमाण नहीं माना, इसलिये इसे सहन न कर मैं आज बलपूर्वक सभीके गर्वको नष्ट करूँगा। ऐसा कहकर गणोंमें श्रेष्ठ वीरभद्रने उस यज्ञशालाको जला डाला और गणेश्वरोंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर (यज्ञशालाके) यूपों (स्तम्भों)-को उखाड़कर फेंक दिया। भयानक सभी गणेश्वरोंने आहुति देनेवालोंसहित पाठ करनेवालों एवं घोड़ेको भी पकड़कर गङ्गाके प्रवाहमें फेंक दिया। प्रदीप आत्मावाले तथा दीनतारहित वीरभद्रने भी इन्द्रके उठे हुए सौ हाथों तथा अन्य देवताओंके उठे हुए हाथोंको स्तम्भित कर दिया। उन्होंने नाखूनोंके अग्रभागसे खेल-खेलमें ही भग (देवता)-के नेत्रोंको उखाड़ डाला, मुक्केसे मारकर पूषा (देवता)-के दाँतोंको तोड़ डाला ॥ ५७—६१ ॥

तथा चन्द्रमसं देवं पादाङ्गुष्ठेन लीलया ।  
धर्षयामास बलवान् स्मयमानो गणेश्वरः ॥ ६२ ॥

वहेर्हस्तद्वयं छित्त्वा जिह्वामुत्पात्य लीलया ।  
जघान मूर्धिन पादेन मुनीश्वरा: ॥ ६३ ॥

तथा विष्णुं सगुडं समायान्तं महाबलः ।  
विव्याध निश्चिर्बाणैः स्तम्भयित्वा सुदर्शनम् ॥ ६४ ॥  
समालोक्य महाबाहुरागत्य गुडो गणम् ।  
जघान पक्षैः सहसा ननादाम्बुनिधिर्यथा ॥ ६५ ॥

ततः सहस्रशो भद्रः ससर्ज गुडान् स्वयम् ।  
वैनतेयादभ्यधिकान् गुडं ते प्रदुद्रुवुः ॥ ६६ ॥

तान् दृष्ट्वा गुडो धीमान् पलायत महाजवः ।  
विसृज्य माधवं वेगात् तदद्वृतमिवाभवत् ॥ ६७ ॥

अन्तर्हिते वैनतेये भगवान् पद्मसम्भवः ।  
आगत्य वारयामास वीरभद्रं च केशवम् ॥ ६८ ॥  
प्रसादयामास च तं गौरवात् परमेष्ठिनः ।  
संस्तूय भगवानीशः साम्बस्त्रागमत् स्वयम् ॥ ६९ ॥

बीक्ष्य देवाधिदेवं तं साम्बं सर्वगणैर्वृतम् ।  
तुष्टाव भगवान् ब्रह्मा दक्षः सर्वे दिवौकसः ॥ ७० ॥

विशेषात् पार्वतीं देवीमीश्वरार्धशरीरिणीम् ।  
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दक्षः प्रणम्य च कृताञ्जलिः ॥ ७१ ॥

ततो भगवती देवी प्रहसन्ती महेश्वरम् ।  
प्रसन्नमानसा रुद्रं वचः प्राह घृणानिधिः ॥ ७२ ॥  
त्वमेव जगतः स्त्रष्टा शासिता चैव रक्षकः ।  
अनुग्राहो भगवता दक्षश्चापि दिवौकसः ॥ ७३ ॥

ततः प्रहस्य भगवान् कपर्दीं नीललोहितः ।  
उवाच प्रणतान् देवान् प्राचेतसमथो हरः ॥ ७४ ॥

गच्छध्वं देवताः सर्वाः प्रसन्नो भवतामहम् ।  
सम्पूज्यः सर्वयज्ञेषु न निन्द्योऽहं विशेषतः ॥ ७५ ॥

इसी प्रकार लीला करते हुए बलशाली गणेश्वर वीरभद्रने हँसकर पैरके अँगूठेसे चन्द्रमाको धर्षित कर (रौंद) दिया । अग्नि (देवता)-के दोनों हाथोंको काटकर लीलासे ही उनकी जीभ उखाड़ दी । मुनीश्वरो उन्होंने पैरसे मुनियोंके मस्तकपर भी प्रहार किया । साथ ही (उस) महाबली (वीरभद्र)-ने सुदर्शनचक्रको स्तम्भित कर गुडपर बैठकर आते हुए विष्णुको भी तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध (चोटिल) कर दिया ॥ ६२—६४ ॥

महाबाहु गुडने वहाँ आकर गण (वीरभद्र)-को देखकर अचानक उन्हें अपने पंखोंसे मारा और समुद्रके समान गर्जन किया । तदनन्तर उन वीरभद्रने भी स्वयं हजारों गुडोंको उत्पन्न कर डाला, जो विनतापुत्र गुडसे भी अधिक बलशाली थे, वे सभी गुडके ऊपर टूट पड़े । उन (वीरभद्राद्वारा उत्पन्न) गुडोंको देखकर बुद्धिमान् वे गुड विष्णुको छोड़कर बड़े ही वेगसे भाग उठे, यह एक आश्चर्यकी बात थी । विनताके पुत्र गुडके अन्तर्धान हो जानेपर कमलसे उत्पन्न भगवान् ब्रह्माने वहाँ उपस्थित होकर वीरभद्र तथा केशवको (युद्ध करनेसे) रोका ॥ ६५—६८ ॥

परमेष्ठी ब्रह्माकी महत्ताको समझकर (वीरभद्रने उनकी) स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया । (उस समय) पार्वतीसहित साक्षात् भगवान् शंकर भी वहाँ आये । सभी गणोंसे घिरे हुए पार्वतीसहित उन देवाधिदेव शंकरको देखकर भगवान् ब्रह्मा, दक्ष तथा द्युलोकमें रहनेवाले सभी देवता उनकी (भगवान् शंकरकी) स्तुति करने लगे । दक्षने विशेषरूपसे शंकरकी अर्धाङ्गिनी देवी पार्वतीको हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे प्रसन्न किया । तदनन्तर दयाकी निधि देवी भगवतीने हँसते हुए प्रसन्न-मनसे महेश्वर रुद्रसे यह वचन कहा— ॥ ६९—७२ ॥

आप ही संसारकी सृष्टि करनेवाले तथा आप ही शासन करनेवाले एवं रक्षक हैं । आप भगवान्-को दक्ष तथा देवताओंपर कृपा करनी चाहिये । तदनन्तर जटा धारण करनेवाले नीललोहित भगवान् हरने हँसकर देवताओं तथा प्रचेतापुत्र दक्षसे कहा— ॥ ७३—७४ ॥

देवताओ! आप सभी लोग जायें । मैं आपपर प्रसन्न हूँ । सभी यज्ञोंमें विशेषरूपसे मेरी पूजा करनी चाहिये और मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये ॥ ७५ ॥

त्वं चापि शृणु मे दक्ष वचनं सर्वरक्षणम्।  
त्यक्त्वा लोकैषणामेतां मद्भक्तो भव यत्तः॥ ७६॥

भविष्यसि गणेशानः कल्पान्तेऽनुग्रहान्मम।  
तावत् तिष्ठ ममादेशात् स्वाधिकारेषु निर्वृतः॥ ७७॥  
एवमुक्त्वा स भगवान् सप्तलीकः सहानुगः।  
अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः॥ ७८॥

अन्तर्हिते महादेवे शंकरे पद्मसम्भवः।  
व्याजहार स्वयं दक्षमशेषजगतो हितम्॥ ७९॥

ब्रह्मोवाच

किं तवापगतो मोहः प्रसन्ने वृषभध्वजे।  
यदाचष्ट स्वयं देवः पालयैतदतन्द्रितः॥ ८०॥  
सर्वेषामेव भूतानां हृद्येष वसतीश्वरः।  
पश्यन्त्येनं ब्रह्मभूता विद्वांसो वेदवादिनः॥ ८१॥  
स आत्मा सर्वभूतानां स बीजं परमा गतिः।  
स्तूयते वैदिकैर्मन्त्रैर्देवदेवो महेश्वरः॥ ८२॥  
तमर्चयति यो रुद्रं स्वात्मन्येकं सनातनम्।  
चेतसा भावयुक्तेन स याति परमं पदम्॥ ८३॥  
तस्मादनादिमध्यान्तं विज्ञाय परमेश्वरम्।  
कर्मणा मनसा वाचा समाराधय यत्तः॥ ८४॥  
यत्नात् परिहरेशस्य निन्दामात्मविनाशिनीम्।  
भवन्ति सर्वदोषाय निन्दकस्य क्रिया यतः॥ ८५॥

यस्तवैष महायोगी रक्षको विष्णुरव्ययः।  
स देवदेवो भगवान् महादेवो न संशयः॥ ८६॥

मन्यन्ते ये जगद्योनिं विभिन्नं विष्णुमीश्वरात्।  
मोहादवेदनिष्ठत्वात् ते यान्ति नरकं नराः॥ ८७॥

वेदानुवर्त्तिनो रुद्रं देवं नारायणं तथा।  
एकीभावेन पश्यन्ति मुक्तिभाजो भवन्ति ते॥ ८८॥

यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः।  
इति मत्वा यजेद् देवं स याति परमां गतिम्॥ ८९॥

हे दक्ष! तुम भी सभीकी रक्षा करनेमें समर्थ मेरे वचनको सुनो—तुम ‘मैं ही सबसे श्रेष्ठ हूँ’ इस लोकैषणा (यशकी इच्छा) -का परित्यागकर प्रयत्नपूर्वक मेरे भक्त बनो। इस कल्पके बीत जानेपर मेरी कृपासे तुम गणोंके अधिपति बनोगे। मेरे आदेशसे उस समयतक तुम अपने अधिकारपर शान्तिसे बने रहो॥ ७६-७७॥

ऐसा कहकर वे भगवान् शंकर पत्नी पार्वती तथा अपने अनुचरोंसहित अमित तेजस्वी दक्षके लिये अन्तर्धान (अदृश्य) हो गये। महादेव शंकरके अन्तर्धान हो जानेपर साक्षात् पद्मोद्धर्व ब्रह्माने समस्त संसारके लिये कल्याणकारी वचन कहे—॥ ७८-७९॥

ब्रह्माजीने कहा—(दक्ष!) वृषभध्वज शंकरके प्रसन्न हो जानेपर क्या तुम्हारा मोह दूर हुआ? साक्षात् भगवान् जो तुमसे कहा है, आलस्यरहित होकर उसका पालन करो। ये परमेश्वर सभी प्राणियोंके हृदयमें निवास करते हैं। वेदवादी ब्रह्मस्वरूप विद्वान् लोग इनका दर्शन करते हैं। वे सभी प्राणियोंके आत्मा, वे ही बीजरूप तथा परम गति हैं। वैदिक मन्त्रोंके द्वारा देवदेव महेश्वरकी स्तुति की जाती है। जो उस अद्वितीय सनातन रुद्रकी अपनी आत्मामें श्रद्धायुक्त मनसे आराधना करता है, वह परमपद अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है। इसलिये आदि, मध्य और अन्तसे रहित परमेश्वरको जानकर मन, वाणी तथा कर्मसे प्रयत्नपूर्वक उनकी आराधना करो॥ ८०-८४॥

अपना ही विनाश कर डालनेवाली शंकरकी निन्दा करना प्रयत्नपूर्वक छोड़ दो, क्योंकि (भगवान् शंकरकी) निन्दा करनेवालेकी सारी क्रियाएँ दोषयुक्त ही होती हैं। जो आपके ये अव्यय तथा महायोगी विष्णु रक्षक हैं, वे भी देवताओंके देव भगवान् महादेव ही हैं, इसमें कोई संशय नहीं। जो अज्ञानसे तथा वेदमें निष्ठा न रखनेके कारण संसारके मूल कारण भगवान् विष्णुको शंकरसे पृथक् मानते हैं, वे मनुष्य नरकमें जाते हैं। वेदमार्गिका अनुवर्तन करनेवाले लोग रुद्रदेव तथा नारायणको एकीभावसे देखते हैं, अतः वे मुक्तिपदके भागी होते हैं॥ ८५-८८॥

जो विष्णु हैं वे ही साक्षात् रुद्र हैं और जो रुद्र हैं, वे ही जनार्दन विष्णु हैं—इस प्रकार समझकर जो देवका पूजन करता है, वह परमगतिको प्राप्त करता है॥ ८९॥

सृजत्येतजगत् सर्वं विष्णुस्तत् पश्यतीश्वरः ।  
इत्थं जगत् सर्वमिदं रुद्रनारायणोद्भवम् ॥ १० ॥

तस्मात् त्यक्त्वा हरेर्निन्दां विष्णावपि समाहितः ।  
समाश्रयेन्महादेवं शरणं ब्रह्मवादिनाम् ॥ ११ ॥

उपश्रुत्याथ वचनं विरिञ्छस्य प्रजापतिः ।  
जगाम शरणं देवं गोपतिं कृत्तिवाससम् ॥ १२ ॥  
येऽन्ये शापाग्निर्निर्दग्धा दधीचस्य महर्षयः ।  
द्विषन्तो मोहिता देवं सम्बभूतुः कलिष्वथ ॥ १३ ॥

त्यक्त्वा तपोबलं कृत्स्नं विप्राणां कुलसम्भवाः ।  
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मणो वचनादिह ॥ १४ ॥  
मुक्तशापास्ततः सर्वे कल्पान्ते रौरवादिषु ।  
निपात्यमानाः कालेन सम्प्राप्यादित्यवर्चसम् ।  
ब्रह्मणं जगतामीशमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा ॥ १५ ॥

समाराध्य तपोयोगादीशानं त्रिदशाधिपम् ।  
भविष्यन्ति यथा पूर्वं शंकरस्य प्रसादतः ॥ १६ ॥

एतद् वः कथितं सर्वं दक्षयज्ञनिषूदनम् ।  
शृणुष्व दक्षपुत्रीणां सर्वासां चैव संततिम् ॥ १७ ॥

विष्णु इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं और शंकर उसकी देख-रेख करते हैं। इस प्रकार यह सारा संसार रुद्र और नारायणद्वारा ही उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

इसलिये भगवान् शंकरकी निन्दाका परित्याग कर और विष्णुमें भी ध्यान लगाकर ब्रह्मवादियोंके एकमात्र शरण्य महादेवका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार ब्रह्माके वचन सुनकर प्रजापति दक्ष चर्माभ्वर धारण करनेवाले देव पशुपतिकी शरणमें गये। और जो दूसरे महर्षि दधीचके शापरूपी अग्निसे दग्ध हो गये थे तथा मोहवश शंकरसे द्वेष करनेवाले थे, वे पूर्वजन्मके संस्कारोंके माहात्म्य तथा ब्रह्माके वचनसे सम्पूर्ण तपोबलका त्याग करके कलियुगमें ब्राह्मणोंके कुलमें उत्पन्न होंगे ॥ ११—१४ ॥

रौरव आदि नरकोंमें डाले गये वे सभी (शंकरसे विद्वेष करनेवाले) कल्पान्तमें यथासमय स्वयम्भूकी आज्ञासे आदित्यके समान तेजोमय जगत्के स्वामी ब्रह्मको प्राप्तकर शापसे मुक्त हो जायेंगे और तपोयोगद्वारा देवताओंके स्वामी शंकरकी आराधना कर और उनकी कृपासे पुनः जैसे पहले थे वैसे ही (विप्रर्षि) हो जायेंगे ॥ १५—१६ ॥

प्रसंगवश (मैंने) यह सब दक्ष-यज्ञके विध्वंसकी कथा आप लोगोंसे कही। अब आप लोग प्रजापति दक्षकी सभी कन्याओंकी संतान-परम्पराका वर्णन सुनें ॥ १७ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्राणां संहितायां पूर्वविभागे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४ ॥



## पंद्रहवाँ अध्याय

दक्ष-कन्याओंकी संतति, नृसिंहावतार, हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्ष-वधका वर्णन, पृथ्वीका उद्घार, प्रह्लाद-चरित, गौतमद्वारा दारुवननिवासी मुनियोंको शाप, अन्धकके साथ महादेवका युद्ध एवं महादेवद्वारा अपने स्वरूपका उपदेश, अन्धकद्वारा महादेवकी स्तुति तथा महादेव (शंकर)-द्वारा अन्धकको गाणपत्य-पदकी प्राप्ति, अन्धक-द्वारा देवीकी स्तुति और देवीद्वारा अन्धकको पुत्ररूपमें ग्रहण करना तथा विष्णुद्वारा उत्पन्न माताओंसे अपनी तीनों मूर्तियोंका प्रतिपादन

सूत उवाच

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्व दक्षः स्वयम्भुवा ।  
ससर्ज देवान् गन्धर्वान् ऋषीश्चैवासुरोरगान् ॥ १ ॥  
यदास्य सृजमानस्य न व्यवर्धन्त ताः प्रजाः ।  
तदा ससर्ज भूतानि मैथुनेनैव धर्मतः ॥ २ ॥  
असिक्न्यां जनयामास वीरणस्य प्रजापतेः ।  
सुतायां धर्मयुक्तायां पुत्राणां तु सहस्रकम् ॥ ३ ॥  
तेषु पुत्रेषु नष्टेषु मायया नारदस्य सः ।  
षष्ठिं दक्षोऽसृजत् कन्या वैरण्यां वै प्रजापतिः ॥ ४ ॥  
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।  
विंशत् सप्त च सोमाय चतुर्स्रोऽरिष्टनेमिने ॥ ५ ॥

द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते ।  
द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत् तासां वक्ष्येऽथ विस्तरम् ॥ ६ ॥  
अरुन्धती वसुर्जामी लम्बा भानुर्मूलत्वती ।  
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी ॥ ७ ॥  
धर्मपत्यो दश त्वेतास्तासां पुत्रान् निबोधत ।  
विश्वाया विश्वदेवास्तु साध्या साध्यानजीजनत् ॥ ८ ॥

मरुत्वन्तो मरुत्वत्यां वसवोऽष्टौ वसोः सुताः ।  
भानोस्तु भानवश्चैव मुहूर्ता वै मुहूर्तजाः ॥ ९ ॥

लम्बायाश्वाथ घोषो वै नागवीथी तु जामिजा ।  
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यामजायत ।  
संकल्पायास्तु संकल्पो धर्मपुत्रा दश स्मृताः ॥ १० ॥  
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः ।  
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥  
आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः श्रान्तो धुनिस्तथा ।  
धूवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकालनः ॥ १२ ॥

**सूतजी बोले—**पूर्वकालमें ‘प्रजाकी सृष्टि करो’ इस प्रकारकी स्वयम्भू—ब्रह्माकी आज्ञा प्राप्तकर दक्षने देवताओं, गन्धर्वों, ऋषियों, असुरों तथा नागोंकी सृष्टि की । जब सृष्टि करनेवाले उन दक्षकी वे प्रजाएँ नहीं बढ़ीं, तब उन्होंने मर्यादापूर्वक मिथुन-धर्म (स्त्री-पुरुष-संयोग)-से प्राणियोंकी सृष्टि की । उन्होंने वीरण प्रजापतिकी धर्मपरायणा असिक्नी नामकी कन्यासे एक हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया । देवर्षि नारदकी मायासे उन पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर पुनः उन दक्ष प्रजापतिने वीरणकी पुत्री असिक्नीसे ही साठ कन्याओंको उत्पन्न किया ॥ १—४ ॥

(उन साठ कन्याओंमेंसे) उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो बहुपुत्रको, दो बुद्धिमान् कृशाश्वको और इसी प्रकार दो कन्याएँ अंगिराको प्रदान कीं । अब मैं उनके वंश-विस्तारका वर्णन करूँगा ॥ ५—६ ॥

अरुन्धती, वसु, जामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या तथा भामिनी विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ हैं । इनके पुत्रोंके नाम सुनो । विश्वाके विश्वेदेव हुए और साध्याने साध्य नामवाले पुत्रोंको जन्म दिया । मरुत्वतीसे मरुदण्ड हुए और वसुसे वसु नामक आठ पुत्र हुए । भानुसे भानुओं और मुहूर्तासे मुहूर्तोंकी उत्पत्ति हुई । लम्बासे घोष और जामिसे नागवीथी नामक पुत्र उत्पन्न हुए । अरुन्धतीसे सम्पूर्ण पृथ्वीसे सम्बद्ध प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई और संकल्पासे संकल्प नामक पुत्र उत्पन्न हुए । इस प्रकार धर्मके (ये) दस पुत्र कहे गये हैं ॥ ७—१० ॥

आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास—ये अष्ट वसु कहे गये हैं । आपके वैतण्ड्य, श्रम, श्रान्त तथा धुनि नामक पुत्र हुए और ध्रुवके पुत्र संसारके संहारक भगवान् काल हैं ॥ ११—१२ ॥

सोमस्य भगवान् वर्चा धरस्य द्रविणः सुतः ।  
पुरोजबोऽनिलस्य स्यादविज्ञातगतिस्तथा ॥ १३ ॥

कुमारो ह्यनलस्यासीत् सेनापतिरिति स्मृतः ।  
देवलो भगवान् योगी प्रत्यूषस्याभवत् सुतः ।  
विश्वकर्मा प्रभासस्य शिल्पकर्ता प्रजापतिः ॥ १४ ॥

अदितिर्दितिर्दिनुस्तद्वदरिष्टा सुरसा तथा ।  
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा ।  
कद्गुर्मुनिश्च धर्मज्ञा तत्पुत्रान् वै निबोधत ॥ १५ ॥

अंशो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा ।  
विवस्वान् सविता पूषा ह्यंशुमान् विष्णुरेव च ॥ १६ ॥

तुषिता नाम ते पूर्वं चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।  
वैवस्वतेऽन्तरे प्रोक्ता आदित्याश्वादितेः सुताः ॥ १७ ॥

दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपाद् बलसंयुतम् ।  
हिरण्यकशिपुं ज्येष्ठं हिरण्याक्षं तथापरम् ॥ १८ ॥

हिरण्यकशिपुदैत्यो महाबलपराक्रमः ।  
आराध्य तपसा देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।  
दृष्टा लेभे वरान् दिव्यान् स्तुत्वासौ विविधैः स्तवैः ॥ १९ ॥

अथ तस्य बलाद् देवाः सर्व एव सुरर्थयः ।  
बाधितास्ताडिता जग्मुर्देवदेवं पितामहम् ॥ २० ॥

शारण्यं शारणं देवं शम्भुं सर्वजगन्मयम् ।  
ब्रह्माणं लोककर्तारं त्रातारं पुरुषं परम् ।  
कूटस्थं जगतामेकं पुराणं पुरुषोत्तमम् ॥ २१ ॥

स याचितो देववर्मुनिभिश्च मुनीश्वराः ।  
सर्वदेवहितार्थाय जगाम कमलासनः ॥ २२ ॥

संस्तूयमानः प्रणतैर्मुनीन्द्रैरमरैरपि ।  
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं यत्रास्ते हरिरीश्वरः ॥ २३ ॥

दृष्टा देवं जगद्योनिं विष्णुं विश्वगुरुं शिवम् ।  
ववन्दे चरणौ मूर्धा कृताञ्जलिरभाषत ॥ २४ ॥

ब्रह्मोवाच

त्वं गतिः सर्वभूतानामनन्तोऽस्यखिलात्मकः ।  
व्यापी सर्वामरवपुर्महायोगी सनातनः ॥ २५ ॥

भगवान् वर्चा सोमके पुत्र हैं और धरके द्रविण नामक पुत्र हैं। अनिलके पुरोजब तथा अविज्ञातगति नाम-वाले पुत्र हैं। अतुलके पुत्र कुमार हैं जो 'सेनापति' नामसे कहे जाते हैं। प्रत्यूष (नामक वसु)-के महायोगी भगवान् देवल नामक पुत्र हुए। इसी प्रकार प्रभासके प्रजापति विश्वकर्मा नामक पुत्र हैं जो शिल्पकारी हैं ॥ १३-१४ ॥

अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्गु, मुनि तथा धर्मज्ञा—(दक्षकी ये तेरह कन्याएँ कश्यपकी पत्नियाँ हैं) उनके पुत्रोंके विषयमें सुनो— ॥ १५ ॥

अंश, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् तथा विष्णु—ये सभी पूर्वकालमें चाक्षुष मन्वन्तरमें तुषित नामक देवता थे और वैवस्वत मन्वन्तरमें ये ही अदितिके पुत्र (बारह) आदित्य कहे गये हैं। दितिने कश्यपसे बलवान् दो पुत्रोंको प्राप्त किया। उनमें हिरण्यकशिपु बड़ा था, उसका अनुज हिरण्याक्ष था। दैत्य हिरण्यकशिपु महाबलशाली और पराक्रमी था। उसने तपस्याद्वारा परमेष्ठी ब्रह्माकी आराधनाकर उनका दर्शन किया तथा विविध स्तोत्रोद्वारा उनकी स्तुतिकर दिव्य वरोंको प्राप्त किया। उसके पराक्रमसे पीड़ित एवं ताडित सभी देवता एवं देवर्षिगण शरण ग्रहण करने योग्य, आश्रयस्वरूप, सर्वजगन्मय, शम्भु देवस्वरूप त्राता, लोककर्ता, परमपुरुष, कूटस्थ, जगत्के एकमात्र पुराण पुरुष पुरुषोत्तम देवोंके देव पितामह ब्रह्माकी शरणमें गये ॥ १६—२१ ॥

मुनीश्वरो! श्रेष्ठ देवताओं तथा मुनियोंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर सभी देवताओंके कल्याण करनेकी इच्छासे कमलके आसनवाले ब्रह्मा क्षीरसागरके उत्तरी तटपर गये, जहाँ विनीत मुनीन्द्रों तथा देवताओंके द्वारा स्तुति किये जाते हुए हरि ईश्वर निवास करते हैं। जगत्के मूल कारण, विश्वके गुरु, कल्याणमय, विष्णुदेवका दर्शन करके उन्होंने मस्तक झुकाकर चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर (इस प्रकार) कहा— ॥ २२—२४ ॥

ब्रह्माने कहा—(भगवन्!) आप सभी प्राणियोंकी गति हैं, अनन्त हैं और इस सम्पूर्ण विश्वके आत्मस्वरूप हैं। आप सर्वत्र व्याप्त, सभी देवताओंके शरीररूप, महायोगी तथा सनातन हैं ॥ २५ ॥

त्वमात्मा सर्वभूतानां प्रधानं प्रकृतिः परा ।  
वैराग्यैश्वर्यनिरतो रागातीतो निरञ्जनः ॥ २६ ॥

त्वं कर्ता चैव भर्ता च निहन्ता सुरविद्विषाम् ।  
त्रातुर्महस्यनन्तेश त्राता हि परमेश्वरः ॥ २७ ॥  
इत्थं स विष्णुर्भगवान् ब्रह्मणा सम्प्रबोधितः ।  
प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षः पीतवासासुरद्विषः ॥ २८ ॥

किमर्थं सुमहावीर्याः सप्रजापतिकाः सुराः ।  
इमं देशमनुप्राप्ताः किं वा कार्यं करोमि वः ॥ २९ ॥

देवा ऊचुः

हिरण्यकशिपुर्नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः ।  
बाधते भगवन् दैत्यो देवान् सर्वान् सहर्षिभिः ॥ ३० ॥

अवध्यः सर्वभूतानां त्वामृते पुरुषोत्तम ।  
हन्तुर्महसि सर्वेषां त्वं त्रातासि जगन्मय ॥ ३१ ॥

श्रुत्वा तदैवतैरुक्तं स विष्णुलोकभावनः ।  
वधाय दैत्यमुख्यस्य सोऽसृजत् पुरुषं स्वयम् ॥ ३२ ॥

मेरुपर्वतवर्षाणां घोररूपं भयानकम् ।  
शङ्खचक्रगदापाणिं तं प्राह गरुडध्वजः ॥ ३३ ॥  
हत्वा तं दैत्यराजं त्वं हिरण्यकशिपुं पुनः ।  
इमं देशं समागन्तुं क्षिप्रमहसि पौरुषात् ॥ ३४ ॥  
निशम्य वैष्णवं वाक्यं प्रणाम्य पुरुषोत्तमम् ।  
महापुरुषमव्यक्तं यथौ दैत्यमहापुरुम् ॥ ३५ ॥  
विमुञ्जन् भैरवं नादं शङ्खचक्रगदाधरः ।  
आरुह्य गरुडं देवो महामेरुरिवापरः ॥ ३६ ॥  
आकर्ण्य दैत्यप्रवरा महामेरुरवोपमम् ।  
समाच्चक्षिरे नादं तदा दैत्यपतेर्भयात् ॥ ३७ ॥

असुरा ऊचुः

कश्चिदागच्छति महान् पुरुषो देवचोदितः ।  
विमुञ्जन् भैरवं नादं तं जानीमोऽमरादन ॥ ३८ ॥  
ततः सहासुरवैर्हिरण्यकशिपुः स्वयम् ।  
संनद्दैः सायुधैः पुत्रैः प्रह्लादाद्यैस्तदा यथौ ॥ ३९ ॥  
दृष्टा तं गरुडासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।  
पुरुषं पर्वताकारं नारायणमिवापरम् ॥ ४० ॥

आप सभी प्राणियोंकी आत्मा, प्रधान और परा प्रकृति हैं। आप वैराग्य और ऐश्वर्यमें निरत, रागातीत तथा निरञ्जन हैं। आप ही कर्ता-भर्ता तथा देवताओंसे द्वेष रखनेवालोंके संहर्ता हैं। अनन्तेश ! आप ही रक्षा करनेवाले परमेश्वर हैं, आप रक्षा करें ॥ २६-२७ ॥

ब्रह्माके द्वारा इस प्रकार भलीभाँति प्रबुद्ध किये जानेपर विकसित कमलके समान नेत्रवाले, पीत वस्त्र धारण करनेवाले तथा असुरोंके द्वेषी भगवान् विष्णु बोले—अत्यन्त वीर्यशाली देवताओ ! आपलोग प्रजापतियोंके साथ इस स्थानपर किस कारणसे आये हैं अथवा मैं आप लोगोंका कौन-सा कार्य करूँ ? ॥ २८-२९ ॥

देवता बोले—भगवन् ! ब्रह्माके द्वारा प्राप्त वरदानके कारण घमंडसे भरा हुआ हिरण्यकशिपु नामका दैत्य ऋषियोंसहित सभी देवताओंको पीड़ित कर रहा है। हे पुरुषोत्तम ! आपको छोड़कर अन्य सभी प्राणियोंसे वह अवध्य है। जगन्मय ! आप उसे मारनेमें समर्थ हैं, आप ही सभीके रक्षक हैं। देवताओंके द्वारा कही गयी उस बातको सुनकर संसारके रक्षक विष्णुने दैत्यप्रमुख उस हिरण्यकशिपुके वधके लिये स्वयं एक पुरुषको उत्पन्न किया। सुमेरु पर्वतके समान शरीरवाले, घोर रूपवाले, भयानक एवं हाथमें शंख, चक्र, गदा धारण करनेवाले उस पुरुषसे गरुडध्वज (विष्णु)-ने कहा ॥ ३०—३३ ॥

तुम (अपने) पराक्रमसे उस दैत्यराज हिरण्यकशिपुको मारकर पुनः इस स्थानपर शीघ्र ही वापस लौट आओ। विष्णुका वचन सुनकर शंख, चक्र, गदाधारी वह दूसरे महामेरुके समान देव गरुडपर आरूढ़ होकर भीषण नाद करते हुए अव्यक्त, महापुरुष पुरुषोत्तमको प्रणामकर (हिरण्यकशिपु) दैत्यके महानगरकी ओर गया। महामेधकी गर्जनाके समान नादको सुनकर बड़े-बड़े दैत्योंने दैत्यराजसे (हिरण्यकशिपुसे) भयपूर्वक कहा— ॥ ३४—३७ ॥

दैत्योंने कहा—देवताओंका विनाश करनेवाले दैत्यराज ! देवताओंकी प्रेरणा प्राप्त कर कोई महान् पुरुष भीषण नाद करता हुआ आ रहा है, हमें उसे जाना चाहिये। तदनन्तर मुख्य-मुख्य असुरों तथा आयुधोंसे सुसज्जित प्रह्लाद आदि पुत्रोंके साथ हिरण्यकशिपु स्वयं वहाँ गया। करोड़ों सूर्यके समान प्रभावाले तथा दूसरे नारायणके समान पर्वताकार गरुडपर बैठे हुए उस

दुहुवुः केचिदन्योन्यमूचुः सम्भ्रान्तलोचनाः ।  
अयं स देवो देवानां गोपा नारायणो रिपुः ॥ ४१ ॥

अस्माकमव्ययो नूनं तत्सुतो वा समागतः ।  
इत्युक्त्वा शस्त्रवर्षाणि समृजुः पुरुषाय ते ।  
तानि चाशेषतो देवो नाशयामास लीलया ॥ ४२ ॥  
तदा हिरण्यकशिपोश्चत्वारः प्रथितौजसः ।  
पुत्रा नारायणोद्भूतं युयुधुर्मेघनिःस्वनाः ।  
प्रहादश्चाप्यनुहादः संहादो हाद एव च ॥ ४३ ॥

प्रहादः प्राहिणोद ब्राह्मनुहादोऽथ वैष्णवम् ।  
संहादश्चापि कौमारमार्नेयं हाद एव च ॥ ४४ ॥  
तानि तं पुरुषं प्राप्य चत्वार्यस्त्राणि वैष्णवम् ।  
न शेकुर्बाधितुं विष्णुं वासुदेवं यथा तथा ॥ ४५ ॥

अथासौ चतुरः पुत्रान् महाबाहुर्महाबलः ।  
प्रगृह्य पादेषु करैः संचिक्षेप ननाद च ॥ ४६ ॥

विमुक्तेष्वथ पुत्रेषु हिरण्यकशिपुः स्वयम् ।  
पादेन ताडयामास वेगेनोरसि तं बली ॥ ४७ ॥

स तेन पीडितोऽत्यर्थं गरुडेन तथाशुगः ।  
अदृश्यः प्रययौ तूर्णं यत्र नारायणः प्रभुः ।  
गत्वा विज्ञापयामास प्रवृत्तमखिलं तथा ॥ ४८ ॥  
संचिन्त्य मनसा देवः सर्वज्ञानमयोऽमलः ।  
नरस्यार्थतनुं कृत्वा सिंहस्यार्थतनुं तथा ॥ ४९ ॥

नृसिंहवपुरव्यक्तो हिरण्यकशिपोः पुरे ।  
आविर्बन्धूव सहसा मोहयन् दैत्यपुङ्गवान् ॥ ५० ॥

दंष्ट्राकरालो योगात्मा युगान्तदहनोपमः ।  
समारुहात्मनः शक्तिं सर्वसंहारकारिकाम् ।  
भाति नारायणोऽनन्तो यथा मध्यंदिने रविः ॥ ५१ ॥

दृष्ट्वा नृसिंहवपुषं प्रहादं ज्येष्ठपुत्रकम् ।  
वधाय प्रेरयामास नरसिंहस्य सोऽसुरः ॥ ५२ ॥

इमं नृसिंहवपुषं पूर्वस्माद् बहुशक्तिकम् ।  
सहैव त्वनुजैः सर्वैर्नाशयाशु मयेरितः ॥ ५३ ॥

पुरुषको देखकर कोई तो भाग गये और कोई भ्रान्त-दृष्टि होकर आपसमें कहने लगे—‘यह निश्चित ही हमारा शत्रु और देवताओंका रक्षक वही अव्यय नारायण देव है अथवा उसका पुत्र ही यह आया है।’ ऐसा कहकर वे उस पुरुषपर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, किंतु उस देवने लीलासे ही उन सभी शस्त्रोंको नष्ट कर डाला ॥ ३८—४२ ॥

तदनन्तर अतितेजस्वी तथा मेघके समान गर्जना करनेवाले प्रहाद, अनुहाद, संहाद तथा हाद नामक हिरण्यकशिपुके चार पुत्र नारायणसे उत्पन्न उस पुरुषसे युद्ध करने लगे। प्रहादने ब्रह्मास्त्र, अनुहादने वैष्णवास्त्र, संहादने कौमारास्त्र तथा हादने आग्रेयास्त्रका प्रयोग किया ॥ ४३—४४ ॥

वे चारों अस्त्र उस वैष्णव पुरुषके पास पहुँचकर उन वासुदेव विष्णुको किसी भी प्रकार बाँधनेमें समर्थ न हो सके। तदनन्तर महाबाहु महाबलशाली उस पुरुषने उन चारों पुत्रोंके पैरोंको अपने हाथसे पकड़कर उन्हें फेंक दिया और गर्जना की। इस प्रकार पुत्रोंके फेंक दिये जानेपर बलवान् स्वयं हिरण्यकशिपुने पैरद्वारा बड़े ही वेगसे उस (पुरुष)-की छातीपर प्रहार किया। उस प्रहारसे पीड़ित होकर वह पुरुष गरुडपर चढ़कर अदृश्य हो गया तथा शीघ्र ही वहाँ गया जहाँ प्रभु नारायण स्थित थे। वहाँ जाकर उसने सम्पूर्ण घटित वृत्तान्त उन्हें बतला दिया ॥ ४५—४८ ॥

तब सर्वज्ञानमय विमल देवने मनमें विचारकर आधा शरीर मनुष्यका एवं आधा शरीर सिंहका बनाया। नरसिंह-शरीर धारण करनेवाले अव्यक्त देव दैत्य-समूहोंको मोहित करते हुए अकस्मात् हिरण्यकशिपुके नगरमें प्रकट हो गये। भयंकर दाढ़ोंवाले योगात्मा तथा प्रलयाग्निके समान अनन्त नारायण अपनी सर्वसंहारकारिणी शक्तिपर आरूढ़ होकर उसी प्रकार प्रकाशित हो रहे थे जैसे मध्याह्नकालीन सूर्य प्रकाशमान होता है। नरसिंहका शरीर धारण किये उन्हें देखकर उस असुरने अपने बड़े लड़के प्रहादको नरसिंहके वधके लिये प्रेरित किया और कहा— ॥ ५९—५२ ॥

अपने सभी छोटे भाइयोंके साथ तुम पहलेसे अधिक शक्तिवाले इस नरसिंह-शरीरधारी पुरुषको मेरी प्रेरणासे शीघ्र ही मार डालो ॥ ५३ ॥

तत्संनियोगादसुरः प्रह्लादो विष्णुमव्ययम् ।  
युयुधे सर्वयत्नेन नरसिंहेन निर्जितः ॥ ५४ ॥

ततः संचोदितो दैत्यो हिरण्याक्षस्तदानुजः ।  
ध्यात्वा पशुपतेरस्त्रं ससर्ज च ननाद च ॥ ५५ ॥

तस्य देवादिदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ।  
न हानिमकरोदस्त्रं यथा देवस्य शूलिनः ॥ ५६ ॥  
दृष्ट्वा पराहतं त्वस्त्रं प्रह्लादो भाग्यगौरवात् ।  
मेने सर्वात्मकं देवं वासुदेवं सनातनम् ॥ ५७ ॥

संत्यज्य सर्वशस्त्राणि सत्त्वयुक्तेन चेतसा ।  
ननाम शिरसा देवं योगिनां हृदयेशयम् ॥ ५८ ॥

स्तुत्वा नारायणैः स्तोत्रैः ऋग्यजुःसामसभ्वैः ।  
निवार्य पितरं भ्रातृन् हिरण्याक्षं तदाब्रवीत् ॥ ५९ ॥  
अयं नारायणोऽनन्तः शाश्वतो भगवानजः ।  
पुराणपुरुषो देवो महायोगी जगन्मयः ॥ ६० ॥  
अयं धाता विधाता च स्वयंज्योतिर्निरञ्जनः ।  
प्रधानपुरुषस्तत्त्वं मूलप्रकृतिरव्ययः ॥ ६१ ॥  
ईश्वरः सर्वभूतानामन्तर्यामी गुणातिगः ।  
गच्छध्वमेनं शरणं विष्णुमव्यक्तमव्ययम् ॥ ६२ ॥  
एवमुक्ते सुदुर्बुद्धिर्हिरण्यकशिपुः स्वयम् ।  
प्रोवाच पुत्रमत्यर्थं मोहितो विष्णुमायया ॥ ६३ ॥

अयं सर्वात्मना वध्यो नृसिंहोऽल्पपराक्रमः ।  
समागतोऽस्मद्द्वन्मिदानीं कालचोदितः ॥ ६४ ॥  
विहस्य पितरं पुत्रो वचः प्राह महामतिः ।  
मा निन्दस्वैनमीशानं भूतानामेकमव्ययम् ॥ ६५ ॥

कथं देवो महादेवः शाश्वतः कालवर्जितः ।  
कालेन हन्ते विष्णुः कालात्मा कालरूपधृक् ॥ ६६ ॥

ततः सुवर्णकशिपुर्दुरात्मा विधिचोदितः ।  
निवारितोऽपि पुत्रेण युयोध हरिमव्ययम् ॥ ६७ ॥  
संरक्तनयनोऽनन्तो हिरण्यनयनाग्रजम् ।  
नखैर्विदारयामास प्रह्लादस्यैव पश्यतः ॥ ६८ ॥

उसकी आज्ञा पाकर असुर प्रह्लादने सभी प्रकारे प्रयत्नोंके द्वारा अव्यय विष्णुके साथ युद्ध किया, किंतु वह नरसिंहद्वारा पराजित हो गया । तदनन्तर उस (हिरण्यकशिपु)-की आज्ञा प्राप्तकर उसके छोटे भाई हिरण्याक्षने पाशुपतस्त्रका ध्यान करके उसे चलाया और गर्जना की । वह अस्त्र देवाधिदेव अमित तेजस्वी उन विष्णुकी, कोई हानि न कर सका जैसे कोई अस्त्र त्रिशूलधारी देव (शंकर)-की हानि नहीं करता ॥ ५४—५६ ॥

अस्त्रको विफल होते देखकर भाग्यशाली होनेके कारण प्रह्लादने उन देवको सर्वात्मक सनातन वासुदेव ही समझा । उसने सभी शस्त्रोंका परित्याग कर दिया और सत्त्वगुणसम्पन्न चित्तसे योगियोंके हृदयमें निवास करनेवाले देवको सिरसे प्रणाम किया तथा ऋक्, यजुष् तथा सामवेदमें प्राप्त वैष्णव स्तुतियोंके द्वारा स्तुतिकर अपने पिता (हिरण्यकशिपु), भाइयों एवं हिरण्याक्षको युद्ध करनेसे रोकते हुए इस प्रकार कहा— ॥ ५७—५९ ॥

ये अनन्त, सनातन, अजन्मा, महायोगी, जगन्मय पुराणपुरुष भगवान् नारायण देव हैं । ये धाता, विधाता, स्वयंज्योति, निरञ्जन, प्रधानपुरुषरूप, तत्त्व, मूलप्रकृति, अव्यय, ईश्वर, सभी प्राणियोंके अन्तर्यामी तथा गुणातीत हैं । इन अव्यक्त, अव्यय विष्णुकी आप लोग शरण ग्रहण करें ॥ ६०—६२ ॥

(प्रह्लादके) इस प्रकार कहनेपर विष्णुकी मायासे अत्यन्त मोहित दुर्बुद्धि हिरण्यकशिपुने स्वयं पुत्रसे कहा—यह थोड़े पराक्रमवाला नरसिंह सभी प्रकारसे वध करने योग्य है । कालके द्वारा प्रेरित होकर इस समय यह हमारे घरमें ही आ गया है ॥ ६३—६४ ॥

पिताका वचन सुनकर महामति प्रह्लादने हँसकर कहा—प्राणियोंके एकमात्र स्वामी इन अव्ययकी निन्दा मत करो । सनातन, कालवर्जित, कालात्मा, कालका रूप धारण करनेवाले, महादेव विष्णु देवको काल कैसे मार सकता है । तदनन्तर भाग्यसे प्रेरित हिरण्यकशिपु पुत्रके द्वारा रोके जानेपर भी अव्यय हरिसे लड़ने लगा । (क्रोधसे) अत्यन्त लाल नेत्रोंवाले अनन्त विष्णुने प्रह्लादके देखते-ही-देखते हिरण्य (स्वर्ण)-के समान नयन हैं जिसके, उस हिरण्यनयन (हिरण्याक्ष)-के बड़े भाई हिरण्यकशिपुको अपने नखोंद्वारा विदीर्ण कर डाला ॥ ६५—६८ ॥

हते हिरण्यकशिपौ हिरण्याक्षो महाबलः ।  
विसृज्य पुत्रं प्रहादं दुदुवे भयविह्वलः ॥ ६९ ॥

अनुहादादयः पुत्रा अन्ये च शतशोऽसुराः ।  
नृसिंहदेहसम्भूतैः सिंहर्नीता यमालयम् ॥ ७० ॥

ततः संहत्य तद्वपं हरिनारायणः प्रभुः ।  
स्वमेव परमं रूपं ययौ नारायणाह्वयम् ॥ ७१ ॥  
गते नारायणे दैत्यः प्रहादोऽसुरसत्तमः ।  
अभिषेकेण युक्तेन हिरण्याक्षमयोजयत् ॥ ७२ ॥

स बाधयामास सुरान् रणे जित्वा मुनीनपि ।  
लब्ध्वान्धकं महापुत्रं तपसाराध्य शंकरम् ॥ ७३ ॥

देवाज्जित्वा सदेवेन्द्रान् बध्वा च धरणीमिमाम् ।  
नीत्वा रसातलं चक्रे वन्दीमिन्दीवरप्रभाम् ॥ ७४ ॥

ततः सब्रह्मका देवाः परिम्लानमुखश्रियः ।  
गत्वा विज्ञापयामासुर्विष्णवे हरिमन्दिरम् ॥ ७५ ॥  
स चिन्तयित्वा विश्वात्मा तद्वधोपायमव्ययः ।  
सर्वदेवमयं शुभ्रं वाराहं वपुरादधे ॥ ७६ ॥

गत्वा हिरण्यनयनं हत्वा तं पुरुषोत्तमः ।  
दंष्ट्रयोद्घारयामास कल्पादौ धरणीमिमाम् ॥ ७७ ॥

त्यक्त्वा वराहसंस्थानं संस्थाप्य च सुरद्विजान् ।  
स्वमेव प्रकृतिं दिव्यां ययौ विष्णुः परं पदम् ॥ ७८ ॥  
तस्मिन् हतेऽमररिपौ प्रहादो विष्णुतत्परः ।  
अपालयत् स्वकं राज्यं भावं त्यक्त्वा तदासुरम् ॥ ७९ ॥

इयाज विधिवद् देवान् विष्णोराराधने रतः ।  
निःसपलं तदा राज्यं तस्यासीद् विष्णुवैभवात् ॥ ८० ॥

ततः कदाचिदसुरो ब्राह्मणं गृहमागतम् ।  
तापसं नार्चयामास देवानां चैव मायथा ॥ ८१ ॥

हिरण्यकशिपुके मार दिये जानेपर भयसे विह्वल महाबली हिरण्याक्ष पुत्र प्रहादको छोड़कर भाग चला । नरसिंहकी देहसे उत्पन्न सिंहोंने (हिरण्यकशिपुके) अनुहाद आदि पुत्रों तथा अन्य सैकड़ों असुरोंको यमलोक पहुँचा दिया । तदनन्तर प्रभु नारायण हरिने उस (नरसिंह) रूपको समेटकर अपने ही नारायण नामवाले श्रेष्ठ रूपको धारण कर लिया तथा अपने धामके लिये प्रस्थान किया ॥ ६९—७१ ॥

नारायणके चले जानेपर असुरश्रेष्ठ दैत्य प्रहादने (अपने चाचा) हिरण्याक्षका यथोचित अभिषेक किया । उस (हिरण्याक्ष)-ने युद्धमें देवताओं और मुनियोंको जीतकर उन्हें पीड़ा पहुँचायी और तपस्याके द्वारा शंकरकी आराधना करके अन्धक नामक श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त किया । उसने देवराज इन्द्रसहित सभी देवताओंको जीत लिया तथा कमलके समान कान्तिवाली इस पृथ्वीको बाँधकर रसातलमें ले जाकर बंदी बना लिया ॥ ७२—७४ ॥

तब मुरझायी हुई मुखकी शोभावाले सभी देवता ब्रह्मासहित हरिके निवासमें गये और उन्हें (सारा वृत्तान्त) बतलाया ॥ ७५ ॥

अव्यय उन विश्वात्माने उस हिरण्याक्षके वधका उपाय सोचते हुए सर्वदेवमय स्वच्छ वराहके शरीरको धारण किया । हिरण्याक्षके समीप जाकर पुरुषोत्तमने उसे मार डाला और कल्पके आदिमें (हिरण्याक्षके द्वारा रसातल ले जायी गयी) इस पृथ्वीका अपने दाढ़ोंद्वारा (उठाकर) उद्धार किया । वराह-रूपका परित्याग कर तथा देवताओं और ब्राह्मणोंको यथास्थान प्रतिष्ठित कर विष्णुने अपने ही दिव्य (चतुर्भुज)-स्वरूपको धारण किया और वे अपने परम पदकी ओर चले गये ॥ ७६—७८ ॥

देवताओंके शत्रु उस (हिरण्याक्ष)-के मारे जानेपर विष्णुपरायण प्रहाद आसुर भावका परित्याग कर अपने राज्यका पालन करने लगा । विष्णुकी आराधनामें निरत रहते हुए उसने विधिपूर्वक देवोंका यज्ञ आदिद्वारा पूजन किया । विष्णुके प्रतापसे उसका राज्य किसी प्रतिद्वन्द्वी (शत्रु) आदिसे रहित था ॥ ७९—८० ॥

एक बारकी बात है—देवताओंकी मायाके वशीभूत असुर प्रहादने घरमें आये हुए तपस्वी ब्राह्मणकी पूजा नहीं की ॥ ८१ ॥

स तेन तापसोऽत्यर्थं मोहितेनावमानितः ।  
शशापासुरराजानं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ८२ ॥

यत्तद्वलं समाश्रित्य ब्राह्मणानवमन्यसे ।  
सा भक्तिवैष्णवी दिव्या विनाशं ते गमिष्यति ॥ ८३ ॥  
इत्युक्त्वा प्रययौ तूर्णं प्रह्रादस्य गृहाद् द्विजः ।  
मुमोह राज्यसंसक्तः सोऽपि शापबलात् ततः ॥ ८४ ॥  
बाधयामास विप्रेन्द्रान् न विवेद जनार्दनम् ।  
पितुर्वर्धमनुस्मृत्य क्रोधं चक्रे हरिं प्रति ॥ ८५ ॥  
तयोः समभवद् युद्धं सुधोरं रोमहर्षणम् ।  
नारायणस्य देवस्य प्रह्रादस्यामरद्विषः ॥ ८६ ॥  
कृत्वा तु सुमहद् युद्धं विष्णुना तेन निर्जितः ।  
पूर्वसंस्कारमाहात्म्यात् परस्मिन् पुरुषे हरौ ।  
संजातं तस्य विज्ञानं शरणं शरणं ययौ ॥ ८७ ॥  
ततः प्रभृति दैत्येन्द्रो ह्यनन्यां भक्तिमुद्भवन् ।  
नारायणे महायोगमवाप पुरुषोत्तमे ॥ ८८ ॥  
हिरण्यकशिपोः पुत्रे योगसंसक्तचेतसि ।  
अवाप तन्महद् राज्यमन्धकोऽसुरपुङ्गवः ॥ ८९ ॥

हिरण्यनेत्रतनयः शम्भोर्देहसमुद्भवः ।  
मन्दरस्थामुमां देवीं चक्रमे पर्वतात्मजाम् ॥ ९० ॥  
पुरा दारुवने पुण्ये मुनयो गृहमेधिनः ।  
ईश्वराराधनार्थाय तपश्चेरुः सहस्रशः ॥ ९१ ॥  
ततः कदाचिन्महती कालयोगेन दुस्तरा ।  
अनावृष्टिरतीवोग्रा ह्यासीद् भूतविनाशिनी ॥ ९२ ॥  
समेत्य सर्वे मुनयो गौतमं तपसां निधिम् ।  
अयाचन्त क्षुधाविष्टा आहारं प्राणधारणम् ॥ ९३ ॥  
स तेभ्यः प्रददावन्नं मृष्टं बहुतरं बुधः ।  
सर्वे बुभुजिरे विग्रा निर्विशङ्केन चेतसा ॥ ९४ ॥

गते तु द्वादशे वर्षे कल्पान्त इव शंकरी ।  
बभूव वृष्टिर्महती यथापूर्वमभूजगत् ॥ ९५ ॥

मायासे अत्यन्त मोहित उस तपस्वी प्रह्रादके द्वारा अपमानित होकर क्रोधसे रक्तनेत्रवाले उस तपस्वी ब्राह्मणने असुरराज (प्रह्राद)-को शाप दे डाला—जिस बलका आश्रय ग्रहणकर तुम ब्राह्मणोंकी अवमानना कर रहे हो, तुम्हारी वह दिव्य वैष्णवी भक्ति विनष्ट हो जायगी ॥ ८२-८३ ॥

ऐसा कहकर वह ब्राह्मण प्रह्रादके घरसे शीघ्र ही निकल पड़ा और प्रह्राद भी शापके प्रभावसे राज्य-संचालनमें लगे रहनेपर भी मोहग्रस्त हो गया । वह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको पीड़ित करने लगा और जनार्दनको भूल-सा गया । पिता (हिरण्यकशिपु)-के वधका स्मरणकर वह हरि (विष्णु)-पर कुद्ध हो गया । तब उन दोनों सुरद्वोही प्रह्राद और नारायणदेवमें अत्यन्त घोर रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ । बड़ा भारी युद्ध करनेके बाद विष्णुने उसे जीत लिया । पहलेके संस्कारके माहात्म्यसे उसे परमपुरुष हरिका वास्तविक ज्ञान उद्धृत हो गया और वह उनकी शरणमें गया । तबसे नारायण पुरुषोत्तममें अनन्य भक्ति रखते हुए उस दैत्येन्द्र प्रह्रादको महायोगकी प्राप्ति हुई ॥ ८४-८८ ॥

हिरण्यकशिपुके पुत्र (प्रह्राद)-का चित्त योगमें आसक्त हो जानेपर शम्भुके देहसे\* उत्पन्न हिरण्याक्षके पुत्र असुर श्रेष्ठ अन्धकने उस विशाल राज्यको प्राप्त किया तथा मन्दर पर्वतपर अवस्थित पर्वत (हिमालय)-की पुत्री उमा देवीको प्राप्त करनेकी इच्छा की ॥ ९९-९० ॥

प्राचीन कालकी बात है, हजारों गृहस्थ मुनि पुण्यदायी दारुवनमें ईश्वरकी आराधना करनेके लिये तप करते थे । तदनन्तर कालयोगसे किसी समय प्राणियोंका विनाश करनेवाली अत्यन्त उग्र तथा भयंकर अनावृष्टि हुई । भूखसे व्याकुल सभी मुनियोंने साथ मिलकर तपोनिधि गौतमसे प्राण धारणके निमित्त भोजनकी याचना की । बुद्धिमान् उन गौतमने उन सभीको अत्यधिक स्वादुयुक्त अन्न प्रदान किया । उन सभी ब्राह्मणोंने निःशंक-मनसे भोजन किया ॥ ९१-९४ ॥

बारह वर्ष व्यतीत हो जानेपर कल्पान्तमें होनेवाली कल्याणकारिणी वृष्टिके सदृश महान् वृष्टि हुई । संसार (पुनः) पहलेके समान हो गया ॥ ९५ ॥

\* शम्भुकी आराधनासे ही हिरण्याक्षको अन्धक (पुत्र)-की प्राप्ति हुई थी ।

ततः सर्वे मुनिवराः समामन्त्र्य परस्परम्।  
महर्षिं गौतमं प्रोचुर्गच्छाम इति वेगतः ॥ ९६ ॥

निवारयामास च तान् कञ्जित् कालं यथासुखम्।  
उषित्वा मद्गृहेऽवश्यं गच्छध्वमिति पण्डितः ॥ ९७ ॥

ततो मायामर्यां सृष्टा कृशां गां सर्वं एव ते।  
समीपं प्रापयामासुगौतमस्य महात्मनः ॥ ९८ ॥

सोऽनुवीक्ष्य कृपाविष्टस्तस्याः संरक्षणोत्सुकः।  
गोष्ठे तां बन्धयामास स्पृष्टमात्रा ममार सा ॥ ९९ ॥

स शोकेनाभिसंतमः कार्याकार्यं महामुनिः।  
न पश्यति स्म सहसा तादृशं मुनयोऽब्रुवन् ॥ १०० ॥

गोवध्येयं द्विजश्रेष्ठ यावत् तव शरीरगा।  
तावत् तेऽन्नं न भोक्तव्यं गच्छामो वयमेव हि ॥ १०१ ॥

तेन ते मुदिताः सन्तो देवदारुवनं शुभम्।  
जग्मुः पापवशं नीतास्तपश्चर्तुं यथा पुरा ॥ १०२ ॥

स तेषां मायया जातां गोवध्यां गौतमो मुनिः।  
केनापि हेतुना ज्ञात्वा शाशापातीवकोपनः ॥ १०३ ॥

भविष्यन्ति त्रयीबाह्या महापातकिभिः समाः।  
बभूवुस्ते तथा शापाज्जायमानाः पुनः पुनः ॥ १०४ ॥

सर्वे सम्प्राप्य देवेशं शंकरं विष्णुमव्ययम्।  
अस्तुवन् लौकिकैः स्तोत्रैरुच्छिष्टा इव सर्वंगौ ॥ १०५ ॥

देवदेवौ महादेवौ भक्तानामार्तिनाशिनौ।  
कामवृत्त्या महायोगौ पापान्नस्त्रातुमर्हथः ॥ १०६ ॥

तदा पाश्वस्थितं विष्णुं सम्प्रेक्ष्य वृषभध्वजः।  
किमेतेषां भवेत् कार्यं प्राह पुण्यैषिणामिति ॥ १०७ ॥

ततः स भगवान् विष्णुः शरण्यो भक्तवत्सलः।  
गोपतिं प्राह विप्रेन्द्रानालोक्य प्रणतान् हरिः ॥ १०८ ॥

न वेदबाह्ये पुरुषे पुण्यलेशोऽपि शंकर।  
संगच्छते महादेव धर्मो वेदाद् विनिर्बन्धौ ॥ १०९ ॥

तब सभी मुनिवरोंने आपसमें मन्त्रणा कर महर्षि गौतमसे पूछा—क्या हमलोग शीघ्र यहाँसे चले जायें? तब गौतमने उन लोगोंको रोकते हुए कहा—पण्डितजनो! कुछ समय और यहाँ मेरे घरमें सुखपूर्वक रहें, इसके बाद आप सभी जायें। तत्पश्चात् उन सभीने मायामर्यी एक कमजोर गाय बनाकर उसे महात्मा गौतमके समीप पहुँचा दिया। गायको देखकर उसकी रक्षाके लिये उत्सुक दयालु मुनिने अपनी गोशालामें उसे बाँध दिया, किंतु वह गाय छूते ही मर गयी ॥ ९६—९९ ॥

शोकसे अत्यन्त दुःखी वे महामुनि उस समय किंकर्तव्यविमृद्ध—से हो गये। तब शीघ्र ही मुनियोंने ऐसे उन (गौतम मुनि)—से कहा— ॥ १०० ॥

हे द्विजश्रेष्ठ! जबतक यह गोहत्या आपके शरीरमें (व्याप्त) रहेगी, तबतक आपके यहाँ अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिये, इसलिये हमलोग जा रहे हैं ॥ १०१ ॥

इस प्रकार आपके वशीभूत हुए वे (मुनिजन) प्रसन्न होकर पहलेके ही समान तप करनेके लिये शुभ देवदारु वनमें चले गये। उन गौतम मुनिने उन मुनियोंकी मायाद्वारा करायी गयी गोहत्याको किसी प्रकारसे जान लिया और अत्यन्त कुद्ध होकर (इस प्रकार) शाप दिया ॥ १०२—१०३ ॥

महापातकियोंके समान ये लोग वेदसे बहिष्कृत हो जायेंगे और शापके कारण बार-बार जन्म लेनेवाले होंगे। भोजनसे बची हुई जूठनके समान वे सभी (शापसे भयभीत होकर) सर्वव्यापक देवेश शंकर तथा अव्यय विष्णुके पास पहुँचकर उनकी लौकिक स्तुतियोंसे स्तुति करने लगे— ॥ १०४—१०५ ॥

हे देवदेव (विष्णु)! हे महादेव! (शंकर) आप दोनों भक्तोंका कष्ट दूर करनेवाले हैं और इच्छानुसार योगका अवलम्बन करनेवाले हैं। आप हम लोगोंकी पापसे रक्षा करें। तब सभीपमें स्थित विष्णुकी ओर देखकर वृषभध्वज शंकरने कहा—बताइये कि ये पुण्यकी इच्छा करनेवाले लोग क्या चाहते हैं? तब भक्तवत्सल, शरण्य हरि उन भगवान् विष्णुने विनीत श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी ओर देखकर शंकरजीसे कहा— ॥ १०६—१०८ ॥

शंकर! वेदबाह्य पुरुषमें पुण्यका लेशमात्र भी नहीं रहता। हे महादेव! वेदसे ही धर्म उत्पन्न हुआ है ॥ १०९ ॥

तथापि भक्तवात्सल्याद् रक्षितव्या महेश्वर।  
अस्माभिः सर्वं एवेमे गन्तारो नरकानपि ॥ ११० ॥

तस्माद् वै वेदबाह्यानां रक्षणार्थाय पापिनाम्।  
विमोहनाय शास्त्राणि करिष्यामो वृषभ्वज ॥ १११ ॥

एवं सम्बोधितो रुद्रो माधवेन मुरारिणा।  
चकार मोहशास्त्राणि केशवोऽपि शिवेरितः ॥ ११२ ॥

कापालं नाकुलं वामं भैरवं पूर्वपश्चिमम्।  
पञ्चरात्रं पाशुपतं तथान्यानि सहस्रशः ॥ ११३ ॥

सृष्टा तानूचतुर्देवौ कुर्वाणाः शास्त्रचोदितम्।  
पतन्तो निरये घोरे बहून् कल्पान् पुनः पुनः ॥ ११४ ॥

जायन्तो मानुषे लोके क्षीणपापचयास्ततः।  
ईश्वराराधनबलाद् गच्छध्वं सुकृतां गतिम्।  
वर्तध्वं मत्प्रसादेन नान्यथा निष्कृतिर्हि वः ॥ ११५ ॥  
एवमीश्वरविष्णुभ्यां चोदितास्ते महर्षयः।  
आदेशं प्रत्यपद्यन्त शिरसाऽसुरविद्विषोः ॥ ११६ ॥

चक्रस्तेऽन्यानि शास्त्राणि तत्र तत्र रताः पुनः।  
शिष्यानध्यापयामासुर्दर्शयित्वा फलानि तु ॥ ११७ ॥

मोहयन्त इमं लोकमवतीर्य महीतले।  
चकार शंकरो भिक्षां हितायैषां द्विजैः सह ॥ ११८ ॥

कपालमालाभरणः प्रेतभस्मावगुणिठतः।  
विमोहयैल्लोकमिमं जटामण्डलमण्डितः ॥ ११९ ॥

निक्षिप्य पार्वतीं देवीं विष्णावमिततेजसि।  
नियोज्याङ्गभवं रुद्रं भैरवं दुष्टनिग्रहे ॥ १२० ॥

दत्त्वा नारायणे देवीं नन्दिनं कुलनन्दिनम्।  
संस्थाप्य तत्र गणपान् देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ १२१ ॥

प्रस्थितेऽथ महादेवे विष्णुर्विश्वतनुः स्वयम्।  
स्त्रीरूपधारी नियतं सेवते स्म महेश्वरीम् ॥ १२२ ॥

तथापि महेश्वर! भक्तवत्सलताके कारण नरकोंमें जानेवाले इन सभीकी हमारे द्वारा रक्षा की जानी चाहिये ऐसा उचित प्रतीत होता है। इसलिये वृषभध्वज! वेदबाह्य पापियोंकी रक्षा करने एवं उन्हें मोहित करनेके लिये मैं शास्त्रोंकी रचना करूँगा। इस प्रकार मुरारि माधवसे प्रेरित किये गये रुद्रने मोहित करनेवाले शास्त्रोंको बनाया और उसी प्रकार शिवसे प्रेरणा प्राप्त केशवने भी ऐसे ही शास्त्रोंकी रचना की। कापाल, नाकुल, वाम, भैरव, पूर्वपश्चिम, पञ्चरात्र, पाशुपत तथा अन्य भी सहस्रों शास्त्रोंकी रचना करके उन देवोंने उन (वेदबाह्य)-से कहा—इन शास्त्रोंमें बताये गये कर्मोंको करनेके कारण बहुत कल्पोंतक आप सब घोर अन्धकारपूर्ण नरकोंमें गिरेंगे और फिर पाप-समूहके क्षीण हो जानेपर मनुष्यलोक प्राप्त करेंगे। पुनः ईश्वरकी आराधनाके बलपर पुण्यवानोंकी गति प्राप्त करेंगे। आप सभी मेरी प्रसन्नताके लिये ऐसा ही करें, आप लोगोंके निस्तारणका अर्थात् दोषमुक्त होनेका इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है ॥ ११०—११५ ॥

इस प्रकार शिव तथा विष्णुके द्वारा प्रेरणा प्राप्तकर उन महर्षियोंने असुरोंसे द्वेष करनेवाले उन दोनों देवोंकी आज्ञाको सिरसे स्वीकार किया। पुनः उन लोगोंने भी दूसरे शास्त्रोंकी रचना कर उनमें प्रवृत्त होनेवाले शिष्योंको पढ़ाया तथा उन शास्त्रोंके पढ़नेका फल भी बताया ॥ ११६—११७ ॥

शिवने इन (ब्राह्मणों)-के कल्याणके लिये पृथ्वीपर अवतार लेकर लोगोंको मोहित करते हुए ब्राह्मणोंके साथ भिक्षावृति ग्रहण की। कपालोंकी मालाका आभूषण धारणकर, चिता-भस्म लगाकर और जटामण्डलसे मणिठ हो इस लोकको मोहित किया। देवी पार्वतीको अमित तेजस्वी विष्णुके समीप रखा और दुष्टोंका निग्रह करनेके लिये अपने अङ्गसे उत्पन्न रुद्र भैरवको नियुक्त किया। देवीको नारायणके समीप रखकर कुलनन्दन नन्दीको वहाँ रखा तथा इन्द्रादि देवों एवं गणपोंको भी वहाँ स्थापित किया ॥ ११८—१२१ ॥

महादेवके जानेके पश्चात् विश्वतनु साक्षात् विष्णु स्त्री-रूप धारण करके महेश्वरी पार्वतीकी भलीभाँति सेवा करने लगे ॥ १२२ ॥

ब्रह्मा हुताशनः शक्रो यमोऽन्ये सुरपुङ्गवाः ।  
सिषेविरे महादेवीं स्त्रीवेशं शोभनं गताः ॥ १२३ ॥  
नन्दीश्वरश्च भगवान् शम्भोरत्यन्तवल्लभः ।  
द्वारदेशो गणाध्यक्षो यथापूर्वमतिष्ठत ॥ १२४ ॥  
एतस्मिन्नतरे दैत्यो ह्यन्थको नाम दुर्मतिः ।  
आहर्तुकामो गिरिजामाजगामाथ मन्दरम् ॥ १२५ ॥  
सम्प्राप्तमन्थकं दृष्ट्वा शंकरः कालभैरवः ।  
न्यषेधयदमेयात्मा कालरूपधरो हरः ॥ १२६ ॥  
तयोः समभवद् युद्धं सुधोरं रोमहर्षणम् ।  
शूलेनोरसि तं दैत्यमाजघान वृषध्वजः ॥ १२७ ॥  
ततः सहस्रशो दैत्यः सर्सर्जन्थकसंज्ञितान् ।  
नन्दिषेणादयो दैत्यैरन्थकैरभिनिर्जिताः ॥ १२८ ॥  
घण्टाकर्णो मेघनादश्छण्डेशशचण्डतापनः ।  
विनायको मेघवाहः सोमनन्दी च वैद्युतः ॥ १२९ ॥  
सर्वेऽन्थकं दैत्यवरं सम्प्राप्तिबलान्विताः ।  
युयुधुः शूलशक्त्यृष्टिगिरिकूटपरश्वर्थैः ॥ १३० ॥  
भ्रामयित्वाथ हस्ताभ्यां गृहीतचरणद्वयाः ।  
दैत्येन्द्रेणातिबलिना क्षिसास्ते शतयोजनम् ॥ १३१ ॥  
ततोऽन्थकनिसृष्टास्ते शतशोऽथ सहस्रशः ।  
कालसूर्यप्रतीकाशा भैरवं त्वभिदुद्गुवुः ॥ १३२ ॥  
हा हेति शब्दः सुमहान् बभूवातिभयङ्गः ।  
युयोध भैरवो रुद्रः शूलमादाय भीषणम् ॥ १३३ ॥  
दृष्ट्वाऽन्थकानां सुबलं दुर्जयं तर्जितो हरः ।  
जगाम शरणं देवं वासुदेवमजं विभुम् ॥ १३४ ॥  
  
सोऽसृजद् भगवान् विष्णुर्देवीनां शतमुत्तमम् ।  
देवीपाश्वरस्थितो देवो विनाशायामरद्विषाम् ॥ १३५ ॥  
तदान्थकसहस्रं तु देवीभिर्यमसादनम् ।  
नीतं केशवमाहात्म्याल्लिलयैव रणाजिरे ॥ १३६ ॥  
  
दृष्ट्वा पराहतं सैन्यमन्थकोऽपि महासुरः ।  
पराइमुखो रणात् तस्मात् पलायत महाजवः ॥ १३७ ॥  
  
ततः क्रीडां महादेवः कृत्वा द्वादशवार्षिकीम् ।  
हिताय लोके भक्तानामाजगामाथ मन्दरम् ॥ १३८ ॥

सुन्दर स्त्रीका रूप धारण करके ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र, यम तथा अन्य भी श्रेष्ठ देवता महादेवीकी सेवा करने लगे। शम्भुके अत्यन्त प्रिय गणोंके अध्यक्ष भगवान् नन्दीश्वर पूर्वकी भाँति द्वारपर स्थित रहे। इसी बीच अन्थक नामका एक कुबुद्धि दैत्य गिरिजा पार्वतीको हरनेकी इच्छासे उस मन्दर पर्वतपर आया। अन्थकको वहाँ आया देखकर कालरूपधारी शंकर, अमेयात्मा हर कालभैरवने उसे रोका। उन दोनोंका अत्यन्त भयंकर और रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ— ॥ १२३—१२७ ॥

इसके बाद उस दैत्यने अन्थक नामवाले हजारों दैत्योंको उत्पन्न किया। उन अन्थक नामवाले दैत्योंने नन्दिषेण आदि (गणों)-को पराजित कर दिया। घण्टाकर्ण, मेघनाद, चण्डेश, चण्डतापन, विनायक, मेघवाह, सोमनन्दी तथा वैद्युत आदि ये सभी अत्यन्त बलशाली गण दैत्यश्रेष्ठ अन्थकके पास जाकर शूल, शक्ति, ऋष्टि, पर्वतशिखर तथा परशुद्वारा युद्ध करने लगे। अत्यन्त बलवान् दैत्येन्द्रने अपने हाथोंसे उन सभीके दोनों पैरोंको पकड़कर घुमाते हुए उन्हें सौ योजन दूर फेंक दिया। तदनन्तर अन्थकद्वारा उत्पन्न सैकड़ों तथा हजारोंकी संख्यामें प्रलयकालीन सूर्यके समान वे (दैत्य) भैरवपर टूट पड़े। अत्यन्त भयंकर हाहाकारका शब्द होने लगा। भैरव रुद्र भीषण शूल लेकर युद्ध करने लगे ॥ १२८—१३३ ॥

अन्थकोंकी सेनाको अजेय देखकर भयभीत हर, विभु, अजन्मा देव वासुदेवकी शरणमें गये। तब देवीके समीपमें स्थित उन देव भगवान् विष्णुने देवताओंके द्वेषियोंका विनाश करनेके लिये श्रेष्ठ सौ देवियोंको उत्पन्न किया ॥ १३४—१३५ ॥

तदनन्तर विष्णुकी महिमासे उन देवियोंने सैकड़ों अन्थकोंको उस युद्धस्थलमें खेल-खेलमें ही यमलोक भेज दिया। अपनी सेनाकी पराजय देखकर महान् असुर अन्थक भी युद्धसे विमुख होकर अत्यन्त वेगसे भाग चला ॥ १३६—१३७ ॥

तदनन्तर संसारमें भक्तोंके कल्याणार्थ बारह वर्षतक चलनेवाली लीलाको समाप्तकर महादेव मन्दराचल पर्वतपर चले आये ॥ १३८ ॥

सम्प्रासमीश्वरं ज्ञात्वा सर्वं एव गणेश्वराः ।  
समागम्योपतस्थुस्तं भानुमन्तमिव द्विजाः ॥ १३९ ॥

प्रविश्य भवनं पुण्यमयुक्तानां दुरासदम् ।  
ददर्श नन्दिनं देवं भैरवं केशवं शिवः ॥ १४० ॥

प्रणामप्रवणं देवं सोऽनुगृह्याथ नन्दिनम् ।  
आघ्राय मूर्धनीशानः केशवं परिषस्वजे ॥ १४१ ॥

दृष्ट्वा देवी महादेवं प्रीतिविस्फारितेक्षणा ।  
ननाम शिरसा तस्य पादयोरीश्वरस्य सा ॥ १४२ ॥

निवेद्य विजयं तस्मै शंकरायाथ शंकरी ।  
भैरवो विष्णुमाहात्म्यं प्रणतः पाश्वर्गोऽवदत् ॥ १४३ ॥

श्रुत्वा तद्विजयं शम्भुर्विक्रमं केशवस्य च ।  
समाप्ते भगवानीशो देव्या सह वरासने ॥ १४४ ॥

ततो देवगणाः सर्वे मरीचिप्रमुखा द्विजाः ।  
आजगम्यन्दरं द्रष्टुं देवदेवं त्रिलोचनम् ॥ १४५ ॥

येन तद् विजितं पूर्वं देवीनां शतमुत्तमम् ।  
समाप्तं दैत्यसैन्यमीशादर्शनवाज्ञया ॥ १४६ ॥

दृष्ट्वा वरासनासीनं देव्या चन्द्रविभूषणम् ।  
प्रणेमुरादराद् देव्यो गायन्ति स्मातिलालसाः ॥ १४७ ॥

प्रणेमुर्गिरिजां देवीं वामपाश्वें पिनाकिनः ।  
देवासनगतं देवं नारायणमनामयम् ॥ १४८ ॥

दृष्ट्वा सिंहासनासीनं देव्या नारायणेन च ।  
प्रणम्य देवमीशानं पृष्ठवत्यो वराङ्गनाः ॥ १४९ ॥

कन्या ऊचुः

कस्त्वं विभाजसे कान्त्या केयं बालरविप्रभा ।  
कोऽन्वयं भाति वपुषा पङ्कजायतलोचनः ॥ १५० ॥

निशम्य तासां वचनं वृषेन्द्रवरवाहनः ।  
व्याजहार महायोगी भूताधिपतिरव्ययः ॥ १५१ ॥

अहं नारायणो गौरी जगन्माता सनातनी ।  
विभज्य संस्थितो देवः स्वात्मानं बहुधेश्वरः ॥ १५२ ॥

ईश्वरको आया हुआ जानकर सभी गणेश्वर उनके पासमें आकर इस प्रकार स्थित हो गये जैसे द्विज सूर्यकी उपासनामें स्थित रहते हैं। अयोगियोंके लिये दुर्गम पुण्यशाली भवनमें प्रवेशकर शिवने नन्दी, भैरवदेव तथा केशवको देखा ॥ १३९—१४० ॥

उन देव शंकरने प्रणाम करनेवाले नन्दीके ऊपर कृपा करके उनका सिर सूँधा और केशवका आलिङ्गन किया। महादेवको देखकर प्रीतिसे विकसित आँखोंवाली उन देवीने उन ईश्वरके चरणोंमें सिरसे प्रणाम किया। तदनन्तर शंकरप्रिया पार्वतीने उन्हें विजयका समाचार कहा और (शंकरके) पाश्वं में स्थित रहनेवाले भैरवने विनयपूर्वक विष्णुके माहात्म्यको भी (उन्हें) बताया। उस विजय (-के समाचार) तथा केशव विष्णुके पराक्रमको सुनकर शम्भु भगवान् शंकर देवी पार्वतीके साथ श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हुए। तदनन्तर मरीचि आदि प्रमुख द्विज तथा सभी देवगण देवाधिदेव त्रिलोचनका दर्शन करनेके लिये मन्दराचलपर आये ॥ १४१—१४५ ॥

जिन्होंने दैत्य (अन्धक)-की सेनाको पहले जीता था, वे श्रेष्ठ सौ देवियाँ भी ईशके दर्शनोंकी लालसासे बहाँ आर्यों । चन्द्रमारूपी आभूषणसे विभूषित शंकरको देवी पार्वतीके साथ श्रेष्ठ आसनपर विराजमान देखकर (उन) देवियोंने आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और अत्यन्त प्रेमसे वे गान करने लगीं। पिनाकी (शंकर)-के वामभागमें स्थित देवी गिरिजा एवं शंकरके आसनपर उनके साथ विराजमान प्रसन्नचित्त नारायणको (उन देवियोंने) प्रणाम किया। देवी पार्वती और नारायणके साथ सिंहासनपर बैठे हुए देव शंकरको प्रणामकर उन श्रेष्ठ स्त्रियोंने पूछा— ॥ १४६—१४९ ॥

कन्याओं (देवियों)-ने कहा—अपनी कान्तिसे प्रकाशित होनेवाले आप कौन हैं? बाल सूर्यके समान आभावाली यह (बाला) कौन है? और कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले एवं अपने शरीरके कारण शोभायमान यह कौन पुरुष है? ॥ १५० ॥

उनके वचन सुनकर श्रेष्ठ वृषभपर आरुढ़ होनेवाले सम्पूर्ण प्राणियोंके स्वामी, महायोगी अव्यय (शिव)-ने कहा—मैं अपनेको नारायण तथा सनातन जगन्माता गौरी आदि अनेक रूपोंमें विभक्तकर स्थित रहनेवाला देव ईश्वर हूँ॥ १५१—१५२ ॥

न मे विदुः परं तत्त्वं देवाद्या न महर्षयः ।  
एकोऽयं वेद विश्वात्मा भवानी विष्णुरेव च ॥ १५३ ॥

अहं हि निष्क्रियः शान्तः केवलो निष्परिग्रहः ।  
मामेव केशवं देवमाहुर्देवीमथाम्बिकाम् ॥ १५४ ॥  
एष धाता विधाता च कारणं कार्यमेव च ।  
कर्ता कारयिता विष्णुर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ १५५ ॥

भोक्ता पुमानप्रमेयः संहर्ता कालरूपधृक् ।  
स्तृष्टा पाता वासुदेवो विश्वात्मा विश्वतोमुखः ॥ १५६ ॥

कूटस्थो ह्यक्षरो व्यापी योगी नारायणः स्वयम् ।  
तारकः पुरुषो ह्यात्मा केवलं परमं पदम् ॥ १५७ ॥  
सैषा माहेश्वरी गौरी मम शक्तिनिरञ्जना ।  
शान्ता सत्या सदानन्दा परं पदमिति श्रुतिः ॥ १५८ ॥

अस्याः सर्वमिदं जातमत्रैव लयमेष्यति ।  
एषैव सर्वभूतानां गतीनामुत्तमा गतिः ॥ १५९ ॥  
तथाहं संगतो देव्या केवलो निष्कलः परः ।  
पश्याम्यशेषमेवेदं यस्तद् वेद स मुच्यते ॥ १६० ॥

तस्मादनादिमद्वैतं विष्णुमात्मानमीश्वरम् ।  
एकमेव विजानीध्वं ततो यास्यथ निर्वृतिम् ॥ १६१ ॥

मन्यन्ते विष्णुमव्यक्तमात्मानं श्रद्धयान्विताः ।  
ये भिन्नदृष्ट्यापीशानं पूजयन्तो न मे प्रियाः ॥ १६२ ॥

द्विषन्ति ये जगत्सूतिं मोहिता रौरवादिषु ।  
पच्यमाना न मुच्यन्ते कल्पकोटिशतैरपि ॥ १६३ ॥

तस्मादशेषभूतानां रक्षको विष्णुरव्ययः ।  
यथावदिह विज्ञाय ध्येयः सर्वापदि प्रभुः ॥ १६४ ॥  
श्रुत्वा भगवतो वाक्यं देव्यः सर्वगणेश्वराः ।  
नेमुनारायणं देवं देवीं च हिमशैलजाम् ॥ १६५ ॥

प्रार्थयामासुरीशाने भक्तिं भक्तजनप्रिये ।  
भवानीपादयुगले नारायणपदाम्बुजे ॥ १६६ ॥

ततो नारायणं देवं गणेशा मातरोऽपि च ।  
न पश्यन्ति जगत्सूतिं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १६७ ॥

मेरे परम तत्त्वको न तो देवता आदि जानते हैं और न महर्षि । एकमात्र विश्वात्मा ये विष्णु और भवानी ही (मुझे) जानते हैं । मैं ही निष्क्रिय, शान्त, अद्वितीय और परिग्रहशून्य हूँ । मुझे ही केशव, देव तथा देवी अम्बिका कहा जाता है ॥ १५३-१५४ ॥

ये विष्णु ही स्वयं धाता, विधाता, कारण, कार्य, कर्ता, कारयिता (कार्यके लिये प्रेरित करनेवाले) और भुक्ति तथा मुक्तिस्वरूप फलको प्रदान करनेवाले हैं । (ये ही) भोक्ता, अप्रमेय पुरुष, संहर्ता, कालका रूप धारण करनेवाले, सृष्टि तथा पालन करनेवाले, विश्वात्मा, सर्वव्यापक, वासुदेव, कूटस्थ, अविनाशी, व्यापी, योगी, नारायण, तारक, पुरुष, आत्मा और अद्वितीय परम पद हैं ॥ १५५-१५७ ॥

ये माहेश्वरी गौरी मेरी निरङ्गन शक्ति हैं । वेद इन्हें ही शान्त, सत्य, सदानन्द और परम पद बतलाते हैं । इन्हींसे यह सब उत्पन्न हुआ है और इन्हींमें लय भी हो जायगा । ये ही सभी प्राणियोंकी गतियोंमें उत्तम गति हैं ॥ १५८-१५९ ॥

इन्हीं देवीके साथ अद्वितीय, निष्कल तथा परमस्वरूप मैं इस सम्पूर्ण (विश्व)-का साक्षात्कार करता हूँ । जो इस (तत्त्व)-को जानता है, वह मुक्त हो जाता है । इसलिये अनादि, अद्वैत विष्णु और आत्मस्वरूप ईश्वर (शंकर)-को एक ही समझो । इससे तुम लोगोंको शान्ति प्राप्त होगी । जो श्रद्धासम्पन्न व्यक्ति अव्यक्त एवं आत्मरूप विष्णुको भिन्न मानकर शिवकी पूजा करते हैं, वे मुझे प्रिय नहीं हैं । जो लोग जगत्को उत्पन्न करनेवाले (विष्णु)-से द्वेष रखते हैं (वे सभी) मोहित व्यक्ति रौरव आदि नरकोंमें पड़े रहते हैं और सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी मुक्त नहीं होते । इसलिये सम्पूर्ण प्राणियोंके रक्षक अव्यय विष्णुको भलीभाँति समझकर समस्त आपत्तियोंमें उन प्रभुका ध्यान करना चाहिये ॥ १६०-१६४ ॥

सभी देवियों और गणेश्वरोंने भगवान्‌के वाक्यको सुनकर नारायण देव तथा हिमालयकी पुत्री देवी (पार्वती)-को प्रणाम किया और भक्तजनोंके प्रिय ईशान भगवान् शंकर तथा भवानीके चरणयुगल एवं नारायणके चरणकमलोंमें भक्तिकी प्रार्थना की । तदनन्तर गणेश्वरों और मातृदेवियोंने जगत्को उत्पन्न करनेवाले नारायण देवको नहीं देखा यह एक आश्र्य-जैसा ही हुआ ॥ १६५-१६७ ॥

तदन्तरे महादैत्यो ह्यन्थको मन्मथार्दितः ।  
मोहितो गिरिजां देवीमाहर्तुं गिरिमाययौ ॥ १६८ ॥

अथानन्तवपुः श्रीमान् योगी नारायणोऽमलः ।  
तत्रैवाविरभूद् दैत्यैर्युद्धाय पुरुषोत्तमः ॥ १६९ ॥  
कृत्वाथ पाश्वे भगवन्तमीशो  
युद्धाय विष्णुं गणदेवमुख्यैः ।  
शिलादपुत्रेण च मातृकाभिः  
स कालरुद्रोऽभिजगाम देवः ॥ १७० ॥  
त्रिशूलमादाय कृशानुकल्पं  
स देवदेवः प्रययौ पुरस्तात् ।  
तमन्वयुस्ते गणराजवर्या  
जगाम देवोऽपि सहस्रबाहुः ॥ १७१ ॥  
राज मध्ये भगवान् सुराणां  
विवाहनो वारिदर्वर्णवर्णः ।  
तदा सुमेरोः शिखराधिरूढ़—  
स्त्रिलोकदृष्टिर्भगवानिवार्कः ॥ १७२ ॥

जगत्यनादिर्भगवानमेयो  
हरः सहस्राकृतिराविरासीत् ।  
त्रिशूलपाणिर्गग्ने सुघोषः  
पपात देवोपरि पुष्पवृष्टिः ॥ १७३ ॥  
समागतं वीक्ष्य गणेशराजं  
समावृतं देवरिपुर्गणेशैः ।  
युद्धशक्तेण समातृकाभि—  
र्गणैरशेषैरमरप्रधानैः ॥ १७४ ॥  
विजित्य सर्वानपि बाहुबीर्यात्  
संसंयुगे शम्भुमनन्तधाम ।  
समाययौ यत्र स कालरुद्रो  
विमानमारुह्य विहीनसत्त्वः ॥ १७५ ॥  
दृष्ट्वान्थकं समायान्तं भगवान् गरुडध्वजः ।  
व्याजहार महादेवं भैरवं भूतिभूषणम् ॥ १७६ ॥  
हन्तुमर्हसि दैत्येशमन्थकं लोककण्टकम् ।  
त्वामृते भगवान् शक्तो हन्ता नान्योऽस्य विद्यते ॥ १७७ ॥

त्वं हर्ता सर्वलोकानां कालात्मा हैश्वरी तनुः ।  
स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर्वेदविद्विर्विचक्षणैः ॥ १७८ ॥

इसी बीच कामदेवके द्वारा पीड़ित महादैत्य अन्थक मोहित होता हुआ देवी गिरिजाको हरण करनेके लिये पर्वतपर आया ॥ १६८ ॥

इसके बाद विराट्शरीरधारी, श्रीमान्, योगी, निर्मल नारायण पुरुषोत्तम दैत्योंसे युद्ध करनेके लिये वहीं प्रकट हो गये। तदनन्तर वे कालरुद्रदेव भगवान् विष्णुको अपने पाश्वमें करके तथा मुख्य गणदेवों, शिलादपुत्र नन्दी और मातृकाओंको साथ लेकर युद्धके लिये स्वयं गये। अग्निके समान त्रिशूलको लेकर वे देवदेव (शंकर) आगे-आगे चले। उन श्रेष्ठ गणराजों तथा हजार बाहुबाले देव (विष्णु)-ने भी उनका अनुगमन किया। देवताओंके बीचमें उस समय मेघके समान वर्णवाले गरुडवाहन भगवान् विष्णु उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे, जिस प्रकार सुमेरु पर्वतके शिखरपर आरूढ़ तीनों लोकोंके नेत्र-स्वरूप भगवान् सूर्य सुशोभित होते हैं ॥ १६९—१७२ ॥

अनादि, अमेय त्रिशूलपाणि भगवान् हर हजारों स्वरूप धारणकर पृथ्वीपर प्रकट हुए। (उस समय) आकाशमें सुन्दर शब्द होने लगा तथा उन देवके ऊपर (आकाशसे) पुष्पवृष्टि होने लगी। गणेश्वरोंके राजा शिवको गणेश्वरोंद्वारा धिरे हुए आते देखकर देवशत्रु अन्थक, इन्द्र तथा मातृकाओं, गणों और सभी प्रधान-प्रधान देवताओंके साथ युद्ध करने लगा। अपने बाहुबलसे युद्धमें सभीको जीतकर वह सत्त्वविहीन (अन्थक) अनन्त तेजस्वी शम्भुके समीप गया, जहाँ वे कालरुद्र विमानपर बैठे हुए थे। अन्थकको आते हुए देखकर भगवान् गरुडध्वजने विभूतिसे सुशोभित भैरव महादेवसे कहा— ॥ १७३—१७६ ॥

(भगवन्!) आप संसारके कण्टकरूप दैत्यपति अन्थकको मारनेमें समर्थ हैं। आपको छोड़कर इसे मारनेमें और कोई दूसरा समर्थ नहीं है। आप सभी लोकोंका संहार करनेवाले ईश्वरके कालमय शरीर हैं। वेदोंको जाननेवाले विद्वानोंके द्वारा विविध मन्त्रोंसे आपकी स्तुति की जाती है ॥ १७७-१७८ ॥

स वासुदेवस्य वचो निशम्य भगवान् हरः ।  
निरीक्ष्य विष्णुं हनने दैत्येन्द्रस्य मतिं दधौ ॥ १७९ ॥

जगाम देवतानीकं गणानां हर्षमुत्तमम् ।  
स्तुवन्ति भैरवं देवमन्तरिक्षचरा जनाः ॥ १८० ॥  
जयानन्त महादेव कालमूर्ते सनातन ।  
त्वमग्निः सर्वभूतानामन्तश्चरसि नित्यशः ॥ १८१ ॥

त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वं धाता हरिरव्ययः ।  
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं धाम परमं पदम् ॥ १८२ ॥

ओङ्कारमूर्तिर्योगात्मा त्रयीनेत्रस्त्रिलोचनः ।  
महाविभूतिर्देवेशो जयाशेषजगत्पते ॥ १८३ ॥  
ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ गृहीत्वान्धकमीश्वरः ।  
त्रिशूलाग्रेषु विन्यस्य प्रननर्त सतां गतिः ॥ १८४ ॥

दृष्ट्वान्धकं देवगणाः शूलप्रोतं पितामहः ।  
प्रणेमुरीश्वरं देवं भैरवं भवमोचकम् ॥ १८५ ॥  
अस्तुवन् मुनयः सिद्धा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ।  
अन्तरिक्षेऽप्सरः सङ्घा नृत्यन्ति स्म मनोरमाः ॥ १८६ ॥

संस्थापितोऽथ शूलाग्रे सोऽन्धको दग्धकिल्बिषः ।  
उत्पन्नाखिलविज्ञानस्तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ १८७ ॥

अन्धक उवाच

नमामि मूर्ध्ना भगवन्तमेकं  
समाहिता यं विदुरीशतत्त्वम् ।  
पुरातनं पुण्यमनन्तरूपं  
कालं कविं योगवियोगहेतुम् ॥ १८८ ॥  
दंष्ट्राकरालं दिवि नृत्यमानं  
हुताशवक्रं ज्वलनार्करूपम् ।  
सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं  
भवन्तमेकं प्रणमामि रुद्रम् ॥ १८९ ॥

वासुदेवका वचन सुनकर उन भगवान् हरने विष्णुकी ओर देखकर दैत्येन्द्र अन्धकको मारनेका विचार किया, गणोंका हर्ष बढ़ाते हुए वे देवताओंकी सेनामें गये। (तब) अन्तरिक्षमें विचरण करनेवाले लोग भैरवदेवकी (इस प्रकार) स्तुति करने लगे— ॥ १७९—१८० ॥

अनन्त! महादेव! आप सनातन हैं, कालकी मूर्ति हैं, आपकी जय हो। आप अग्निरूप और सभी प्राणियोंके भीतर सदैव निवास करनेवाले हैं। आप ही यज्ञ, आप ही वषट्कार और आप ही धाता अव्यय हरि हैं। आप ही ब्रह्मा, महादेव और आप ही तेजःस्वरूप परमपद हैं। (आप) प्रणवमूर्ति, योगात्मा, वेदत्रयीरूप तीन नेत्रवाले त्रिलोचन हैं। आप महाविभूतिस्वरूप, देवताओंके स्वामी हैं। हे सम्पूर्ण संसारके स्वामी! आपकी जय हो ॥ १८१—१८३ ॥

तदनन्तर सज्जनोंके आश्रयस्थान एवं प्रलयकालीन अग्निके समान भयंकर वे ईश्वर अन्धक दैत्यको पकड़कर अपने त्रिशूलके अग्रभागमें रखकर नाचने लगे। त्रिशूलपर पिरोये हुए अन्धकको देखकर पितामह ब्रह्मा तथा देवगण, संसारसागरसे मुक्त करनेवाले भैरवदेवको प्रणाम करने लगे ॥ १८४—१८५ ॥

मूनि तथा सिद्धजन स्तुति करने लगे और गन्धर्व, किन्नर गान करने लगे तथा अन्तरिक्षमें रमणीय अप्सराओंके समूह नृत्य करने लगे। तदनन्तर त्रिशूलके अग्रभागमें स्थापित उस अन्धकके सभी पाप दग्ध (नष्ट) हो गये, उसे सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया और वह परमेश्वरकी स्तुति करने लगा— ॥ १८६—१८७ ॥

अन्धकने (स्तुति करते हुए) कहा—समाधिमें स्थित रहनेवाले लोग जिस पुरातन, पुण्यदायी, अनन्त-स्वरूप, कालरूप, कवि तथा संयोग एवं वियोगके कारणरूप ईश्वर-तत्त्वको जानते हैं, मैं उन अद्वितीय भगवान्को सिरसे प्रणाम करता हूँ। भयंकर दाढ़ोंवाले, आकाशमें नृत्य करते हुए, अग्निके समान मुखवाले, प्रज्वलित सूर्यके समान स्वरूपवाले, हजारों पैर, आँख तथा सिरोंसे युक्त आप अद्वितीय रुद्रको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १८८—१८९ ॥

**जयादिदेवामरपूजिताङ्गे**  
**विभागहीनामलतत्त्वरूप** ।  
**त्वमग्निरेको बहुधाभिपूज्यसे**  
**वाच्वादिभेदैरखिलात्मरूप** ॥ १९० ॥

**त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराण-**  
**मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।**  
**त्वं पश्यसीदं परिपास्यजस्त्रं**  
**त्वमन्तको योगिगणाभिजुष्टः ॥ १९१ ॥**

**एकोऽन्तरात्मा बहुधा निविष्टो**  
**देहेषु देहादिविशेषहीनः ।**  
**त्वमात्मशब्दं परमात्मतत्त्वं**  
**भवन्तमाहुः शिवमेव केचित् ॥ १९२ ॥**

**त्वमक्षरं ब्रह्म परं पवित्र-**  
**मानन्दरूपं प्रणवाभिधानम् ।**  
**त्वमीश्वरो वेदपदेषु सिद्धः**  
**स्वयं प्रभोऽशेषविशेषहीनः ॥ १९३ ॥**

**त्वमिन्द्ररूपो वरुणाग्निरूपो**  
**हंसः प्राणो मृत्युरन्तोऽसि यज्ञः ।**  
**प्रजापतिर्भगवानेकरुद्रो**  
**नीलग्रीवः स्तूयसे वेदविद्धिः ॥ १९४ ॥**

**नारायणस्त्वं जगतामथादिः**  
**पितामहस्त्वं प्रपितामहश्च ।**  
**वेदान्तगुह्योपनिषत्सु गीतः**  
**सदाशिवस्त्वं परमेश्वरोऽसि ॥ १९५ ॥**

**नमः परस्तात् तमसः परस्मै**  
**परात्मने पञ्चपदान्तराय ।**  
**त्रिशक्त्यतीताय निरञ्जनाय**  
**सहस्रशक्त्यासनसंस्थिताय ॥ १९६ ॥**

**त्रिमूर्तयेऽनन्तपदात्ममूर्ते**  
**जगन्निवासाय जगन्मयाय ।**  
**नमो ललाटार्पितलोचनाय**  
**नमो जनानां हृदि संस्थिताय ॥ १९७ ॥**

**फणीन्द्रहाराय नमोऽस्तु तुभ्यं**  
**मुनीन्द्रसिद्धार्चितपादयुग्म ।**

हे आदिदेव ! देवताओंके द्वारा आपके चरणोंकी पूजा की जाती है, आप विभागरहित, शुद्ध तत्त्वस्वरूप हैं, आपकी जय हो। अद्वितीय अग्निरूप आप वायु आदि भेदोंसे बहुत प्रकारसे पूजित होते हैं और अखिल आत्मरूप हैं। सूर्यके समान वर्णवाले पुराणपुरुष ! एकमात्र आपको ही तम (मायारूप अन्धकार) -से पेर कहा जाता है। आप इस (संसार)-के साक्षी हैं, निरन्तर इसका पालन करते हैं और आप ही संहार करनेवाले हैं। आप योगियोंके समूहोंद्वारा सेवित होते रहते हैं। अद्वितीय, अन्तरात्मरूप आप देह आदि विशेष पदार्थोंसे रहित होते हुए (विभिन्न) देहोंमें अनेक प्रकारसे स्थित रहते हैं। आप आत्मशब्द ('आत्मा' शब्दसे बोध) और परमात्मतत्त्व हैं। कुछ लोग आपको ही शिव कहते हैं ॥ १९०—१९२ ॥

हे प्रभो ! स्वयं आप आनन्दस्वरूप, परम पवित्र, औंकार शब्दसे वाच्य, अविनाशी, पर ब्रह्म हैं। आप स्वयं वेदवाक्योंमें 'ईश्वर'-शब्दसे सिद्ध हैं और समस्त विशेष पदार्थोंसे शून्य हैं। आप इन्द्र, वरुण, अग्नि, हंस, प्राण, मृत्यु, अन्त एवं यज्ञ हैं। वेदको जानेवालोंके द्वारा आपके नीलकण्ठ, एकरुद्र, प्रजापति और भगवत्स्वरूपकी स्तुति की जाती है। आप संसारके आदि और नारायण हैं, आप ही पितामह और प्रपितामह हैं। वेदान्तशास्त्र तथा गुह्य उपनिषदोंमें आप ही सदाशिव और परमेश्वर इस नामसे वर्णित हैं ॥ १९३—१९५ ॥

तमोगुणसे परे, परम परमात्मा, पञ्चपदान्तरस्वरूप, ब्राह्मी, वैष्णवी एवं शाक्त—तीनों शक्तियोंसे अतीत, निरञ्जन और सहस्रशक्तिरूप आसनपर विराजमान रहनेवाले आप परमात्माको नमस्कार है ॥ १९६ ॥

ब्रह्मा-विष्णु एवं शिव—इन त्रिमूर्तिरूप, अनन्त पदात्मक, आत्ममूर्ति, जगन्निवास और जगन्मयको नमस्कार है। ललाटमें नेत्र धारण करनेवाले तथा लोगोंके हृदयमें स्थित आपको नमस्कार है। मुनीन्द्रों तथा सिद्धोंद्वारा जिनके चरणकमलोंकी पूजा की जाती है, ऐसे नागराजोंकी माला धारण करनेवाले आपको नमस्कार है ॥ १९७ ॥

ऐश्वर्यधर्मासनसंस्थिताय

नमः परान्ताय भवोद्भवाय ॥ १९८ ॥

सहस्रचन्द्रार्कविलोचनाय

नमोऽस्तु ते सोम सुमध्यमाय ।

नमोऽस्तु ते देव हिरण्यबाहो

नमोऽम्बिकायाः पतये मृडाय ॥ १९९ ॥

नमोऽतिगुह्याय गुहान्तराय

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चिताय ।

त्रिकालहीनामलधामधाम्ने

नमो महेशाय नमः शिवाय ॥ २०० ॥

एवं स्तुवन्तं भगवान् शूलाग्रादवरोप्य तम् ।

तुष्टः प्रोवाच हस्ताभ्यां स्पृष्टाथ परमेश्वरः ॥ २०१ ॥

प्रीतोऽहं सर्वथा दैत्य स्तवेनानेन साम्प्रतम् ।  
सम्प्राप्य गाणपत्यं मे संनिधाने वसामरः ॥ २०२ ॥

अरोगश्छन्नसंदेहो देवैरपि सुपूजितः ।  
नन्दीश्वरस्यानुचरः सर्वदुःखविवर्जितः ॥ २०३ ॥  
एवं व्याहृतमात्रे तु देवदेवेन देवताः ।  
गणेश्वरा महादेवमन्थकं देवसंनिधौ ॥ २०४ ॥

सहस्रसूर्यसंकाशं त्रिनेत्रं चन्द्रचिह्नितम् ।  
नीलकण्ठं जटामौलिं शूलासक्तमहाकरम् ॥ २०५ ॥

दृष्टा तं तुष्टुवुदैत्यमाश्र्यं परमं गताः ।  
उवाच भगवान् विष्णुदैवदेवं स्मयन्निव ॥ २०६ ॥  
स्थाने तव महादेव प्रभावः पुरुषो महान् ।  
नेक्षतेऽज्ञानज्ञानदोषान् गृह्णाति च गुणानपि ॥ २०७ ॥  
इतीरितोऽथ भैरवो गणेशदेवपुङ्गवैः ।  
सकेशवः सहान्थको जगाम शंकरान्तिकम् ॥ २०८ ॥  
निरीक्ष्य देवमागतं स शंकरः सहान्थकम् ।  
समाधवं समातृकं जगाम निर्वृतिं हरः ॥ २०९ ॥  
प्रगृह्य पाणिनेश्वरो हिरण्यलोचनात्परम् ।  
जगाम यत्र शैलजा विमानमीशवल्लभा ॥ २१० ॥

ऐश्वर्यमय धर्मके आसनपर विराजमान रहनेवाले, परमोत्कृष्ट एवं संसारको उत्पन्न करनेवाले आपको नमस्कार है। हजारों चन्द्रमा और सूर्योंके समान नेत्रवाले तथा सुन्दर मध्यभागवाले सोमस्वरूप आपको नमस्कार है। हिरण्यबाहो! देव! आपको नमस्कार है। अम्बिकाके पति मृड! आपको नमस्कार है। अत्यन्त गुह्य, गुहान्तर, वेदान्तरूपी विज्ञानके द्वारा निश्चित किये गये तीनों कालोंके प्रभावसे रहित, शुद्ध तेजोमय स्थानवाले महेशको नमस्कार है, शिवको नमस्कार है ॥ १९८—२०० ॥

इस प्रकार स्तुति कर रहे उस (अन्धक)-को प्रसन्न होकर भगवान् परमेश्वरने त्रिशूलके अग्रभागसे उतारा और हाथोंसे स्पर्श करते हुए कहा—दैत्य! इस समय तुम्हरे द्वारा की गयी इस स्तुतिसे मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम गणपति-पद प्राप्तकर अमर होकर मेरे समीपमें निवास करो। तुम रोगोंसे रहित, संदेहशून्य, सभी दुःखोंसे रहित और नन्दीश्वरके अनुचर होकर देवताओंके द्वारा भलीभाँति पूजित होओगे ॥ २०१—२०३ ॥

देवताओंके भी देव (शंकर)-के इतना कहते ही हजारों सूर्यके समान प्रकाशमान, त्रिनेत्रधारी, चन्द्रमाके चिह्नसे सुशोभित, नीलकण्ठ, जटा-मुकुटधारी, विशाल भुजामें त्रिशूल धारण किये तथा महादेवरूपमें विद्यमान उस अन्धक दैत्यको देव शंकरके समीपमें स्थित देखकर देवता तथा गणेश्वर अत्यन्त आश्र्य-चकित हो गये और उसकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर भगवान् विष्णुने हँसते हुए देवाधिदेव शिवसे कहा— ॥ २०४—२०६ ॥

महादेव! आपने उचित ही प्रभाव दिखलाया। महान् पुरुष अज्ञानसे उत्पन्न दोषोंको नहीं देखते और गुणोंको ही ग्रहण करते हैं। इतना कहे जानेके बाद गणेशवरों, श्रेष्ठ देवों, केशव तथा अन्धकके साथ भैरव शंकरके पास गये। अन्धक, विष्णु तथा मातृकाओंके साथ देव (भैरव)-को आया देखकर उन कल्याणकारी हरको परम शान्ति प्राप्त हुई। हिरण्यक्षके पुत्र (अन्धक)-का हाथ पकड़कर ईश्वर (शंकर) वहाँ गये, जहाँ शंकरप्रिया पार्वती विमानपर बैठी हुई थीं ॥ २०७—२१० ॥

विलोक्य सा समागतं भवं भवार्तिहारिणम्।  
अवाप सान्थकं सुखं प्रसादमन्थकं प्रति ॥ २११ ॥

अथान्थको महेश्वरीं ददर्श देवपाश्वगाम्।  
पपात दण्डवत् क्षितौ ननाम पादपद्मयोः ॥ २१२ ॥  
नमामि देववल्लभामनादिमद्रिजामिमाम्।  
यतः प्रधानपूरुषौ निहन्ति याखिलं जगत् ॥ २१३ ॥

विभाति या शिवासने शिवेन साकमव्यया।  
हिरण्मयेऽतिनिर्मले नमामि तामिमामजाम् ॥ २१४ ॥

यदन्तराखिलं जगज्जगन्ति यान्ति संक्षयम्।  
नमामि यत्र तामुमामशेषभेदवर्जिताम् ॥ २१५ ॥

न जायते न हीयते न वर्धते च तामुमाम्।  
नमामि या गुणातिगा गिरीशपुत्रिकामिमाम् ॥ २१६ ॥

क्षमस्व देवि शैलजे कृतं मया विमोहतः।  
सुरासुरैर्यदर्चितं नमामि ते पदाम्बुजम् ॥ २१७ ॥

इत्थं भगवती गौरी भक्तिनग्नेण पार्वती।  
संस्तुता दैत्यपतिना पुत्रत्वे जगृहेऽन्थकम् ॥ २१८ ॥

ततः स मातृभिः सार्थं भैरवो रुद्रसम्भवः।  
जगामानुज्ञया शम्भोः पातालं परमेश्वरः ॥ २१९ ॥  
यत्र सा तामसी विष्णोर्मूर्तिः संहारकारिका।  
समास्ते हरिरव्यक्तो नृसिंहाकृतिरीश्वरः ॥ २२० ॥  
ततोऽनन्ताकृतिः शम्भुः शेषेणापि सुपूजितः।  
कालाग्निरुद्रो भगवान् युयोजात्मानमात्मनि ॥ २२१ ॥  
युञ्जतस्तस्य देवस्य सर्वा एवाथ मातरः।  
बुभुक्षिता महादेवं प्रणम्याहुस्त्रिशूलिनम् ॥ २२२ ॥

मातर ऊचुः

बुभुक्षिता महादेव अनुज्ञा दीयतां त्वया।  
त्रैलोक्यं भक्षयिष्यामो नान्यथा तुसिरस्तिनः ॥ २२३ ॥  
एतावदुक्त्वा वचनं मातरो विष्णुसम्भवाः।  
भक्षयाङ्गक्रिरे सर्वं त्रैलोक्यं सच्चाचरम् ॥ २२४ ॥  
ततः स भैरवो देवो नृसिंहपुषं हरिम्।  
दध्यौ नारायणं देवं क्षणात् प्रादुरभूद्धरिः ॥ २२५ ॥

संसारके दुःखोंका हरण करनेवाले भव (शंकर)-को अन्थकके साथ आया देखकर उन्हें सुख प्राप्त हुआ, तब उन्होंने अन्थकपर कृपा की। अन्थक शंकरके पाश्वर्भागमें स्थित महेश्वरीको देखा। वह पृथ्वीपर दण्डके समान गिर गया और देवीके चरणकमलोंमें प्रणाम किया ॥ २११-२१२ ॥

जिनसे प्रधान (प्रकृति) और पुरुष उत्पन्न हुए हैं और जो सम्पूर्ण विश्वका संहार करनेवाली हैं, उन अनादि शंकरप्रिया अद्रितनया (पर्वतपुत्री)-को मैं प्रणाम करता हूँ। जो अति निर्मल, हिरण्मय, मंगलकारी आसनपर भगवान् शिवके साथ सुशोभित होती हैं, उन अव्यय और अजन्माको मैं नमस्कार करता हूँ। सभी भेदोंसे रहित उन उमाको मैं प्रणाम करता हूँ, जिनके भीतर सम्पूर्ण संसार उत्पन्न होता है और विनाशको प्राप्त होता रहता है। जो न उत्पन्न होती हैं, न विनाशको प्राप्त होती हैं और न बढ़ती ही हैं, उन गुणातीत हिमालयकी पुत्री उमाको मैं नमस्कार करता हूँ। देवि ! शैलपुत्रि ! मैंने मोहित होकर जो किया उसके लिये आप मुझे क्षमा करें। देवताओं तथा असुरोंसे पूजित आपके चरणकमलोंको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २१३-२१७ ॥

भक्तिसे विनम्र हुए दैत्यपतिके इस प्रकार सुन्ति किये जानेपर भगवती गौरी पार्वतीने उस अन्थकको पुत्ररूपमें स्वीकार किया ॥ २१८ ॥

तदनन्तर रुद्रसे उत्पन्न परमेश्वर भैरव शम्भुकी आज्ञासे मातृकाओंके साथ पाताल गये। जहाँ विष्णुकी संहारकारिणी तामसी मूर्तिके रूपमें नृसिंहाकृति ईश्वर अव्यक्त हरि स्थित हैं। तदनन्तर शेषसे भी पूजित कालाग्नि रुद्र अनन्ताकृति भगवान् शम्भुने स्वयंको परमात्मतत्त्वसे संयुक्त कर दिया। उन देवके (परमात्मासे) संयोग करते समय सभी बुभुक्षित मातृकाओंने त्रिशूलधारी महादेवको प्रणामकर कहा— ॥ २१९-२२२ ॥

मातृकाओंने कहा—महादेव ! हम भूखी हैं। आप आज्ञा दें, हम तीनों लोकोंका भक्षण करेंगी, हमारी और किसी प्रकारसे तृप्ति नहीं होगी। इतनी बात कहकर विष्णुसे उत्पन्न वे मातृकाएँ चराचरसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीका भक्षण करने लगीं ॥ २२३-२२४ ॥

तब उन भैरवदेवने नृसिंह-शरीरधारी नारायण-देव हरिका ध्यान किया। हरि क्षणभरमें ही प्रकट हो गये ॥ २२५ ॥

विज्ञापयामास च तं भक्षयन्तीह मातरः ।  
निवारयाशु त्रैलोक्यं त्वदीया भगवन्निति ॥ २२६ ॥

संस्मृता विष्णुना देव्यो नृसिंहवपुषा पुनः ।  
उपतस्थुर्महादेवं नरसिंहाकृतिं च तम् ॥ २२७ ॥

सम्प्राप्य संनिधिं विष्णोः सर्वाः संहारकारिकाः ।  
प्रददुः शम्भवे शक्तिं भैरवायातितेजसे ॥ २२८ ॥  
अपश्यंस्ता जगत्सूतिं नृसिंहमथ भैरवम् ।  
क्षणादेकत्वमापन्नं शेषाहिं चापि मातरः ॥ २२९ ॥

व्याजहार हृषीकेशो ये भक्ताः शूलपाणिनः ।  
ये च मां संस्मरन्तीह पालनीयाः प्रयत्नतः ॥ २३० ॥

ममैव मूर्तिरतुला सर्वसंहारकारिका ।  
महेश्वरांशसम्भूता भुक्तिमुक्तिप्रदा त्वियम् ॥ २३१ ॥  
अनन्तो भगवान् कालो द्विधावस्था ममैव तु ।  
तामसी राजसी मूर्तिर्देवदेवश्चतुर्मुखः ॥ २३२ ॥

सोऽयं देवो दुराधर्षः कालो लोकप्रकालनः ।  
भक्षयिष्यति कल्पान्ते रुद्रात्मा निखिलं जगत् ॥ २३३ ॥

या सा विमोहिका मूर्तिर्मम नारायणाह्वया ।  
सत्त्वोद्विक्ता जगत् कृत्स्नं संस्थापयति नित्यदा ॥ २३४ ॥

स हि विष्णुः परं ब्रह्म परमात्मा परा गतिः ।  
मूलप्रकृतिरव्यक्ता सदानन्देति कथ्यते ॥ २३५ ॥

इत्येवं बोधिता देव्यो विष्णुना विश्वमातरः ।  
प्रपेदिरे महादेवं तमेव शरणं हरिम् ॥ २३६ ॥

एतद् वः कथितं सर्वं मयान्धकनिर्बहृणम् ।  
माहात्म्यं देवदेवस्य भैरवस्यामितौजसः ॥ २३७ ॥

(भैरवदेवने) उन्हें बतलाते हुए कहा—भगवन्! आपकी ये मातृकाएँ त्रिलोकीका भक्षण कर रही हैं, इन्हें आप शीघ्र ही रोकें ॥ २२६ ॥

नरसिंह-शारीरधारी विष्णुके द्वारा पुनः उन देवियोंका स्मरण किये जानेपर वे उन नरसिंहरूपवाले महादेवके पास आ पहुँचीं। संहार करनेवाली उन सभी शक्तियोंने विष्णुके समीप आकर भैरवरूपधारी अति तेजस्वी शम्भुको शक्ति प्रदान कर दी ॥ २२७-२२८ ॥

उन मातृकाओंने जगत्को उत्पन्न करनेवाले नृसिंह, भैरव तथा शेषनागको क्षणभरमें ही एक होते हुए देखा। हृषीकेशने कहा—शूलपाणि भगवान् शंकरके जो भक्त हैं और जो मेरा स्मरण करते हैं, प्रयत्न-पूर्वक उनका यहाँ पालन करना चाहिये। महेश्वरके अंशसे उत्पन्न, सबका संहार करनेवाली यह मेरी ही अतुलनीय मूर्ति है। यह भुक्ति और मुक्तिको प्रदान करनेवाली है ॥ २२९—२३१ ॥

भगवान् अनन्त और काल मेरी ही दो प्रकारकी तामसी अवस्थाएँ हैं। देवाधिदेव चतुर्मुख ब्रह्म मेरी राजसी मूर्ति हैं। वे ही ये संसारका संहार करनेवाले दुर्धर्ष कालदेव हैं। कल्पका अन्त होनेपर ये रुद्रात्मा सम्पूर्ण विश्वका भक्षण करेंगे। सबको मोहित करनेवाली सत्त्वगुणसम्पन्ना मेरी 'नारायण' इस नामवाली जो मूर्ति है, वह नित्य समस्त संसारकी स्थापना करती है। (मेरी) उस (मूर्ति)-को विष्णु, परम ब्रह्म, परमात्मा, परमगति, मूलप्रकृति, अव्यक्त और सदानन्द—इस प्रकारसे कहा जाता है। विष्णुके द्वारा इस प्रकार समझानेपर देवीरूप उन सभी मातृकाओंने उन्हीं महादेव हरिकी शरण ग्रहण की ॥ २३२—२३६ ॥

मैंने आप लोगोंसे अन्धकके विनाश और अमित ओजस्वी देवाधिदेव भैरवके माहात्म्यका सम्पूर्ण वर्णन किया ॥ २३७ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्राणं संहितायां पूर्वविभागे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें पंद्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

## सोलहवाँ अध्याय

सनत्कुमारद्वारा आत्मज्ञान प्राप्तकर प्रह्लाद-पुत्र विरोचनका योगमें संलग्न होना, विरोचन-  
पुत्र बलिद्वारा देवताओंको पराजित करना, देवमाता अदितिका दुःखी होना तथा  
विष्णुसे प्रार्थनाकर पुत्ररूपमें उनके उत्पन्न होनेका वर प्राप्त करना, अदितिके  
गर्भमें विष्णुका प्रवेश, विष्णुका वामनरूपमें आविर्भाव, बलिके यज्ञमें  
वामनका प्रवेश तथा तीन पग भूमिकी याचना, तीसरे पगसे नापते  
समय ब्रह्माण्ड-भेदन, गङ्गाकी उत्पत्ति तथा भक्तिका  
वर प्राप्तकर बलि आदिका पातालमें प्रवेश

श्रीकूर्म उवाच

अन्धके निगृहीते वै प्रह्लादस्य महात्मनः ।  
विरोचनो नाम सुतो बभूव नृपतिः पुरा ॥ १ ॥  
देवाभ्यज्ञत्वा सदेवेन्द्रान् ब्रह्मन् वर्षान् महासुरः ।  
पालयामास धर्मेण त्रैलोक्यं सच्चराचरम् ॥ २ ॥  
तस्यैवं वर्तमानस्य कदाचिद् विष्णुचोदितः ।  
सनत्कुमारो भगवान् पुरं प्राप्त महामुनिः ॥ ३ ॥  
दृष्ट्वा सिंहासनगतो ब्रह्मपुत्रं महासुरः ।  
ननामोत्थाय शिरसा प्राज्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥  
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सम्प्राप्तो मे पुरातनः ।  
योगीश्वरोऽद्य भगवान् यतोऽसौ ब्रह्मवित् स्वयम् ॥ ५ ॥

किमर्थमागतो ब्रह्मन् स्वयं देवः पितामहः ।  
ब्रूहि मे ब्रह्मणः पुत्र किं कार्यं करवाण्यहम् ॥ ६ ॥  
सोऽब्रवीद् भगवान् देवो धर्मयुक्तं महासुरम् ।  
द्रष्टुमध्यागतोऽहं वै भवन्तं भाग्यवानसि ॥ ७ ॥

सुदुर्लभा नीतिरेषा दैत्यानां दैत्यसत्तम ।  
त्रिलोके धार्मिको नूनं त्वादृशोऽन्यो न विद्यते ॥ ८ ॥

इत्युक्तोऽसुरराजस्तं पुनः प्राह महामुनिम् ।  
धर्माणां परमं धर्मं ब्रूहि मे ब्रह्मवित्तम् ॥ ९ ॥

सोऽब्रवीद् भगवान् योगी दैत्येन्द्राय महात्मने ।  
सर्वगुह्यतमं धर्ममात्मज्ञानमनुत्तमम् ॥ १० ॥

स लब्ध्वा परमं ज्ञानं दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम् ।  
निधाय पुत्रे तद्राज्यं योगाभ्यासरतोऽभवत् ॥ ११ ॥

श्रीकूर्मने कहा—प्राचीन कालमें अन्धके निगृहीत हो जानेपर महात्मा प्रह्लादका विरोचन नामका पुत्र राजा बना। उस महान् असुरने देवेन्द्रसहित देवताओंको जीतकर धर्मपूर्वक चराचर त्रिलोकीका बहुत वर्षोंतक पालन किया। उसके इस प्रकार रहते हुए एक बार कभी विष्णुसे प्रेरित होकर महामुनि भगवान् सनत्कुमार उसके नगरमें आये। सिंहासनपर बैठे हुए उस महान् असुरने ब्रह्माजीके पुत्र (सनत्कुमार)-को देखकर (आसनसे) उठकर सिरसे उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर यह वाक्य कहा— ॥ १—४ ॥

आज मैं धन्य हुआ, कृतार्थ हुआ जो ये ब्रह्मजानी, पुरातन योगीश्वर भगवान् स्वयं यहाँ आ गये हैं। हे ब्रह्मन्! देवस्वरूप पितामह ब्रह्माजीके पुत्र! आप किस प्रयोजनसे यहाँ आये हैं, मुझे बतलायें। मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ ॥ ५-६ ॥

वे भगवान् देव धर्मात्मा महासुर (विरोचन)-से बोले—मैं आपको ही देखने आया हूँ, आप भाग्यशाली हैं। दैत्यश्रेष्ठ! दैत्योंके लिये यह (धार्मिक) नीति अत्यन्त दुर्लभ है। निश्चय ही तीनों लोकोंमें तुम्हारे समान कोई दूसरा धार्मिक नहीं है। ऐसा कहे जानेपर असुरराज (विरोचन)-ने उन महामुनिसे पुनः कहा—ब्रह्मज्ञानियोंमें सर्वश्रेष्ठ! आप मुझे धर्मोंमें जो श्रेष्ठ धर्म हो, उसे बतलायें। उन भगवान् योगीने महात्मा दैत्येन्द्रको आत्मज्ञानरूपी और सब प्रकारसे अत्यन्त रहस्यमय श्रेष्ठ धर्म बतलाया ॥ ७—१० ॥

उन्होंने (महात्मा विरोचनने) परम ज्ञान प्राप्तकर उन्हें (सनत्कुमारको) गुरुदक्षिणा प्रदान की तथा राज्य अपने पुत्र (बलि)-को सौंपकर वे योगाभ्यासमें निरत हो गये ॥ ११ ॥

स तस्य पुत्रो मतिमान् बलिर्नाम महासुरः ।  
ब्रह्मण्यो धार्मिकोऽत्यर्थं विजिगयेऽथ पुरुंदरम् ॥ १२ ॥

कृत्वा तेन महद् युद्धं शक्रः सर्वामरैर्वृतः ।  
जगाम निर्जितो विष्णुं देवं शरणमच्युतम् ॥ १३ ॥

तदन्तरेऽदितिर्देवी देवमाता सुदुःखिता ।  
दैत्येन्द्राणां वधार्थाय पुत्रो मे स्यादिति स्वयम् ॥ १४ ॥

तताप सुमहद् घोरं तपोराशिस्तपः परम् ।  
प्रपन्ना विष्णुमव्यक्तं शरणं शरणं हरिम् ॥ १५ ॥

कृत्वा हृत्यद्यकिङ्गल्के निष्कलं परमं पदम् ।  
वासुदेवमनाद्यन्तमानन्दं व्योम केवलम् ॥ १६ ॥

प्रसन्नो भगवान् विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः ।  
आविर्बभूव योगात्मा देवमातुः पुरो हरिः ॥ १७ ॥

दृष्ट्वा समागतं विष्णुमदितिर्भक्तिसंयुता ।  
मैने कृतार्थमात्पानं तोषयामास केशवम् ॥ १८ ॥

अदितिरुचाच

जयाशेषदुःखौघनाशैकहेतो  
जयानन्तमाहात्म्ययोगाभियुक्त ।  
जयानादिमध्यान्तविज्ञानमूर्ते  
जयाशेषकल्पामलानन्दरूप ॥ १९ ॥

नमो विष्णवे कालरूपाय तुभ्यं  
नमो नारसिंहाय शेषाय तुभ्यम् ।  
नमः कालरुद्राय संहारकत्रे  
नमो वासुदेवाय तुभ्यं नमस्ते ॥ २० ॥

नमो विश्वमायाविधानाय तुभ्यं  
नमो योगगम्याय सत्याय तुभ्यम् ।  
नमो धर्मविज्ञाननिष्ठाय तुभ्यं  
नमस्ते वराहाय भूयो नमस्ते ॥ २१ ॥

नमस्ते सहस्रार्कचन्द्राभमूर्ते  
नमो वेदविज्ञानधर्माभिगम्य ।  
नमो देवदेवादिदेवादिदेव  
प्रभो विश्वयोनेऽथ भूयो नमस्ते ॥ २२ ॥

उनका वह बलि नामक महान् असुर पुत्र बुद्धिमान्, ब्राह्मणभक्त तथा अत्यन्त धार्मिक था। महान् अभ्युदयकी प्राप्तिके लिये उसने इन्द्रको भी जीत लिया था। सभी देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रने उसके साथ महान् युद्ध करते हुए पराजित होकर अच्युत विष्णुदेवकी शरण ग्रहण की ॥ १२-१३ ॥

इसी बीच अत्यन्त दुःखी होकर देवताओंकी माता तपोराशि, परम तपोरूप देवी अदितिने दैत्येन्द्रोंके वधके लिये 'स्वयं भगवान् ही मेरे पुत्र हों' इस संकल्पको लेकर अत्यन्त महान् कठोर तप किया। अपने हृदयरूपी कमलकलिकामें निष्कल, परम पद, अनादि, अनन्त, आनन्दस्वरूप, व्योममय, अद्वितीय वासुदेवका ध्यान करती हुई वे शरणागतवत्सल अव्यक्त, हरि विष्णुकी शरणमें गयीं। प्रसन्न होकर शङ्ख-चक्र तथा गदा धारण करनेवाले योगात्मा हरि भगवान् विष्णु देवमाता (अदिति)-के समक्ष प्रकट हो गये। विष्णुको सामने देखकर भक्तिपरायणा अदितिने अपनेको कृतार्थ माना और वे केशवको स्तुतिसे प्रसन्न करने लगीं ॥ १४-१८ ॥

अदितिने कहा—समस्त दुःखसमूहोंके नाश करनेके लिये एकमात्र कारणरूप आपकी जय हो। अनन्त माहात्म्य-सम्पन्न तथा योगाभियुक्त! (योगमें प्रतिक्षण निरत) आपकी जय हो। आदि, मध्य और अन्तसे रहित विज्ञानमूर्ते! आपकी जय हो। अशेषकल्प (जिनमें किसी भी प्रकारके विषयका विराम नहीं है) तथा विशुद्ध आनन्दस्वरूप! आपकी जय हो। कालरूप विष्णु! आपको नमस्कार है। नरसिंहरूपधारी शेष! आपको नमस्कार है। संहार करनेवाले कालरुद्रको नमस्कार है। वासुदेव! आपको बार-बार नमस्कार है। विश्वरूपी मायाका विधान करनेवाले! आपको नमस्कार है। योगद्वारा जानने योग्य सत्यरूप! आपको नमस्कार है। धर्म एवं ज्ञाननिष्ठ! आपको नमस्कार है। हे वराहरूप! आपको बार-बार नमस्कार है। हजारों सूर्य और चन्द्रमाकी आभाके समान प्रकाशयुक्त मूर्तिवाले! आपको नमस्कार है। वेदोंमें प्रतिपादित विशिष्ट ज्ञान और धर्मद्वारा प्राप्त होनेवाले! आपको नमस्कार है। देवदेवादिदेव आदिदेव! आपको नमस्कार है। प्रभो! आप विश्वके योनिरूप हैं, आपको बार-बार नमस्कार है ॥ १९-२२ ॥

नमः शश्वते सत्यनिष्ठाय तुभ्यं  
नमो हेतवे विश्वरूपाय तुभ्यम्।  
नमो योगपीठान्तरस्थाय तुभ्यं  
शिवायैकरूपाय भूयो नमस्ते ॥ २३ ॥

एवं स भगवान् कृष्णो देवमात्रा जगन्मयः।  
तोषितश्छन्दयामास वरेण प्रहसन्निव ॥ २४ ॥

प्रणम्य शिरसा भूमौ सा वद्वे वरमुत्तमम्।  
त्वामेव पुत्रं देवानां हिताय वरये वरम् ॥ २५ ॥

तथास्त्वत्याह भगवान् प्रपञ्चजनवत्सलः।  
दत्त्वा वरानप्रमेयस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २६ ॥  
ततो बहुतिथे काले भगवन्तं जनार्दनम्।  
दधार गर्भं देवानां माता नारायणं स्वयम् ॥ २७ ॥

समाविष्टे हृषीकेशो देवमातुरथोदरम्।  
उत्पाता जङ्गिरे घोरा बलेवैरोचने: पुरे ॥ २८ ॥

निरीक्ष्य सर्वानुत्पातान् दैत्येन्द्रो भयविह्वलः।  
प्रह्लादमसुरं वृद्धं प्रणम्याह पितामहम् ॥ २९ ॥

बलिरुचाच

पितामह महाप्राज्ञ जायन्तेऽस्मत्पुरेऽधुना।  
किमुत्पाता भवेत् कार्यमस्माकं किंनिमित्तकाः ॥ ३० ॥  
निशम्य तस्य वचनं चिरं ध्यात्वा महासुरः।  
नमस्कृत्य हृषीकेशमिदं वचनमन्नवीत् ॥ ३१ ॥

प्रह्लाद उचाच

यो यज्ञेरिज्यते विष्णुर्यस्य सर्वमिदं जगत्।  
दधारासुरनाशार्थं माता तं त्रिदिवौकसाम् ॥ ३२ ॥

यस्मादभिन्नं सकलं भिद्यते योऽखिलादपि।  
स वासुदेवो देवानां मातुर्देहं समाविशत् ॥ ३३ ॥

न यस्य देवा जानन्ति स्वरूपं परमार्थतः।  
स विष्णुरदितेदेहं स्वेच्छयाऽद्य समाविशत् ॥ ३४ ॥

यस्माद् भवन्ति भूतानि यत्र संयान्ति संक्षयम्।  
सोऽवतीर्णो महायोगी पुराणपुरुषो हरिः ॥ ३५ ॥

सत्यनिष्ठ शम्भो ! आपको नमस्कार है। कारणरूप ! विश्वरूप ! आपको नमस्कार है। योगपीठके मध्यमें विराजमान रहनेवाले ! आपको नमस्कार है। हे एकरूप शिव ! आपको बार-बार नमस्कार है ॥ २३ ॥

देवमाता (अदिति)-के द्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जानेपर जगन्मय उन भगवान् कृष्ण-(विष्णु)-ने किंचित् हँसते हुए वर माँगनेके लिये कहा ॥ २४ ॥

सिरसे भूमिमें प्रणाम करते हुए तथा श्रेष्ठ वर माँगते हुए उसने (अदितिने) कहा—मैं देवताओंके कल्याणके लिये आपको ही पुत्ररूपमें प्राप्त करनेका वर माँगती हूँ। शरणागतवत्सल अप्रमेय भगवान् ‘ऐसा ही हो’ इतना कहकर तथा वरोंको प्रदानकर वहींपर अन्तर्धान हो गये ॥ २५-२६ ॥

तदनन्तर बहुत समय बीतनेके पश्चात् देवताओंकी माता (अदिति)-ने साक्षात् नारायण भगवान् जनार्दनको गर्भमें धारण किया। देवमाताके उदरमें हृषीकेशके प्रविष्ट होते ही विरोचनपुत्र बलिके नगरमें भयंकर उत्पात होने लगे। सभी उपद्रवोंको देखकर भयसे विह्वल हुआ दैत्यराज (बलि) वृद्ध पितामह असुर प्रह्लादको प्रणामकर कहने लगा— ॥ २७-२९ ॥

बलिने कहा—महाप्राज्ञ पितामह ! हमारे नगरमें इस समय ये उत्पात क्यों हो रहे हैं, इनका कारण क्या है ? हमें क्या करना चाहिये ? उसकी बात सुनकर महासुर (प्रह्लाद)-ने देरतक ध्यान किया और फिर हृषीकेशको नमस्कार करके यह वचन कहा— ॥ ३०-३१ ॥

प्रह्लाद बोले—यज्ञोद्वारा जिन विष्णुका यजन किया जाता है और यह सम्पूर्ण विश्व जिनका (स्वरूप) है, देवताओंकी माता (अदिति)-ने उन्हें ही असुरोंके विनाशके लिये (गर्भमें) धारण किया है। समस्त विश्व जिनसे अभिन्न है और जो समस्त विश्वसे भिन्न भी है, उन वासुदेवने देवताओंकी माताके शरीरमें प्रवेश किया है। देवता भी जिनके स्वरूपको यथार्थतः नहीं जानते वे विष्णु ही इस समय अपनी इच्छासे अदितिके देहमें प्रविष्ट हुए हैं ॥ ३२-३४ ॥

जिनसे सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं और जहाँ नाशको प्राप्त होते हैं वे महायोगी पुराणपुरुष हरि अवतीर्ण हुए हैं ॥ ३५ ॥

न यत्र विद्यते नामजात्यादिपरिकल्पना ।  
सत्तामात्रात्मरूपोऽसौ विष्णुरंशेन जायते ॥ ३६ ॥

यस्य सा जगतां माता शक्तिस्तद्वर्मधारिणी ।  
माया भगवती लक्ष्मीः सोऽवतीणो जनार्दनः ॥ ३७ ॥

यस्य सा तामसी मूर्तिः शंकरो राजसी तनुः ।  
ब्रह्मा संजायते विष्णुरंशेनैकेन सत्त्वभृत् ॥ ३८ ॥  
इत्थं विचिन्त्य गोविन्दं भक्तिन्प्रेण चेतसा ।  
तमेव गच्छ शरणं ततो यास्यसि निर्वृतिम् ॥ ३९ ॥

ततः प्रह्लादवचनाद् बलिवैरोचनिर्हरिम् ।  
जगाम शरणं विश्वं पालयामास धर्मतः ॥ ४० ॥  
काले प्रासे महाविष्णुं देवानां हर्षवर्धनम् ।  
असूत कश्यपाच्यैनं देवमातादितिः स्वयम् ॥ ४१ ॥

चतुर्भुजं विशालाक्षं श्रीवत्साङ्गितवक्षसम् ।  
नीलमेघप्रतीकाशं भ्राजमानं श्रियावृतम् ॥ ४२ ॥

उपतस्थुः सुराः सर्वे सिद्धाः साध्याश्च चारणाः ।  
उपेन्द्रमिन्द्रप्रमुखा ब्रह्मा चर्षिगणैर्वृतः ॥ ४३ ॥

कृतोपनयनो वेदानध्यैष्ट भगवान् हरिः ।  
समाचारं भरद्वाजात् त्रिलोकाय प्रदर्शयन् ॥ ४४ ॥  
एवं हि लौकिकं मार्गं प्रदर्शयति स प्रभुः ।  
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ ४५ ॥

ततः कालेन मतिमान् बलिवैरोचनिः स्वयम् ।  
यज्ञैर्यज्ञेश्वरं विष्णुमर्चयामास सर्वगम् ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणान् पूजयामास दत्त्वा बहुतरं धनम् ।  
ब्रह्मर्षयः समाजगमुर्यज्ञवाटं महात्मनः ॥ ४७ ॥

विज्ञाय विष्णुर्भर्गवान् भरद्वाजप्रचोदितः ।  
आस्थाय वामनं रूपं यज्ञदेशमथागमत् ॥ ४८ ॥  
कृष्णाजिनोपवीताङ्ग आषाढेन विराजितः ।  
ब्राह्मणो जटिलो वेदानुद्गिरन् भस्ममण्डितः ॥ ४९ ॥

सम्प्राप्यासुरराजस्य समीपं भिक्षुको हरिः ।  
स्वपादैर्विमितं देशमयाचत बलिं त्रिभिः ॥ ५० ॥

जिनमें नाम, जाति आदिकी परिकल्पना नहीं होती, सत्तामात्रसे व्यास रहनेवाले आत्मरूप वे ही विष्णु अपने अंशरूपसे प्रकट हो रहे हैं। जगत्की मातृरूपा और उसके (जगत्के) धर्मको धारण करनेवाली, भगवती लक्ष्मी जिनकी मायारूपी शक्ति हैं, वे जनार्दन ही अवतीर्ण हुए हैं। जिनकी तामसी मूर्ति शंकर हैं और राजसी मूर्ति ब्रह्मा हैं वे सत्त्वगुणको धारण करनेवाले विष्णु ही अपने एक अंशसे प्रकट हो रहे हैं ॥ ३६—३८ ॥

गोविन्दको इस प्रकार समझकर भक्तिसे विनम्र-चित्त हो उन्होंकी शरणमें जाओ, इससे तुम शान्ति प्राप्त करोगे। तब प्रह्लादके वचनसे विरोचनपुत्र बलि हरिकी शरण ग्रहण करता हुआ धर्मपूर्वक विश्वका पालन करने लगा ॥ ३९—४० ॥

समय आनेपर कश्यपसे स्वयं देवमाता अदितिने देवताओंके हर्षको बढ़ानेवाले उन महाविष्णुको जन्म दिया। वे (भगवान् विष्णु) चार भुजावाले, विशाल नेत्रवाले, श्रीवत्ससे सुशोभित वक्षःस्थलवाले, नीले मेघके समान, शोभासे व्यास एवं प्रकाशमान थे। सभी देवता, सिद्ध, साध्य, चारण तथा प्रधान इन्द्र, उपेन्द्र और ऋषिगणोंसे आवृत ब्रह्मा उनके समीपमें गये। उपनयन (यज्ञोपवीत-संस्कार) हो जानेके बाद भगवान् हरिने तीनों लोकोंको प्रदर्शित करते हुए भरद्वाजसे वेदों और सदाचारका अध्ययन किया ॥ ४१—४४ ॥

इस प्रकार वे प्रभु लौकिक (लोक-कल्याणकारी) मार्ग दिखाते हैं। वे जैसा प्रमाण उपस्थित करते हैं, संसार उसीका अनुवर्तन करता है। तदनन्तर समयानुसार विरोचनके पुत्र बुद्धिमान् बलिने यज्ञोंके द्वारा सर्वव्यापी यज्ञेश्वर विष्णुकी स्वयं अर्चना की। उसने (दक्षिणारूपमें) बहुत-सा धन देकर ब्राह्मणोंकी पूजा की। उस महात्माके यज्ञस्थलमें ब्रह्मर्षि आये। (यज्ञ हो रहा है ऐसा) जानकर भरद्वाजसे प्रेरणा प्राप्तकर भगवान् विष्णु वामनरूप धारणकर यज्ञदेशमें आये ॥ ४५—४८ ॥

शरीरपर कृष्णमृगका चर्म तथा उपवीत (यज्ञोपवीत-जनेऊ) धारण किये, पलाशके दण्डसे सुशोभित, जटा धारण किये तथा भस्मसे मण्डित वे ब्राह्मण वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए असुरराज बलिके समीप आये। उन भिक्षुक (वेशधारी) हरिने बलिसे अपने तीन पाँडोंद्वारा नापी गयी भूमिकी याचना की ॥ ४९—५० ॥

प्रक्षाल्य चरणौ विष्णोर्बलिर्भावसमन्वितः ।  
 आचामयित्वा भृङ्गरामादाय स्वर्णनिर्मितम् ॥ ५१ ॥  
 दास्ये तवेदं भवते पदत्रयं  
     प्रीणातु देवो हरिरव्ययाकृतिः ।  
 विचिन्त्य देवस्य कराग्रपल्लवे  
     निपातयामास जलं सुशीतलम् ॥ ५२ ॥  
 विचक्रमे पृथिवीमेष एता-  
     मथान्तरिक्षं दिवमादिदेवः ।  
 व्यपेतरागं दितिजेश्वरं तं  
     प्रकर्तुकामः शरणं प्रपन्नम् ॥ ५३ ॥  
 आक्रम्य लोकत्रयमीशपादः  
     प्राजापत्याद् ब्रह्मलोकं जगाम ।  
 प्रणेमुरादित्यसहस्रकल्पं  
     ये तत्र लोके निवसन्ति सिद्धाः ॥ ५४ ॥  
 अथोपतस्थे भगवाननादिः  
     पितामहस्तोषयामास विष्णुम् ।  
 भिन्त्वा तदण्डस्य कपालमूर्ध्वं  
     जगाम दिव्यावरणानि भूयः ॥ ५५ ॥  
 अथाण्डभेदान्निरपात शीतलं  
     महाजलं तत् पुण्यकृद्धिश्च जुष्टम् ।  
 प्रवर्तते चापि सरिद्विरा तदा  
     गङ्गेत्युक्ता ब्रह्मणा व्योमसंस्था ॥ ५६ ॥  
 गत्वा महान्तं प्रकृतिं प्रधानं  
     ब्रह्माणमेकं पुरुषं स्वबीजम् ।  
 अतिष्ठदीशस्य पदं तदव्ययं  
     दृष्ट्वा देवास्तत्र तत्र स्तुवन्ति ॥ ५७ ॥  
 आलोक्य तं पुरुषं विश्वकायं  
     महान् बलिर्भक्तियोगेन विष्णुम् ।  
 ननाम नारायणमेकमव्ययं  
     स्वचेतसा यं प्रणमन्ति देवाः ॥ ५८ ॥  
 तमब्रवीद् भगवानादिकर्ता  
     भूत्वा पुनर्वामनो वासुदेवः ।  
 ममैव दैत्याधिपतेऽधुनेदं  
     लोकत्रयं भवता भावदत्तम् ॥ ५९ ॥  
 प्रणम्य मूर्ध्ना पुनरेव दैत्यो  
     निपातयामास जलं कराग्रे ।

बलिने भावपूर्वक विष्णुके दोनों चरणोंको धोकर स्वर्णनिर्मित भृङ्गर (टोटीदार पात्र) लेकर उन्हें आचमन कराया और 'मैं आपको आपके ही तीन पगवाली (भूमि) देता हूँ, इससे अव्यय आकृतिवाले देव हरि प्रसन्न हों' ऐसा संकल्पकर उन देवके कराग्रपल्लवपर सुशीतल जल गिराया। शरणमें आये हुए उस दैत्यराजको आसक्तिरहित बनानेकी इच्छासे उन आदिदेवने पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें पाद-विक्षेप किया। तीनों लोकोंको आक्रान्तकर ईश्वरका चरण प्रजापतिके लोकसे ब्रह्मलोकमें पहुँचा। उस लोकमें निवास करनेवाले जो सिद्धजन थे, उन्होंने हजारों आदित्यके समान (प्रकाशमान) उस चरणको प्रणाम किया ॥ ५१—५४ ॥

तदनन्तर अनादि भगवान् पितामहने वहाँ उपस्थित होकर विष्णुको प्रसन्न किया। उस ब्रह्माण्डके ऊपरी कपालको भेदकर पुनः वह चरण दिव्य आवरणोंमें चला गया। उस अण्डका भेदन होनेसे पुण्य करनेवालोंद्वारा सेवित वह शीतल महाजल नीचे गिरा। तभीसे आकाशमें स्थित वह नदियोंमें श्रेष्ठ नदी प्रवर्तित हुई जिसे ब्रह्मने 'गङ्गा' नामसे अभिहित किया ॥ ५५—५६ ॥

ईश्वरका वह चरण महान्, प्रधान, प्रकृति, स्वबीज-स्वरूप अद्वितीय पुरुष ब्रह्मपर्यन्त पहुँचकर स्थित हो गया। उस अव्यय पदका दर्शनकर विभिन्न स्थानोंके देवता स्तुति करने लगे। उन संसाररूपी शरीरवाले पुरुष विष्णुको देखकर महान् बलिने उन अद्वितीय अव्यय नारायणको अपने भक्तिपूरित चित्तसे प्रणाम किया, जिन्हें सभी देवता प्रणाम करते रहते हैं ॥ ५७-५८ ॥

आदिकर्ता भगवान् वासुदेवने पुनः वामनरूप धारणकर उस (बलि)-से कहा—दैत्याधिपते! इस समय भक्तिपूर्वक आपके द्वारा दिये गये ये तीनों लोक अब मेरे ही हैं ॥ ५९ ॥

दैत्यने पुनः सिरेसे प्रणामकर हाथोंके अग्रभागमें जल गिराया (और कहा—) अनन्तधाम! त्रिविक्रम!

दास्ये तवात्मानमनन्तथाम्ने  
त्रिविक्रमायामितविक्रमाय ॥ ६० ॥

प्रगृह्ण सूनोरपि सम्प्रदत्तं  
प्रह्लादसूनोरथ शङ्खपाणिः ।

जगाद दैत्यं जगदन्तरात्मा  
पातालमूलं प्रविशेति भूयः ॥ ६१ ॥

समास्यतां भवता तत्र नित्यं  
भुक्त्वा भोगान् देवतानामलभ्यान् ।

ध्यायस्व मां सततं भक्तियोगात्  
प्रवेश्यसे कल्पदहे पुनर्माम् ॥ ६२ ॥

उक्त्वैव दैत्यसिंहं तं विष्णुः सत्यपराक्रमः ।  
पुरंदराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुरुक्रमः ॥ ६३ ॥

संस्तुवन्ति महायोगं सिद्धा देवर्षिकिञ्चराः ।  
ब्रह्मा शक्रोऽथ भगवान् रुद्रादित्यमरुदगणाः ॥ ६४ ॥

कृत्वैतदद्भुतं कर्म विष्णुर्वामनस्तपथृक् ।  
पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६५ ॥

सोऽपि दैत्यवरः श्रीमान् पातालं प्राप चोदितः ।  
प्रह्लादेनासुरवैर्विष्णुना विष्णुतत्परः ॥ ६६ ॥

अपृच्छद विष्णुमाहात्म्यं भक्तियोगमनुत्तमम् ।  
पूजाविधानं प्रह्लादं तदाहासौ चकार सः ॥ ६७ ॥

अथ रथचरणासिशङ्खपाणिं  
सरसिजलोचनमीशमप्रमेयम् ।

शरणमुपययौ स भावयोगात्  
प्रणतगतिं प्रणिधाय कर्मयोगम् ॥ ६८ ॥

एष वः कथितो विग्रा वामनस्य पराक्रमः ।  
स देवकार्याणि सदा करोति पुरुषोत्तमः ॥ ६९ ॥

अमित पराक्रमी! मैं अपने-आपको तुम्हें प्रदान करता हूँ। प्रह्लादके पुत्रके भी पुत्र अर्थात् बलिके द्वारा भलीभौति दिया हुआ तीनों लोक ग्रहणकर संसारके अन्तरात्मा शङ्खपाणि (भगवान् विष्णु)-ने दैत्यसे पुनः कहा—(अब आप) पातालमूलमें प्रवेश करें। आप वहाँ नित्य रहते हुए देवताओंको भी प्राप न होनेवाले भोगोंका उपभोगकर भक्तियोगद्वारा मेरा निरन्तर ध्यान करते रहें। कल्पान्त होनेपर पुनः मुझमें ही (आप) प्रवेश करेंगे ॥ ६०—६२ ॥

उस दैत्यश्रेष्ठसे इस प्रकार कहकर सत्यपराक्रम तथा विशाल डगोंवाले विष्णुने तीनों लोक इन्द्रको दे दिये। सिद्ध, देवता, ऋषि, किञ्चर, ब्रह्मा, इन्द्र, भगवान् रुद्र, आदित्य तथा मरुदण्ण (उन) महायोगीकी स्तुति करने लगे ॥ ६३-६४ ॥

ऐसा अद्भुत कार्य करके वामन-रूप धारण करनेवाले विष्णु सभीके देखते-ही-देखते वहाँ अन्तर्धान हो गये। वह विष्णुपरायण श्रीसम्पन्न दैत्यश्रेष्ठ (बलि) भी विष्णुसे प्रेरित होकर प्रह्लाद एवं अन्य श्रेष्ठ असुरोंके साथ पातालमें चला गया ॥ ६५-६६ ॥

उसने प्रह्लादसे विष्णुका माहात्म्य, श्रेष्ठतम भक्तियोग तथा पूजनका विधान पूछा। तब उनके द्वारा बताये जानेपर उसने वैसा ही किया। तदनन्तर भक्तिपूर्वक कर्मयोगका आचरण कर वह शरणागतोंके आश्रयस्थल, हाथोंमें चक्र, तलवार तथा शंख धारण करनेवाले, कमलके समान नेत्रवाले, अप्रमेय ईश्वरकी शरणमें गया ॥ ६७-६८ ॥

ब्राह्मणो! इस प्रकार यह (भगवान्) वामनके पराक्रमको मैंने बतलाया। ये पुरुषोत्तम सदा देवताओंके कार्योंको करते रहते हैं ॥ ६९ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६ ॥



## सत्रहवाँ अध्याय

**बलिपुत्र बाणासुरका वृत्तान्त, दक्ष प्रजापतिकी दनु, सुरसा आदि  
कन्याओंकी संतानोंका वर्णन**

सूत उवाच

**बले:** पुत्रशतं त्वासीन्महाबलपराक्रमम्।  
तेषां प्रथानो द्युतिमान् बाणो नाम महाबलः ॥ १ ॥

**सोऽतीव शंकरे भक्तो राजा राज्यमपालयत्।**  
**त्रैलोक्यं वशमानीय बाध्यामास वासवम् ॥ २ ॥**

**ततः शक्रादयो देवा गत्वोचुः कृत्तिवाससम्।**  
**त्वदीयो बाधते हास्मान् बाणो नाम महासुरः ॥ ३ ॥**

**व्याहृतो दैवतैः सर्वेऽर्द्धवदेवो महेश्वरः।**  
**ददाह बाणस्य पुरं शरेणैकेन लीलया ॥ ४ ॥**

**दद्यामाने पुरे तस्मिन् बाणो रुद्रं त्रिशूलिनम्।**  
**ययौ शरणमीशानं गोपतिं नीललोहितम् ॥ ५ ॥**

**मूर्धन्याधाय तल्लिङ्गं शाभ्वं भीतिवर्जितः।**  
**निर्गत्य तु पुरात् तस्मात् तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ ६ ॥**

**संस्तुतो भगवानीशः शंकरो नीललोहितः।**  
**गाणपत्येन बाणं तं योजयामास भावतः ॥ ७ ॥**

**अथाभवन् दनोः पुत्रास्ताराद्या हातिभीषणाः।**  
**तारस्तथा शम्बरश्च कपिलः शंकरस्तथा।**

**स्वर्भानुर्वृष्पर्वा च प्राथान्येन प्रकीर्तिताः ॥ ८ ॥**

**सुरसायाः सहस्रं तु सर्पणामभवद् द्विजाः।**  
**अनेकशिरसां तद्वत् खेचराणां महात्मनाम् ॥ ९ ॥**

**अरिष्टा जनयामास गन्धर्वाणां सहस्रकम्।**  
**अनन्ताद्या महानागाः काद्रवेयाः प्रकीर्तिताः ॥ १० ॥**

**ताम्रा च जनयामास षट् कन्या द्विजपुंगवाः।**  
**शुक्रीं श्येनीं च भासीं च सुग्रीवां गृध्रिकां शुचिम् ॥ ११ ॥**

**गास्तथा जनयामास सुरभिर्महिषीस्तथा।**  
**इरा वृक्षलतावल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः ॥ १२ ॥**

**खसा वै यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा।**  
**रक्षोगणं क्रोधवशा जनयामास सत्तमाः ॥ १३ ॥**

**सूतजी बोले—**बलिके महान् बल और पराक्रमवाले सौ पुत्र थे, उनमें प्रधान पुत्रका नाम 'बाण' था, जो द्युतिमान् और अत्यन्त बलवान् था। भगवान् शंकरमें अत्यन्त भक्तिवाले उस राजा (बाण)-ने राज्यका पालन करते हुए त्रिलोकीको अपने वशमें करके इन्द्रको पीड़ित किया। तब इन्द्रादि देवता कृत्तिवासा<sup>१</sup> (शंकर)-के पास जाकर कहने लगे—(भगवन्!) आपका भक्त 'बाण' नामक महान् असुर हमें पीड़ित कर रहा है ॥ १—३ ॥

सभी देवताओंके द्वारा ऐसा कहे जानेपर देवाधिदेव महेश्वरने एक बाणसे लीलापूर्वक 'बाण' के नगरको दाघ कर दिया। उस नगरके जलनेपर बाण त्रिशूलधारी, गोपति (वृषवाहन) नीललोहित ईशान रुद्रकी शरणमें गया ॥ ४—५ ॥

शम्भुके लिंगको सिरपर धारणकर वह निर्भयतापूर्वक अपने नगरसे बाहर निकल गया और परमेश्वर (शंकर)-की स्तुति करने लगा। स्तुति करनेपर नीललोहित, शंकर भगवान् ईशने स्नेहवश उस बाणासुरको गणपतिका पद प्रदान किया ॥ ६—७ ॥

दनुके<sup>२</sup> तार आदि अत्यन्त भीषण पुत्र हुए। उनमें तार, शम्बर, कपिल, शंकर, स्वर्भानु तथा वृषपर्वा प्रधान कहे गये हैं। द्विजो! दक्षप्रजापतिकी कन्या सुरसाके अनेक फणोंवाले हजार सर्प पुत्ररूपमें हुए। इसी प्रकार अरिष्टने हजारों आकाशचारी महात्मा गन्धर्वोंको उत्पन्न किया। अनन्त आदि महानाग कद्रूके पुत्र कहे गये हैं ॥ ८—१० ॥

द्विजश्रेष्ठो! ताम्राने छः कन्याओंको जन्म दिया, जो शुक्री, श्येनी, भासी, सुग्रीवा, गृध्रिका तथा शुचि नामवाली हैं। सुरभिने गौओं तथा महिषियों (भैंसों)-को उत्पन्न किया। इनाने सभी प्रकारके वृक्ष, लता, वली तथा तृण-जातिवालोंको जन्म दिया। द्विजसत्तमो! खसाने यक्षों तथा राक्षसोंको, मुनिने अप्सराओंको और क्रोधवशाने राक्षसोंको उत्पन्न किया ॥ ११—१३ ॥

१—कृति (व्याघ्रचर्म)-को वसन (वस्त्र)-रूपमें धारण करनेवाले।

२—‘दनु’ दक्षप्रजापतिकी कन्या है। इसका विवाह कश्यपसे हुआ था।

विनतायाश्च पुत्रौ द्वौ प्रख्यातौ गरुडारुणौ ।  
तयोश्च गरुडो धीमान् तपस्तप्त्वा सुदुश्शरम् ।  
प्रसादाच्छूलिनः प्राप्तो वाहनत्वं हरेः स्वयम् ॥ १४ ॥

आराध्य तपसा रुद्रं महादेवं तथारुणः ।  
सारथ्ये कल्पितः पूर्वं प्रीतेनार्कस्य शाश्वता ॥ १५ ॥

एते कश्यपदायादाः कीर्तिः स्थाणुजङ्गमाः ।  
वैवस्वतेऽन्ते हृस्मिन्दृष्टवतां पापनाशनाः ॥ १६ ॥

सप्तविंशत् सुताः प्रोक्ताः सोमपत्न्यश्च सुव्रताः ।  
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ॥ १७ ॥

बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ।  
तद्वदङ्गिरसः पुत्रा ऋषयो ब्रह्मसत्कृताः ॥ १८ ॥

कृशाश्वस्य तु देवर्षेदेवप्रहरणाः सुताः ।  
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ।  
मन्वन्तरेषु नियतं तुल्यैः कार्यैः स्वनामभिः ॥ १९ ॥

विनताके दो विख्यात पुत्र हुए—गरुड तथा अरुण ।  
उनमेंसे बुद्धिमान् गरुडने दुस्तर तप करके भगवान्  
शंकरकी कृपासे साक्षात् हरिके वाहन होनेका सौभाग्य  
प्राप्त किया । इसी प्रकार पूर्वकालमें अरुणने महादेव  
रुद्रकी तपस्याद्वारा आराधना की, इससे महादेवने प्रसन्न  
होकर उसे सूर्यका सारथी बना दिया ॥ १४—१५ ॥

इस वैवस्वत मन्वन्तरमें स्थावर तथा जंगम-रूप ये  
(महर्षि) कश्यपके वंशज कहे गये हैं । इनका वर्णन  
सुननेवालोंके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १६ ॥

शोभन ब्रतवाले द्विजो ! (दक्षकी) सत्ताईस कन्याएँ  
चन्द्रमाकी पत्नियाँ कही गयी हैं । अरिष्टनेमिकी पत्नियोंकी  
सोलह संतानें हुईं । विद्वान् बहुपुत्रके चार विद्युत् नाम-  
वाले पुत्र कहे गये हैं । इसी प्रकार अङ्गिराके पुत्र ब्रह्मा-  
द्वारा सम्मान-प्राप्त श्रेष्ठ ऋषि थे । देवर्षि कृशाश्वके पुत्र  
देवप्रहरण अर्थात् देवोंके शस्त्र थे । हजार युगोंका अन्त  
होनेपर विभिन्न मन्वन्तरोंमें ये अपने नामोंके समान कार्योंके  
साथ निश्चितरूपसे पुनः उत्पन्न होते हैं ॥ १७—१९ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्राणां संहितायां पूर्वविभागे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

## अठारहवाँ अध्याय

महर्षि कश्यप तथा पुलस्त्य आदि ऋषियोंके वंशका वर्णन, रावण तथा कुम्भकर्ण  
आदिकी उत्पत्ति, वसिष्ठके वंश-वर्णनमें व्यास, शुकदेव आदिकी उत्पत्तिकी  
कथा, भगवान् शंकरका ही शुकदेवके रूपमें आविर्भूत होना

सूत उचाच

एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासंतानकारणात् ।  
कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार सुमहत् तपः ॥ १ ॥  
तस्य वै तपतोऽत्यर्थं प्रादुर्भूतौ सुताविमौ ।  
वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ॥ २ ॥  
वत्सरान्नैधुवो जज्ञे रैभ्यश्च सुमहायशाः ।  
रैभ्यस्य जज्ञिरे रैभ्याः पुत्रा द्युतिमतां वराः ॥ ३ ॥  
च्यवनस्य सुता पत्नी नैधुवस्य महात्मनः ।  
सुमेधा जनयामास पुत्रान् वै कुण्डपायिनः ॥ ४ ॥  
असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत ।  
नामा वै देवलः पुत्रो योगाचार्यो महात्माः ॥ ५ ॥

सूतजी बोले—प्रजाकी अभिवृद्धिके लिये इन  
पुत्रोंको उत्पन्न कर पुत्राभिलाषी कश्यप अत्यन्त  
महान् तप करने लगे । कठोर तप कर रहे उनके  
'वत्सर' तथा 'असित' नामके दो पुत्र हुए । वे  
दोनों ही ब्रह्मवादी थे । वत्सरसे नैधुव और रैभ्य  
नामके महान् यशस्वी पुत्र उत्पन्न हुए । रैभ्यके  
तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ रैभ्य नामक पुत्र हुआ । च्यवन  
ऋषिकी (सुमेधा नामवाली) पुत्री महात्मा नैधुवकी  
पत्नी थी । सुमेधाने 'कुण्डपायी' पुत्रोंको उत्पन्न किया ।  
असितकी एकपर्णा नामक पत्नीने ब्रह्मिष्ठ पुत्रको  
उत्पन्न किया जो देवल नामवाले थे, वे योगके आचार्य,

शाणिडल्यानां परः श्रीमान् सर्वतत्त्वार्थवित् सुधीः।  
प्रसादात् पार्वतीशस्य योगमुत्तममासवान्॥ ६ ॥

शाणिडल्या नैध्रुव रैभ्यास्त्रयः पक्षास्तु काश्यपाः।  
नरप्रकृतयो विप्राः पुलस्त्यस्य वदामि वः॥ ७ ॥

तृणबिन्दोः सुता विप्रा नाम्ना त्विलविला स्मृता।  
पुलस्त्याय स राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत्॥ ८ ॥

ऋषिस्त्वैलविलिस्तस्यां विश्रवाः समपद्यत।  
तस्य पत्न्यश्चतत्त्वस्तु पौलस्त्यकुलवर्धिकाः॥ ९ ॥

पुष्पोत्कटा च राका च कैकसी देववर्णिनी।  
रूपलावण्यसम्पन्नास्तासां वै शृणुत प्रजाः॥ १० ॥

ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्य सुषुवे देवरूपिणी।  
कैकसी जनयत् पुत्रं रावणं राक्षसाधिपम्॥ ११ ॥

कुम्भकर्णं शूर्पणखां तथैव च विभीषणम्।  
पुष्पोत्कटा व्यजनयत् पुत्रान् विश्रवसः शुभान्॥ १२ ॥

महोदरं प्रहस्तं च महापाश्वं खरं तथा।  
कुम्भीनसीं तथा कन्यां राकायां शृणुत प्रजाः॥ १३ ॥

त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युजिह्वो महाबलः।  
इत्येते कूरकर्मणः पौलस्त्या राक्षसा दश।  
सर्वे तपोबलोत्कृष्टा रुद्रभक्ताः सुभीषणाः॥ १४ ॥

पुलहस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्यालाश्च दंष्ट्रिणः।  
भूताः पिशाचाः सर्पश्च शूकरा हस्तिनस्तथा॥ १५ ॥

अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैवस्वतेऽन्तरे।  
मरीचेः कशयपः पुत्रः स्वयमेव प्रजापतिः॥ १६ ॥

भृगोरप्यभवच्छक्रो दैत्याचार्यो महातपाः।  
स्वाध्याययोगनिरतो हरभक्तो महाद्युतिः॥ १७ ॥

अत्रेः पत्न्योऽभवन् बह्यः सोदर्यास्ताः पतिव्रताः।  
कृशाश्वस्य तु विप्रेन्ना घृताच्यामिति मे श्रुतम्॥ १८ ॥

स तासु जनयामास स्वस्त्यात्रेयान् महौजसः।  
वेदवेदाङ्गनिरतांस्तपसा हतकिल्बिषान्॥ १९ ॥

नारदस्तु वसिष्ठाय ददौ देवीमरुन्धतीम्।  
ऊर्ध्वरैतास्तत्र मुनिः शापाद् दक्षस्य नारदः॥ २० ॥

महान् तपस्वी शाणिडल्योंमें श्रेष्ठ, श्रीमान्, सभी तत्त्वार्थोंके जाननेवाले तथा विद्वान् थे। पार्वतीके पति भगवान् शंकरकी कृपासे उन्होंने श्रेष्ठ योग प्राप्त किया॥ १—६ ॥

शाणिडल्य, नैध्रुव तथा रैभ्य—ये तीनों शाखाएँ कशयपवंशीय और मानव प्रकृतिवाली हैं। ब्राह्मणो! आपको अब पुलस्त्य ऋषिके वंशको बताता हूँ। विप्रो! तृणबिन्दुकी एक पुत्री थी जो इलविला नामसे प्रसिद्ध थी। उन राजर्षिने वह कन्या पुलस्त्यको प्रदान की। उस इलविलासे विश्रवा ऋषि उत्पन्न हुए। उनकी पुष्पोत्कटा, राका, कैकसी तथा देववर्णिनी नामकी चार पत्नियाँ थीं, जो पुलस्त्यके वंशको बढ़ानेवाली तथा रूप और लावण्यसे सम्पन्न थीं। अब आप उनकी संतानोंको सुनें—॥ ७—१० ॥

उनकी देवरूपिणी (देववर्णिनी) (नामक पती)-ने ज्येष्ठ वैश्रवण (कुबेर)-को जन्म दिया। कैकसीने राक्षसोंके अधिपति रावण नामक पुत्र और इसी प्रकार कुम्भकर्ण, शूर्पणखा तथा विभीषणको जन्म दिया। पुष्पोत्कटने भी महोदर, प्रहस्त, महापार्श्व और खर नामक विश्रवाके शुभ पुत्रों और कुम्भीनसी नामक कन्याको जन्म दिया। अब आप राकाकी संतान सुनें—॥ ११—१३ ॥

त्रिशिरा, दूषण तथा महाबली विद्युजिह्वा—ये राकाके पुत्र थे। पुलस्त्यके ये सभी दस राक्षस-पुत्र कूर कर्म करनेवाले, अत्यन्त भयंकर, उत्कट तपोबलवाले और रुद्रके भक्त थे। मृग, व्याल, दाढ़ोंवाले (प्राणी), भूत, पिशाच, सर्प, शूकर तथा हाथी—ये सभी पुलह (ऋषि)-के पुत्र हैं। उस वैवस्वत मन्वन्तरमें (महर्षि) क्रतुको संतानहीन कहा गया है। प्रजापति कशयप मरीचिके पुत्र थे। भृगुके भी शूक्र नामक पुत्र हुए जो दैत्योंके आचार्य, महान् तपस्वी, स्वाध्याय तथा योगपरायण, अत्यन्त तेजस्वी और शंकरके भक्त थे। श्रेष्ठ ब्राह्मणो! अत्रिकी बहुत-सी पत्नियाँ थीं। वे पतिव्रता तथा आपसमें बहने थीं। हमने सुना है कि वे घृताचीसे उत्पन्न कृशाश्वकी पुत्रियाँ थीं॥ १४—१८ ॥

उन्होंने उन पत्नियोंसे महान् ओजस्वी, वेद-वेदाङ्ग-परायण और तपस्याद्वारा अपने पापोंको नष्ट करनेवाले कल्याणकारी आत्रेयों (स्वस्त्यात्रेयों)-को उत्पन्न किया। नारदने देवी अरुन्धतीको वसिष्ठके लिये प्रदान किया। दक्षके शापसे नारद मुनि ऊर्ध्वरैता हो गये॥ १९—२० ॥

हर्यश्वेषु तु नष्टेषु मायया नारदस्य तु।  
शशाप नारदं दक्षः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २१ ॥

यस्मान्मम सुताः सर्वे भवतो मायया द्विज।  
क्षयं नीतास्त्वशेषेण निरपत्यो भविष्यति ॥ २२ ॥

अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयत् सुतम्।  
शक्तेः पराशरः श्रीमान् सर्वज्ञस्तपतां वरः ॥ २३ ॥

आराध्य देवदेवेशमीशानं त्रिपुरान्तकम्।  
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् ॥ २४ ॥  
द्वैपायनाच्छुको जज्ञे भगवानेव शंकरः।  
अंशांशेनावतीर्योर्व्यां स्वं प्राप परमं पदम् ॥ २५ ॥

शुकस्याप्यभवन् पुत्राः पञ्चात्यन्ततपस्विनः।  
भूरिश्रिवाः प्रभुः शम्भुः कृष्णो गौरश्च पञ्चमः।  
कन्या कीर्तिमती चैव योगमाता धृतव्रता ॥ २६ ॥

एतेऽत्र वंशयाः कथिता ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनाम्।  
अत ऊर्ध्वं निबोधध्वं कश्यपाद्राजसंततिम् ॥ २७ ॥

नारदकी मायासे हर्यश्वेषोंके नष्ट हो जानेपर क्रोधसे लाल आँखोंवाले दक्षने नारदको (इस प्रकार) शाप दिया— ॥ २१ ॥

‘द्विज! चूँकि आपकी मायासे मेरे सभी पुत्र सभी प्रकारसे विनाशको प्राप हो गये, अतः आप भी संतानरहित होंगे।’ वसिष्ठने अरुन्धतीसे शक्ति नामक पुत्र उत्पन्न किया। शक्तिके पराशर हुए जो श्रीसम्पन्न, सर्वज्ञ तथा तपस्वियोंमें श्रेष्ठ थे। उन्होंने त्रिपुरका नाश करनेवाले देवाधिदेव शंकरकी आराधनाकर कृष्णद्वैपायन नामवाले अप्रतिम एवं शक्तिसम्पन्न पुत्रको प्राप किया ॥ २२—२४ ॥

भगवान् शंकर ही शुक नामसे द्वैपायनके पुत्र हुए। पृथ्वीपर अपने अंशांशरूपसे उत्पन्न होकर (पुनः) अपने परम पदको प्राप हुए। शुकके महान् तपस्वी पाँच पुत्र हुए, वे भूरिश्रिवा, प्रभु, शम्भु, कृष्ण तथा पाँचवें गौर नामवाले थे। साथ ही कीर्तिमती नामकी एक कन्या भी हुई, जो योगमाता और ब्रतपरायणा थी ॥ २५—२६ ॥

इन ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंके वंशजोंका यह वर्णन किया गया, अब आगे कश्यपसे उत्पन्न क्षत्रिय संतानोंका वर्णन सुनो— ॥ २७ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८ ॥

## उन्नीसवाँ अध्याय

सूर्यवंश-वर्णनमें वैवस्वत मनुकी संतानोंका वर्णन, युवनाश्वको गौतमका उपदेश,  
महातपस्वी राजा वसुमनाकी कथा, वसुमनाके अश्वमेध-यज्ञमें ऋषियों तथा  
देवताओंका आगमन, ऋषियोंद्वारा तपस्याकी आज्ञा प्राप्तकर वसुमनाका  
हिमालयमें जाकर तप करना और अन्तमें उसे शिवपदकी प्राप्ति

सूत उवाच

अदितिः सुषुवे पुत्रमादित्यं कश्यपात् प्रभुम्।  
तस्यादित्यस्य चैवासीद् भार्याणां तु चतुष्टयम्।  
संज्ञा राज्ञी प्रभा छाया पुत्रांस्तासां निबोधत ॥ १ ॥  
संज्ञा त्वाष्ट्री च सुषुवे सूर्यान्मनुमनुत्तमम्।  
यमं च यमुनां चैव राज्ञी रैवतमेव च ॥ २ ॥  
प्रभा प्रभातमादित्याच्छाया सावर्णमात्मजम्।  
शनिं च तपर्तीं चैव विष्टि चैव यथाक्रमम् ॥ ३ ॥

सूतजी बोले— अदितिने कश्यपसे शक्तिशाली ‘आदित्य’ नामक पुत्रको उत्पन्न किया। उस आदित्यकी संज्ञा, राज्ञी, प्रभा तथा छाया नामवाली चार पत्रियाँ थीं। उनके पुत्रोंको सुनो— त्वष्टा (विश्वकर्मा)-की पुत्री संज्ञाने सूर्यसे श्रेष्ठ मनु, यम और यमुनाको उत्पन्न किया और राज्ञीने रैवतको उत्पन्न किया। प्रभाने आदित्यसे प्रभातको उत्पन्न किया। छायाने क्रमशः सावर्ण, शनि, तपती और विष्टि नामक संतानोंको जन्म दिया ॥ १—३ ॥

मनोस्तु प्रथमस्यासन् नवं पुत्रास्तु संयमाः ।  
 इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ॥ ४ ॥  
 नरिष्यन्तश्च नाभागो हरिष्टः कारुषकस्तथा ।  
 पृष्ठधश्च महातेजा नवैते शक्रसंनिभाः ॥ ५ ॥  
 इला ज्येष्ठा वरिष्ठा च सोमवंशविवृद्धये ।  
 बुधस्य गत्वा भवनं सोमपुत्रेण संगता ॥ ६ ॥

असूत सौम्यजं देवी पुरुरवसमुत्तमम् ।  
 पितृणां तृसिकर्तारं बुधादिति हि नः श्रुतम् ॥ ७ ॥

सम्प्राप्य पुस्त्वममलं सुद्युम्न इति विश्रुतः ।  
 इला पुत्रत्रयं लेभे पुनः स्त्रीत्वमविन्दत ॥ ८ ॥

उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वस्तथैव च ।  
 सर्वे तेऽप्रतिमप्रख्याः प्रपन्नाः कमलोद्धवम् ॥ ९ ॥  
 इक्ष्वाकोशाभवद् वीरो विकुक्षिर्नाम पार्थिवः ।  
 ज्येष्ठः पुत्रशतस्यापि दश पञ्च च तत्सुताः ॥ १० ॥

तेषां ज्येष्ठः ककुत्स्थोऽभूत् काकुत्स्थो हि सुयोधनः ।  
 सुयोधनात् पृथुः श्रीमान् विश्वकश्च पृथोः सुतः ॥ ११ ॥

विश्वकादार्द्रको धीमान् युवनाश्वस्तु तत्सुतः ।  
 स गोकर्णमनुप्राप्य युवनाश्चः प्रतापवान् ॥ १२ ॥

दृष्टा तु गौतमं विप्रं तपन्तमनलप्रभम् ।  
 प्रणम्य दण्डवद् भूमौ पुत्रकामो महीपतिः ।  
 अपृच्छत् कर्मणा केन धार्मिकं प्राज्ञयात् सुतम् ॥ १३ ॥

## गौतम उवाच

आराध्य पूर्वपुरुषं नारायणमनामयम् ।  
 अनादिनिधनं देवं धार्मिकं प्राज्ञयात् सुतम् ॥ १४ ॥

यस्य पुत्रः स्वयं ब्रह्मा पौत्रः स्यान्नीललोहितः ।  
 तमादिकृष्णमीशानमाराध्याज्ञोति सत्सुतम् ॥ १५ ॥

न यस्य भगवान् ब्रह्मा प्रभावं वेत्ति तत्त्वतः ।  
 तमाराध्य हृषीकेशं प्राज्ञयाद्धार्मिकं सुतम् ॥ १६ ॥

स गौतमवचः श्रुत्वा युवनाश्चो महीपतिः ।  
 आराधयन्महायोगं वासुदेवं सनातनम् ॥ १७ ॥

प्रथम मनुके नौ पुत्र थे जो इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, कारुषक तथा पृष्ठध नामवाले थे। ये नवों पुत्र इन्द्रियजयी, महान् तेजसे सम्पन्न तथा इन्द्रके समान थे ॥ ४-५ ॥

(मनुकी) ज्येष्ठ एवं वरिष्ठ (पुत्री) इलाने\* सोमवंशकी अभिवृद्धिके लिये बुधके भवनमें जाकर सोमपुत्र (बुध)-के साथ संगति की और हमने सुना है कि उस देवीने बुधसे श्रेष्ठ पुरुरवाको उत्पन्न किया। वह पितरोंको तृसि प्रदान करनेवाला था। (पुत्र प्राप्त करनेके उपरान्त इलाको) विशुद्ध पुरुषत्वकी प्राप्ति हुई जो सुद्युम्न नामसे विख्यात हुआ। (पुरुषरूपमें) इलाने उत्कल, गय तथा विनताश्च नामक तीन पुत्रोंको प्राप्त किया, तदनन्तर वह पुनः स्त्री हो गयी, वे सभी अतुलनीय कीर्तिमान् तथा ब्रह्मपरायण थे ॥ ६-९ ॥

मनुके ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकुसे विकुक्षि नामक वीर राजा हुए। विकुक्षि सौ पुत्रोंमें ज्येष्ठ थे। उनके पदंह पुत्र हुए। उनमें ककुत्स्थ सबसे बड़े थे। ककुत्स्थका पुत्र सुयोधन था। सुयोधनसे श्रीमान् पृथु उत्पन्न हुए और विश्वक पृथुके पुत्र थे। विश्वकसे बुद्धिमान् आर्द्रक हुए और उनके पुत्र युवनाश्च हुए। प्रतापी वे युवनाश्च गोकर्ण तीर्थमें गये ॥ १०-१२ ॥

वहाँ तप कर रहे अग्नि-सदृश विप्र गौतमका दर्शन-कर पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे युवनाश्चने भूमिमें दण्डवत् प्रणाम किया और उनसे (गौतमसे) पूछा—(भगवन्!) किस कर्मके द्वारा धर्मात्मा पुत्रको प्राप्त किया जा सकता है— ॥ १३ ॥

गौतमने कहा—आदि और अन्तसे रहित, अनामय, पूर्वपुरुष नारायणदेवकी आराधनासे धर्मात्मा पुत्रकी प्राप्ति होती है। जिनके पुत्र स्वयं ब्रह्मा हैं और (जिनके) पौत्र नीललोहित शंकर हैं, उन आदिकृष्ण ईशानकी आराधनासे (मनुष्य) सत्पुत्र प्राप्त करता है। भगवान् ब्रह्मा भी जिनके प्रभावको तत्त्वतः नहीं जानते हैं, उन हृषीकेशकी आराधनासे धार्मिक पुत्रको प्राप्त करना चाहिये ॥ १४-१६ ॥

गौतमके वचनको सुनकर उस पृथ्वीपति युवनाश्चने महायोगी सनातन वासुदेवकी आराधना प्रारम्भ की ॥ १७ ॥

\* राजा सुद्युम्नकी कथामें 'इला' की उत्पत्तिका वर्णन है।

तस्य पुत्रोऽभवद् वीरः श्रावस्तिरिति विश्रुतः ।  
निर्मिता येन श्रावस्तिगांडदेशे महापुरी ॥ १८ ॥

तस्माच्च बृहदश्वोऽभूत् तस्मात् कुवलयाश्वकः ।  
धुन्धुमारत्वमगमद् धुन्धुं हत्वा महासुरम् ॥ १९ ॥

धुन्धुमारस्य तनयास्त्रयः प्रोक्ता द्विजोत्तमाः ।  
दृढाश्वश्चैव दण्डाश्वः कपिलाश्वस्तथैव च ॥ २० ॥

दृढाश्वस्य प्रमोदस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः ।  
हर्यश्वस्य निकुम्भस्तु निकुम्भात् संहताश्वकः ॥ २१ ॥

कृशाश्वश्च रणाश्वश्च संहताश्वस्य वै सुतौ ।  
युवनाश्वो रणाश्वस्य शक्रतुल्यबलो युधि ॥ २२ ॥

कृत्वा तु वारुणीमिष्ठिमृषीणां वै प्रसादतः ।  
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं विष्णुभक्तमनुत्तमम् ।  
मान्धातारं महाप्राज्ञं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ २३ ॥

मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूदम्बरीषश्च वीर्यवान् ।  
मुचुकुन्दश्च पुण्यात्मा सर्वे शक्रसमा युधि ॥ २४ ॥

अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः ।  
हरितो युवनाश्वस्य हरितस्तसुतोऽभवत् ॥ २५ ॥

पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसद्दस्युर्महायशाः ।  
नर्मदायां समुत्पन्नः सम्भूतिस्तसुतोऽभवत् ॥ २६ ॥

विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य त्वनरण्योऽभवत् परः ।  
बृहदश्वोऽनरण्यस्य हर्यश्वस्तसुतोऽभवत् ॥ २७ ॥

सोऽतीव धार्मिको राजा कर्दमस्य प्रजापतेः ।  
प्रसादाद्वार्मिकं पुत्रं लेभे सूर्यपरायणम् ॥ २८ ॥

स तु सूर्य समध्यर्च्य राजा वसुमनाः शुभम् ।  
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं त्रिधन्वानमरिंदमम् ॥ २९ ॥

अयजच्चाश्वमेधेन शत्रून् जित्वा द्विजोत्तमाः ।  
स्वाध्यायवान् दानशीलस्तितिक्षुर्धर्मतत्परः ॥ ३० ॥

ऋषयस्तु समाजगमुर्यज्ञवाटं महात्मनः ।  
वसिष्ठकश्यपमुखा देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥ ३१ ॥

तान् प्रणाम्य महाराजः पप्रच्छ विनयान्वितः ।  
समाप्य विधिवद् यज्ञं वसिष्ठदीन् द्विजोत्तमान् ॥ ३२ ॥

(आराधनाके फलस्वरूप) उसका वीर पुत्र हुआ जो 'श्रावस्ति' इस नामसे विख्यात हुआ। उसने गौडदेशमें श्रावस्ति नामक महापुरीका निर्माण किया ॥ १८ ॥

उससे (श्रावस्तिसे) बृहदश्व उत्पन्न हुए और उससे कुवलयाश्वक उत्पन्न हुए। धुन्धु नामक महान् असुरको मारनेके कारण वे धुन्धुमारके नामसे प्रसिद्ध हुए। श्रेष्ठ द्विजो! धुन्धुमारके तीन पुत्र कहे गये हैं—दृढाश्व, दण्डाश्व तथा कपिलाश्व। दृढाश्वका प्रमोद और प्रमोदका पुत्र हर्यश्व था। हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ था और निकुम्भसे संहताश्वक उत्पन्न हुआ। संहताश्वकके कृशाश्व तथा रणाश्व—ये दो पुत्र हुए। रणाश्वका युद्धमें इन्द्रके तुल्य बलशाली युवनाश्व नामक पुत्र हुआ ॥ १९—२२ ॥

युवनाश्वने ऋषियोंकी कृपासे वारुणी नामक यागका (वारुणी नामकी इष्टिका) अनुष्ठान करके अप्रतिम महान् बुद्धिमान्, शस्त्रधारियोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा उत्तम विष्णुभक्त मान्धाता नामक पुत्रको प्राप्त किया। मान्धाताके पुरुकुत्स, वीर्यवान् अम्बरीष तथा पुण्यात्मा मुचुकुन्द नामक पुत्र हुए। युद्धमें वे सभी इन्द्रके समान थे। अम्बरीषका पुत्र दूसरा युवनाश्व\* कहलाता है। युवनाश्वका पुत्र हरित और उसका पुत्र हारित हुआ ॥ २३—२५ ॥

पुरुकुत्सका नर्मदा (नामक पत्नी)-से महायशस्वी त्रसद्दस्यु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र सम्भूति हुआ। उसका (सम्भूतिका) विष्णुवृद्ध तथा दूसरा अनरण्य नामक पुत्र हुआ। अनरण्यका बृहदश्व और उसका पुत्र हर्यश्व हुआ। यही हर्यश्व अत्यन्त धार्मिक राजारूपमें विख्यात हुआ। इसने कर्दम प्रजापतिकी कृपासे धार्मिक सूर्यभक्त (वसुमना नामक) पुत्रको प्राप्त किया। इस वसुमना नामक राजाने सूर्यकी आराधनासे शत्रुओंका दमन करनेवाले अप्रतिम कल्याणकारी त्रिधन्वा नामक पुत्रको प्राप्त किया। श्रेष्ठ द्विजो! स्वाध्यायनिरत, दानशील, सहिष्णु तथा धर्मपरायण (उस) राजाने शत्रुओंको जीतकर अश्वमेध नामक यज्ञ किया ॥ २६—३० ॥

उस महात्माके यज्ञस्थलमें वसिष्ठ तथा कशयप आदि प्रमुख ऋषिगण तथा इन्द्र आदि देवता आये। विधिपूर्वक यज्ञ पूर्ण करके उन वसिष्ठ आदि द्विजोत्तमोंको प्रणामकर महाराज (वसुमना)-ने विनयपूर्वक उनसे पूछा— ॥ ३१—३२ ॥

\* इस वंशवर्णनके अनुसार यह तीसरा युवनाश्व है। पहला आर्द्रकका पुत्र, दूसरा रणाश्वका पुत्र और तीसरा यह अम्बरीषका पुत्र।

वसुमना उवाच

किंस्वच्छेयस्करतरं लोकेऽस्मिन् ब्राह्मणर्षभाः ।  
यज्ञस्तपो वा संन्यासो ब्रूत मे सर्ववेदिनः ॥ ३३ ॥

वसिष्ठ उवाच

अधीत्य वेदान् विधिवत् पुत्रानुत्पाद्य धर्मतः ।  
इष्टा यज्ञेश्वरं यज्ञैर्गच्छेद वनमथात्मवान् ॥ ३४ ॥

पुलस्त्य उवाच

आराध्य तपसा देवं योगिनं परमेष्ठिनम् ।  
प्रब्रजेद् विधिवद् यज्ञैरिष्टा पूर्वं सुरोत्तमान् ॥ ३५ ॥

पुलह उवाच

यमाहुरेकं पुरुषं पुराणं परमेश्वरम् ।  
तमाराध्य सहस्रांशुं तपसा मोक्षमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥

जमदग्निरुवाच

अजस्य नाभावध्येकमीश्वरेण समर्पितम् ।  
बीजं भगवता येन स देवस्तपसेज्यते ॥ ३७ ॥

विश्वामित्र उवाच

योऽग्निः सर्वात्मकोऽनन्तः स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः ।  
स रुद्रस्तपसोग्रेण पूज्यते नेतरैर्मर्खैः ॥ ३८ ॥

भरद्वाज उवाच

यो यज्ञैरिज्यते देवो जातवेदाः सनातनः ।  
स सर्वदैवततनुः पूज्यते तपसेश्वरः ॥ ३९ ॥

अत्रिरुवाच

यतः सर्वमिदं जातं यस्यापत्यं प्रजापतिः ।  
तपः सुमहदास्थाय पूज्यते स महेश्वरः ॥ ४० ॥

गौतम उवाच

यतः प्रधानपुरुषौ यस्य शक्तिमयं जगत् ।  
स देवदेवस्तपसा पूजनीयः सनातनः ॥ ४१ ॥

कश्यप उवाच

सहस्रनयनो देवः साक्षी स तु प्रजापतिः ।  
प्रसीदति महायोगी पूजितस्तपसा परः ॥ ४२ ॥

क्रतुरुवाच

प्राप्ताध्ययनयज्ञस्य लब्धपुत्रस्य चैव हि ।  
नान्तरेण तपः कश्चिद्दर्मः शास्त्रेषु दृश्यते ॥ ४३ ॥

वसुमनाने कहा—श्रेष्ठ ब्राह्मणो! आप सब कुछ जाननेवाले हैं। मुझे यह बतलाइये कि इस संसारमें यज्ञ, तप अथवा संन्यासमें कौन अधिक श्रेयस्कर है? ॥ ३३ ॥

वसिष्ठ बोले—आत्मवान् को चाहिये कि वह वेदोंका विधिवत् अध्ययन करके धर्मपूर्वक पुत्रोंको उत्पन्न करे और यज्ञोद्धारा यज्ञेश्वरका यजनकर वनमें जाय ॥ ३४ ॥

पुलस्त्यने कहा—सर्वप्रथम श्रेष्ठ देवोंकी यज्ञद्वारा अर्चना करके और तपस्याद्वारा योगी देव परमेश्वरकी आराधना करके विधिपूर्वक संन्यास ग्रहण करना चाहिये ॥ ३५ ॥

पुलह बोले—जिन्हें अद्वितीय, पुराणपुरुष तथा परमेश्वर कहा गया है, उन सहस्रकिरण (सूर्य)-की तपस्याद्वारा आराधना करके मोक्ष प्राप्त करना चाहिये ॥ ३६ ॥

जमदग्निने कहा—जिन भगवान् ईश्वरने अजन्मा (ब्रह्म)-की नाभिमें अद्वितीय बीज (जगत्कारण ब्रह्म)-को स्थापित किया, उन देवकी तपस्याद्वारा आराधना की जानी चाहिये ॥ ३७ ॥

विश्वामित्रने कहा—जो अग्निस्वरूप, सर्वात्मक, अनन्त, स्वयम्भूत तथा सर्वतोमुख हैं, वे रुद्र उग्र तपस्याद्वारा पूजनीय हैं न कि अन्य किसी दूसरे यज्ञ आदि साधनोंद्वारा ॥ ३८ ॥

भरद्वाज बोले—यज्ञोद्धारा जिन सनातन अग्निदेवकी पूजा की जाती है, वे सभी देवताओंके विग्रहरूप परमेश्वर ही तपके द्वारा पूजित होते हैं ॥ ३९ ॥

अत्रि बोले—वे महेश्वर अत्यन्त महान् तपके द्वारा पूजे जाते हैं, जिनसे यह सब उत्पन्न हुआ है और प्रजापति जिनकी संतान हैं ॥ ४० ॥

गौतमने कहा—जिससे प्रधान अर्थात् पुरुष और प्रकृति उत्पन्न हुए हैं और जिनकी शक्तिसे यह जगत् (उत्पन्न) हुआ है, वे सनातन देवाधिदेव तपस्याद्वारा पूजनीय हैं ॥ ४१ ॥

कश्यपने कहा—तपद्वारा आराधना करनेसे वे हजारों नेत्रवाले, साक्षी, महायोगी, प्रजापति प्रभु प्रसन्न होते हैं ॥ ४२ ॥

क्रतु बोले—अध्ययनरूपी यज्ञ पूर्ण कर पुत्र प्राप्त कर लेनेवाले पुरुषके लिये तपस्याके अतिरिक्त कोई और दूसरा धर्म शास्त्रोंमें दिखायी नहीं देता ॥ ४३ ॥

इत्याकर्ण्य स राजर्षिस्तान् प्रणम्यातिहृष्टधीः।  
विसर्जयित्वा सम्पूज्य त्रिधन्वानमथाब्रवीत्॥ ४४ ॥

आराधयिष्ये तपसा देवमेकाक्षराह्रयम्।  
प्राणं बृहन्तं पुरुषमादित्यान्तरसंस्थितम्॥ ४५ ॥

त्वं तु धर्मरतो नित्यं पालयैतदतन्द्रितः।  
चातुर्वर्ण्यसमायुक्तमशेषं क्षितिमण्डलम्॥ ४६ ॥  
एवमुक्त्वा स तद्राज्यं निधायात्मभवे नृपः।  
जगामारण्यमनघस्तपश्चर्तुमनुत्तमम्॥ ४७ ॥

हिमवच्छिखरे रम्ये देवदारुवने शुभे।  
कन्दमूलफलाहारो मुन्यन्नैरयजत् सुरान्॥ ४८ ॥

संवत्सरशतं साग्रं तपोनिर्धूतकल्मषः।  
जजाप मनसा देवीं सावित्रीं वेदमातरम्॥ ४९ ॥

तस्यैवं जपतो देवः स्वयम्भूः परमेश्वरः।  
हिरण्यगर्भो विश्वात्मा तं देशमगमत् स्वयम्॥ ५० ॥

दृष्ट्वा देवं समायान्तं ब्रह्माणं विश्वतोमुखम्।  
ननाम शिरसा तस्य पादयोर्नामि कीर्तयन्॥ ५१ ॥  
नमो देवाधिदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने।  
हिरण्यमूर्तये तुभ्यं सहस्राक्षाय वेधसे॥ ५२ ॥

नमो धात्रे विधात्रे च नमो वेदात्ममूर्तये।  
सांख्ययोगाधिगम्याय नमस्ते ज्ञानमूर्तये॥ ५३ ॥

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं स्वष्टे सर्वार्थवेदिने।  
पुरुषाय पुराणाय योगिनां गुरवे नमः॥ ५४ ॥  
ततः प्रसन्नो भगवान् विरिञ्छो विश्वभावनः।  
वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मीत्यभाषत॥ ५५ ॥

राजोवाच

जपेयं देवदेवेश गायत्रीं वेदमातरम्।  
भूयो वर्षशतं साग्रं तावदायुर्भवेन्मम॥ ५६ ॥

बाढमित्याह विश्वात्मा समालोक्य नराधिपम्।  
स्पृष्ट्वा कराभ्यां सुप्रीतस्तत्रैवान्तरधीयत॥ ५७ ॥

ऐसा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मनवाले उस वसुमना राजर्षिने उन द्विजश्रेष्ठोंको प्रणाम किया और पूजनकर उन्हें बिदा किया। तदनन्तर (उसने अपने पुत्र) त्रिधन्वासे (इस प्रकार) कहा—तपद्वारा मैं सूर्यमण्डलके मध्यमें स्थित, प्राणरूप अद्वितीय अक्षर नामक ब्रह्म पुरुषकी आराधना करूँगा। तुम धर्ममें निरत होकर चातुर्वर्ण्यसे समन्वित इस सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका आलस्यरहित होकर पालन करो॥ ४४—४६ ॥

ऐसा कहकर वह अनंद राजा वसुमना अपने पुत्र (त्रिधन्वा)-को राज्य सौंपकर सर्वोत्तम तपस्या करनेके लिये वनमें चला गया। ये वसुमना राजा हिमालयके शिखरपर स्थित रमणीय शुभ देवदारु वनमें रहते हुए कन्दमूल एवं फलोंका आहार करते हुए मुनियोंके अन्न (नीवार आदि)-से देवताओंकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ (आराधना) करने लगे। तपस्याद्वारा नष्ट हुए पापोंवाले उन्होंने सौ वर्षोंसे भी अधिक समयतक वेदमाता देवी सावित्रीका मानसिक जप किया। उनके इस प्रकार जप करते रहनेपर ही स्वयम्भू देव परमेश्वर हिरण्यगर्भ विश्वात्मा स्वयं उस स्थानपर गये। विश्वतोमुख ब्रह्मदेवको आते हुए देखकर उन्होंने अपना नाम बोलते हुए उनके चरणोंमें सिरसे प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ ४७—५१ ॥

देवाधिदेव परमात्मा ब्रह्मको नमस्कार है। सहस्र नेत्रोंवाले हिरण्यमूर्ति आप वेधाको नमस्कार है। धाता और विधाताको नमस्कार है, वेदात्ममूर्तिको नमस्कार है। सांख्य तथा योगद्वारा ज्ञात होनेवाले ज्ञान-मूर्तिको नमस्कार है। सभी अर्थोंके ज्ञाता, सृष्टिकर्ता, त्रिमूर्तिरूप आपको नमस्कार है। योगियोंके गुरु पुराणपुरुषको नमस्कार है॥ ५२—५४ ॥

तब प्रसन्न होकर विश्वभावन भगवान् ब्रह्माने कहा—‘वर माँगो, तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हें वर दूँगा’॥ ५५ ॥

राजाने कहा—देवदेवेश! मैं पुनः सौ वर्षसे अधिक समयतक इस वेदमाता गायत्रीका जप कर सकूँ, इसके लिये उतनी ही मेरी आयु हो। राजाको देखकर विश्वात्माने ‘बहुत अच्छा’ ऐसा कहा और प्रसन्न होकर हाथोंसे (राजाका) स्पर्शकर वे वर्ही अन्तर्धान हो गये॥ ५६—५७ ॥

सोऽपि लब्धवरः श्रीमान् जजापातिप्रसन्नधीः ।  
शान्तस्त्रिष्ववणस्नायी कन्दमूलफलाशनः ॥ ५८ ॥

तस्य पूर्णे वर्षशते भगवानुग्रदीधितिः ।  
प्रादुरासीन्महायोगी भानोर्मण्डलमध्यतः ॥ ५९ ॥

तं दृष्ट्वा वेदविदुषं मण्डलस्थं सनातनम् ।  
स्वयम्भुवमनाद्यन्तं ब्रह्माणं विस्मयं गतः ॥ ६० ॥

तुष्टाव वैदिकैर्मन्त्रैः सावित्र्या च विशेषतः ।  
क्षणादपश्यत् पुरुषं तमेव परमेश्वरम् ॥ ६१ ॥

चतुर्मुखं जटामौलिमष्टहस्तं त्रिलोचनम् ।  
चन्द्रावयवलक्ष्माणं नरनारीतनुं हरम् ॥ ६२ ॥

भासयनं जगत् कृत्वन् नीलकण्ठं स्वरशिमभिः ।  
रक्ताम्बरधरं रक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥ ६३ ॥

तद्वावभावितो दृष्ट्वा सद्वावेन परेण हि ।  
ननाम शिरसा रुद्रं सावित्र्यानेन चैव हि ॥ ६४ ॥

नमस्ते नीलकण्ठाय भास्वते परमेष्ठिने ।  
त्रयीमयाय रुद्राय कालरूपाय हेतवे ॥ ६५ ॥

तदा प्राह महादेवो राजानं प्रीतमानसः ।  
इमानि मे रहस्यानि नामानि शृणु चानघ ॥ ६६ ॥

सर्ववेदेषु गीतानि संसारशमनानि तु ।  
नमस्कुरुष्व नृपते एभिर्मा सततं शुचिः ॥ ६७ ॥

अध्यायं शतरुद्रीयं यजुषां सारमुद्घृतम् ।  
जपस्वानन्यचेतस्को मव्यासक्तमना नृप ॥ ६८ ॥

ब्रह्मचारी मिताहारो भस्मनिष्ठः समाहितः ।  
जपेदामरणाद् रुद्रं स याति परमं पदम् ॥ ६९ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रो भक्तानुग्रहकाम्यया ।  
पुनः संवत्सरशतं राजे ह्यायुरकल्पयत् ॥ ७० ॥

दत्त्वास्मै तत् परं ज्ञानं वैराग्यं परमेश्वरः ।  
क्षणादन्तर्दधे रुद्रस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७१ ॥

राजापि तपसा रुद्रं जजापानन्यमानसः ।  
भस्मच्छन्नस्त्रिष्ववणं स्नात्वा शान्तः समाहितः ॥ ७२ ॥

जपतस्तस्य नृपते: पूर्णे वर्षशते पुनः ।  
योगप्रवृत्तिरभवत् कालात् कालात्मकं परम् ॥ ७३ ॥

वर-प्राप्त वह श्रीमान् (राजा) भी तीनों समयोंमें स्नान करते हुए तथा कन्दमूल एवं फलोंका आहार करते हुए अत्यन्त प्रसन्न-मनसे शान्तिपूर्वक जप करने लगे । उनके (जप करते हुए) सौ वर्ष पूरा होनेपर सूर्यमण्डलके मध्यसे प्रज्वलित किरणोंवाले महायोगी भगवान् प्रकट हुए । मण्डलमें स्थित उन सनातन, स्वयम्भू अनादि, अनन्त तथा वेदज्ञ ब्रह्माको देखकर वे राजा आश्वर्यचकित हुए । उन्होंने वैदिक मन्त्रों तथा विशेषरूपसे गायत्री (मन्त्र)-द्वारा उनकी स्तुति की । क्षणभरमें ही उन्होंने उन परमेश्वर पुरुषको चार मुखवाले, जटा तथा मुकुटधारी, आठ हाथ तथा तीन नेत्रवाले, चन्द्रकलाओंसे चिह्नित अर्धनारीश्वर शरीरवाले, अपनी किरणोंद्वारा सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हुए, रक्तवस्त्र धारण किये, रक्तवर्णवाले तथा रक्तमाला और रक्त अनुलेपन धारण किये नीलकण्ठ हरके रूपमें देखा ॥ ५८—६३ ॥

उन्हें देखकर उन्हींके भावसे भावित होकर परम सद्वावसे राजाने सिरसे रुद्रको प्रणाम किया और सावित्री-मन्त्र तथा इस स्तोत्रसे स्तुति की । वेदत्रयीरूप, रुद्र, कालरूप, कारणस्वरूप भासमान परमेष्ठी नीलकण्ठको नमस्कार है ॥ ६४—६५ ॥

तब प्रसन्न मनवाले महादेवने राजासे कहा—हे निष्पाप ! मेरे इन गोपनीय नामोंको सुनो । ये सभी वेदोंमें वर्णित हैं तथा संसार (सागर)-का नाश करनेवाले हैं । राजन् ! पवित्र होकर इन नामोंसे मुझे निरन्तर नमस्कार करो । राजन् ! यजुर्वेदसे साररूपमें उद्घृत शतरुद्रीका अनन्यमन होकर मुझमें मन लगाकर जप करो । जो ब्रह्मचर्य धारणकर, संयमित आहार ग्रहणकर, भस्मका लेपकर एकाग्रतापूर्वक मरणपर्यन्त रुद्रका जप करता है, वह परम पद प्राप्त करता है । ऐसा कहकर भक्तपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे भगवान् रुद्रने राजाकी आयु पुनः सौ वर्षोंतक कर दी ॥ ६६—७० ॥

राजा वसुमनाको परम ज्ञान और वैराग्य प्रदानकर परमेश्वर रुद्र क्षणभरमें ही अन्तर्धान हो गये । यह एक आश्वर्य ही हुआ । राजाने भी तीनों कालोंमें स्नानकर, भस्म धारणकर, शान्त और एकाग्रतापूर्वक अनन्य-मनसे तपस्याद्वारा रुद्रका जप किया । जप करते हुए उन राजाके पुनः सौ वर्ष पूरे हो जानेपर उसमें योगकी प्रवृत्ति हुई और यथासमय उन्होंने श्रेष्ठ

विवेश तद् वेदसारं स्थानं वै परमेष्ठिनः ।  
भानोः स मण्डलं शुभ्रं ततो यातो महेश्वरम् ॥ ७४ ॥

यः पठेच्छृणुयाद् वापि राजश्वरितमुत्तमम् ।  
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ७५ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९ ॥

## बीसवाँ अध्याय

इक्ष्वाकु-वंश-वर्णनके प्रसंगमें श्रीराम-कथाका प्रतिपादन, श्रीरामद्वारा सेतु-बन्धन  
और रामेश्वर-लिंगकी स्थापना, शंकर-पार्वतीका प्रकट होकर रामेश्वर-  
लिंगके माहात्म्यको बतलाना, श्रीरामको लव-कुश-पुत्रोंकी प्राप्ति  
तथा इक्ष्वाकु-वंशके अन्तिम राजाओंका वंश-वर्णन

सूत उचाच

त्रिधन्वा राजपुत्रस्तु धर्मेणापालयन्महीम् ।  
तस्य पुत्रोऽभवद् विद्वांस्त्रव्यारुण इति स्मृतः ॥ १ ॥  
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः ।  
भार्या सत्यधना नाम हरिश्चन्द्रमजीजनत् ॥ २ ॥  
हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद् रोहितो नाम वीर्यवान् ।  
हरितो रोहितस्याथ धुन्धुस्तस्य सुतोऽभवत् ॥ ३ ॥  
विजयश्च सुदेवश्च धुन्धुपुत्रौ बभूवतुः ।  
विजयस्याभवत् पुत्रः कारुको नाम वीर्यवान् ॥ ४ ॥  
कारुकस्य वृक्षः पुत्रस्तस्माद् बाहुरजायत ।  
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद् राजा परमधार्मिकः ॥ ५ ॥  
द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा ।  
ताभ्यामाराधितः प्रादादौर्वाग्निर्वरमुत्तमम् ॥ ६ ॥  
एकं भानुमती पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम् ।  
प्रभा षष्ठिसहस्रं तु पुत्राणां जगृहे शुभा ॥ ७ ॥  
असमञ्जस्य तनयो हृशुमान् नाम पार्थिवः ।  
तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात् तु भगीरथः ॥ ८ ॥  
येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वावतारिता ।  
प्रसादाद् देवदेवस्य महादेवस्य धीमतः ॥ ९ ॥

भगीरथस्य तपसा देवः प्रीतमना हरः ।  
बभार शिरसा गङ्गां सोमान्ते सोमभूषणः ॥ १० ॥

कालात्मक परमेष्ठीके उस वेदसार नामक स्थानको प्राप्ति  
किया जो सूर्यका शुभ्र मण्डल है। तदनन्तर वे महेश्वरको  
प्राप्त हुए ॥ ७१—७४ ॥

राजाके इस उत्तम चरितको जो पढ़ता है अथवा  
सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें  
प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ॥ ७५ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सूतजी बोले—राजपुत्र त्रिधन्वाने पृथ्वीका धर्मपूर्वक  
पालन किया। उसका एक विद्वान् पुत्र हुआ जो त्रिव्यारुण  
नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसको (त्रिव्यारुणको) सत्यव्रत  
नामका महान् बलवान् पुत्र हुआ। सत्यधना नामक  
उसकी पत्नीने हरिश्चन्द्रको जन्म दिया। हरिश्चन्द्रको  
रोहित नामवाला पराक्रमी पुत्र हुआ। रोहितका हरित  
और उसका पुत्र धुन्धु हुआ। धुन्धुके विजय और  
सुदेव—ये दो पुत्र हुए। विजयका कारुक नामका वीर  
पुत्र हुआ। कारुकका पुत्र वृक्ष और उससे बाहु (नामक  
पुत्र) उत्पन्न हुआ। उस बाहुका पुत्र सगर हुआ  
जो परम धार्मिक था। सगरकी दो पत्नियाँ थीं—  
प्रभा और भानुमती। और्वाग्निने उन दोनोंसे पूजित होकर  
उन्हें श्रेष्ठ वर प्रदान किया ॥ १—६ ॥

(वरके फलस्वरूप) भानुमतीने असमञ्जस नामक  
पुत्रको ग्रहण किया और कल्याणी प्रभाने साठ हजार पुत्रोंको  
प्राप्ति किया। असमञ्जसके पुत्र अंशुमान् नामक राजा थे,  
उनके पुत्र दिलीप तथा दिलीपसे भगीरथ हुए, जिन्होंने  
तपस्या करके देवाधिदेव धीमान् महादेवकी कृपासे भागीरथी  
गङ्गाको (पृथ्वीपर) अवतारित किया ॥ ७—९ ॥

भगीरथकी तपस्यासे प्रसन्न हुए मनवाले चन्द्रभूषण  
देव हरने अपने सिरपर स्थित चन्द्रमाके अग्रभागमें  
गङ्गाको धारण किया ॥ १० ॥

भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह ।  
 नाभागस्तस्य दायादः सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ॥ ११ ॥  
 अयुतायुः सुतस्तस्य ऋतुपर्णस्तु तत्सुतः ।  
 ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत् सुदासो नाम धार्मिकः ।  
 सौदासस्तस्य तनयः ख्यातः कल्माषपादकः ॥ १२ ॥  
 वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके ।  
 अश्मकं जनयामास तमिक्ष्वाकुकुलध्वजम् ॥ १३ ॥  
 अश्मकस्योत्कलायां तु नकुलो नाम पार्थिवः ।  
 स हि रामभयाद् राजा वनं प्राप सुदुःखितः ॥ १४ ॥  
 विभृत् स नारीकवचं तस्माच्छतरथोऽभवत् ।  
 तस्माद् बिलिबिलिः श्रीमान् वृद्धशर्मा च तत्सुतः ॥ १५ ॥  
 तस्माद् विश्वसहस्तस्मात् खट्वाङ्ग इति विश्रुतः ।  
 दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत ॥ १६ ॥  
 रघोरजः समुत्पन्नो राजा दशरथस्ततः ।  
 रामो दाशरथिर्वर्णो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः ॥ १७ ॥

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः ।  
 सर्वे शक्रसमा युद्धे विष्णुशक्तिसमन्विताः ।  
 जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुरंशेन विश्वकृत् ॥ १८ ॥  
 रामस्य सुभगा भार्या जनकस्यात्मजा शुभा ।  
 सीता त्रिलोकविख्याता शीलौदार्यगुणान्विता ॥ १९ ॥

तपसा तोषिता देवी जनकेन गिरीन्द्रजा ।  
 प्रायच्छजानकीं सीतां राममेवाश्रिता पतिम् ॥ २० ॥  
 प्रीतश्च भगवानीशस्त्रिशूली नीललोहितः ।  
 प्रददौ शत्रुनाशार्थं जनकायादभुतं धनुः ॥ २१ ॥  
 स राजा जनको विद्वान् दातुकामः सुतामिमाम् ।  
 अदोषयदमित्रज्ञो लोकेऽस्मिन् द्विजपुंगवाः ॥ २२ ॥  
 इदं धनुः समादातुं यः शक्नोति जगत्वये ।  
 देवो वा दानवो वापि स सीतां लब्ध्युर्महति ॥ २३ ॥

भगीरथका भी श्रुत नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र हुआ नाभाग । उससे सिन्धुद्वीप हुआ । उस सिन्धुद्वीपका पुत्र अयुतायु और उसका पुत्र ऋतुपर्ण हुआ । ऋतुपर्णका सुदास नामका धार्मिक पुत्र हुआ । उसका पुत्र सौदास हुआ जो कल्माषपाद नामसे विख्यात हुआ ॥ ११—१२ ॥  
 कल्माषपादके क्षेत्रमें महातेजस्वी वसिष्ठने इक्ष्वाकुवंशके पताकारूप अश्मक नामक पुत्रको उत्पन्न कराया । अश्मककी उत्कला नामक पत्नीसे नकुल नामक राजा उत्पन्न हुआ । वह राजा परशुरामके भयसे अत्यन्त दुःखित होकर वन चला गया । उसने 'नारी-कवच'\* धारण कर रखा था । उस (नकुल)-से शतरथ हुआ और उससे श्रीमान् बिलिबिलि उत्पन्न हुआ । उसका पुत्र वृद्धशर्मा था । उस वृद्धशर्मसे विश्वसह और उसका पुत्र खट्वाङ्ग नामसे विख्यात हुआ । उसका पुत्र दीर्घबाहु और उससे रघु उत्पन्न हुआ ॥ १३—१६ ॥

रघुका अज उत्पन्न हुआ और उससे राजा दशरथ हुए । दशरथके पुत्र राम वीर, धर्मज्ञ और लोकमें प्रसिद्ध हुए । दशरथके ही पुत्र भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न भी थे । ये सभी महान् बलशाली, युद्धमें इन्द्रके समान और विष्णुकी शक्तिसे सम्पन्न थे । रावणका विनाश करनेके लिये विश्वकर्ता विष्णु ही इन लोगोंके रूपमें अंशरूपसे प्रकट हुए थे ॥ १७—१८ ॥

रामकी सौभाग्यशालिनी कल्याणी पत्नी जनककी पुत्री सीता थीं । वे शील एवं उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न और तीनों लोकोंमें विख्यात थीं । जनकके द्वारा तपस्यासे संतुष्ट की गयी गिरिराजपुत्री पार्वतीने उन्हें जानकी सीताको प्रदान किया । सीताने रामको ही पति बनाया ॥ १९—२० ॥

त्रिशूल धारण करनेवाले, नीललोहित भगवान् ईश (शंकर)–ने प्रसन्न होकर शत्रुओंके विनाशके लिये जनकको अद्भुत धनुष प्रदान किया था । श्रेष्ठ द्विजो ! उस विद्वान् शत्रुनाशक राजा जनकने इस कन्याका दान करनेकी इच्छासे संसारमें यह धोषणा करवायी कि देवता या दानव जो कोई भी इस धनुषको उठानेमें समर्थ होगा, वह सीताको प्राप कर सकता है ॥ २१—२३ ॥

\* परशुरामद्वारा पृथ्वीके क्षत्रियशून्य किये जानेके समय स्त्रियोंके मध्य रहकर नकुलने अपनी रक्षा की थी, इसलिये उसे 'नारी-कवच' कहा जाता है ।

विज्ञाय रामो बलवान् जनकस्य गृहं प्रभुः ।  
भञ्जयामास चादाय गत्वासौ लीलयैव हि ॥ २४ ॥

उद्घवाह च तां कन्यां पार्वतीमिव शंकरः ।  
रामः परमधर्मात्मा सेनामिव च षण्मुखः ॥ २५ ॥  
ततो बहुतिथे काले राजा दशरथः स्वयम् ।  
रामं ज्येष्ठं सुतं वीरं राजानं कर्तुमारभत् ॥ २६ ॥

तस्याथ पली सुभगा कैकेयी चारुभाषिणी ।  
निवारयामास पतिं प्राह सम्भ्रान्तमानसा ॥ २७ ॥

मत्सुतं भरतं वीरं राजानं कर्तुमर्हसि ।  
पूर्वमेव वरो यस्माद् दत्तो मे भवता यतः ॥ २८ ॥  
स तस्या वचनं श्रुत्वा राजा दुःखितमानसः ।  
बाढमित्यब्रवीद् वाक्यं तथा रामोऽपि धर्मवित् ॥ २९ ॥  
प्रणम्याथ पितुः पादौ लक्ष्मणेन सहाच्युतः ।  
यथौ वनं सपलीकः कृत्वा समयमात्मवान् ॥ ३० ॥  
संवत्सराणां चत्वारि दश चैव महाबलः ।  
उवास तत्र मतिमान् लक्ष्मणेन सह प्रभुः ॥ ३१ ॥  
कदाचिद् वस्तोऽरण्ये रावणो नाम राक्षसः ।  
परिव्राजकवेषेण सीतां हृत्वा यथौ पुरीम् ॥ ३२ ॥

अदृष्टा लक्ष्मणो रामः सीतामाकुलितेन्द्रियौ ।  
दुःखशोकाभिसंतसौ बभूवतुरर्दिमौ ॥ ३३ ॥  
ततः कदाचित् कपिना सुग्रीवेण द्विजोत्तमाः ।  
वानराणामभूत् सख्यं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ३४ ॥  
सुग्रीवस्यानुगो वीरो हनुमान् नाम वानरः ।  
वायुपुत्रो महातेजा रामस्यासीत् प्रियः सदा ॥ ३५ ॥  
स कृत्वा परमं धैर्यं रामाय कृतनिश्चयः ।  
आनयिष्यामि तां सीतामित्युक्त्वा विचचारह ॥ ३६ ॥  
महीं सागरपर्यन्तां सीतादर्शनितत्परः ।  
जगाम रावणपुरीं लङ्कां सागरसंस्थिताम् ॥ ३७ ॥  
तत्राथ निर्जने देशे वृक्षमूले शुचिस्मिताम् ।  
अपश्यदमलां सीतां राक्षसीभिः समावृताम् ॥ ३८ ॥  
अश्रुपूर्णक्षणां हृद्यां संस्मरन्तीमनिन्दिताम् ।  
राममिन्दीवरश्यामं लक्ष्मणं चात्मसंस्थितम् ॥ ३९ ॥

ऐसा जानकर बलवान् प्रभु रामने जनकके घर जाकर उस धनुषको उठाकर खेल-खेलमें ही तोड़ डाला । तदनन्तर परम धर्मात्मा रामने उस कन्याका उसी प्रकार पाणिग्रहण किया, जैसे शंकरने पार्वतीका और कार्तिकेयने सेना (देवसेना)-का पाणिग्रहण किया ॥ २४—२५ ॥

तदनन्तर बहुत दिन बीत जानेपर राजा दशरथने स्वयं अपने बड़े पुत्र वीर रामको युवराज बनानेका कार्य आरम्भ किया । तब उनकी सौभाग्यशालिनी मधुरभाषिणी कैकेयी नामक पत्नीने भ्रान्तमन होकर पतिको (रामके राज्याभिषेकसे) रोका और कहा कि मेरे वीर पुत्र भरतको राजा बनायें, क्योंकि आपने पहले मुझे वर दे रखा है ॥ २६—२८ ॥

उसका वचन सुनकर उस राजाने अत्यन्त दुःखित-मनसे कहा—‘अच्छा, ऐसा ही हो’ । तब धर्मको जानेवाले आत्मवान् अच्युत राम भी पिताके चरणोंमें प्रणामकर (वनवासकी) प्रतिज्ञा कर लक्ष्मणके साथ सपलीक वनको चले गये । बुद्धिमान् तथा महाबलवान् प्रभु (श्रीराम) भी चौदह वर्षतक लक्ष्मणके साथ वहाँ (वनमें) रहे । वनमें निवास करते समय कभी रावण नामका राक्षस संन्यासीका वेष धारणकर सीताका हरण कर लिया और उन्हें अपनी पुरी (लंका)-में ले गया ॥ २९—३२ ॥

शत्रुनाशक राम और लक्ष्मण सीताको न देखकर दुःख एवं शोकसे अत्यन्त संतस हो गये और उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं ॥ ३३ ॥

द्विजोत्तमो ! यथासमय अक्लिष्टकर्मा रामकी कपि सुग्रीव तथा वानरोंसे मित्रता हो गयी । वायुपुत्र महातेजस्वी वीर हनुमान् नामक वानर सुग्रीवके अनुगामी और सदा रामके प्रिय थे । वे परम धैर्य धारणकर ‘उन सीताको लाऊँगा’ इस प्रकार रामसे प्रतिज्ञापूर्वक कहकर सीताको देखनेके लिये तत्पर हो गये तथा सागरपर्यन्त सारी पृथ्वीपर विचरण करने लगे । (इस प्रकार सीताको दूँढ़ते-दूँढ़ते) सागरमें बसी हुई रावणकी पुरी लंकामें गये । वहाँ उन्होंने राक्षसियोंसे धिरी हुई पवित्र, अश्रुपूर्ण आँखोंवाली, अनिन्दित, रमणीय तथा पवित्र सीताको निर्जन देशमें एक वृक्षके नीचे स्थित देखा । वहाँ भगवती सीता नीलकमलके समान श्यामवर्णवाले राम तथा आत्मसंयमी लक्ष्मणका स्मरण कर रही थीं ॥ ३४—३९ ॥

निवेदयित्वा चात्मानं सीतायै रहसि स्वयम् ।  
असंशयाय प्रददावस्यै रामाङ्गुलीयकम् ॥ ४० ॥

दृष्टाङ्गुलीयकं सीता पत्युः परमशोभनम् ।  
मेने समागतं रामं प्रीतिविस्फारितेक्षणा ॥ ४१ ॥

समाश्वास्य तदा सीतां दृष्टा रामस्य चान्तिकम् ।  
नयिष्ये त्वां महाबाहुरुक्त्वा रामं यथौ पुनः ॥ ४२ ॥

निवेदयित्वा रामाय सीतादर्शनमात्मवान् ।  
तस्थौ रामेण पुरतो लक्ष्मणेन च पूजितः ॥ ४३ ॥  
ततः स रामो बलवान् सार्थं हनुमता स्वयम् ।  
लक्ष्मणेन च युद्धाय बुद्धिं चक्रे हि रक्षसाम् ॥ ४४ ॥  
कृत्वाथ वानरशतैर्लङ्घामार्गं महोदधेः ।

सेतुं परमधर्मात्मा रावणं हतवान् प्रभुः ॥ ४५ ॥

सपत्नीकं च ससुतं सभ्रातृकमर्दिमः ।  
आनयामास तां सीतां वायुपुत्रसहायवान् ॥ ४६ ॥  
सेतुमध्ये महादेवमीशानं कृत्तिवाससम् ।  
स्थापयामास लिङ्गस्थं पूजयामास राघवः ॥ ४७ ॥  
तस्य देवो महादेवः पार्वत्या सह शंकरः ।  
प्रत्यक्षमेव भगवान् दत्तवान् वरमुत्तमम् ॥ ४८ ॥  
यत् त्वया स्थापितं लिङ्गं द्रक्ष्यन्तीह द्विजातयः ।  
महापातकसंयुक्तास्तेषां पापं विनश्यतु ॥ ४९ ॥

अन्यानि चैव पापानि स्नातस्यात्र महोदधौ ।  
दर्शनादेव लिङ्गस्य नाशं यान्ति न संशयः ॥ ५० ॥

यावत् स्थास्यन्ति गिरयो यावदेषा च मेदिनी ।  
यावत् सेतुश्च तावच्य स्थास्याम्यत्र तिरोहितः ॥ ५१ ॥

स्नानं दानं जपः श्राद्धं भविष्यत्यक्षयं कृतम् ।  
स्मरणादेव लिङ्गस्य दिनपापं प्रणश्यति ॥ ५२ ॥  
इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भुः परिष्वज्य तु राघवम् ।  
सनन्दी सगणो रुद्रस्त्रैवान्तरधीयत ॥ ५३ ॥

रामोऽपि पालयामास राज्यं धर्मपरायणः ।  
अभिषिञ्चो महातेजा भरतेन महाबलः ॥ ५४ ॥

एकान्तमें सीताको स्वयं अपना परिचय देकर उनका संदेह मिटानेके लिये उन्होंने (श्रीहनुमान्) रामकी अंगूठी उन्हें प्रदान की ॥ ४० ॥

पतिकी परम सुन्दर अँगूठीको देखकर प्रीतिके कारण विस्फारित नेत्रोंवाली सीताने रामको (ही) आया हुआ माना । तब सीताको देखकर उन्होंने आश्वासन दिया और कहा—‘मैं आपको रामके पास ले चलूँगा ।’ ऐसा कहकर महाबाहु (हनुमान्) पुनः रामके पास ले आये । आत्मवान् (हनुमान्) रामसे सीता-दर्शनकी बात बताकर सामने खड़े हो गये । राम-लक्षणने उनको साधुवादसे सत्कृत किया ॥ ४१—४३ ॥

तदनन्तर बलवान् रामने हनुमान् तथा लक्ष्मणके साथ राक्षसोंसे स्वयं युद्ध करनेका निश्चय किया । और सैकड़ों वानरोंद्वारा महासमुद्रमें लंका जानेके लिये मार्गके रूपमें पुलका निर्माण किया गया तथा उसी पुलके सहारे महासमुद्रको पारकर शत्रुहन्ता परम धर्मात्मा प्रभु (श्रीराम)-ने वायुपुत्र हनुमान्की सहायतासे पलियों, पुत्रों तथा भाइयोंसहित रावणको मार डाला और भगवती सीताको वापस ले आये ॥ ४४—४६ ॥

राघवने सेतुके मध्यमें चर्माम्बर धारण करनेवाले महादेव ईशानकी लिङ्गरूपमें प्रतिष्ठाकर उनकी पूजा की । (इस रामेश्वर-प्रतिष्ठाके समय) पार्वतीसहित महादेव भगवान् शंकरदेवने प्रत्यक्ष रूपमें श्रेष्ठ वर प्रदान करते हुए श्रीरामसे कहा—‘जो द्विजाति तुम्हारे द्वारा स्थापित इस (रामेश्वर) लिंगका दर्शन करेंगे उनके बड़े-से-बड़े पाप नष्ट हो जायेंगे । महासमुद्रमें स्नान करनेवालेके अन्य जो भी पाप (अर्थात् उपपातक आदि) हैं वे इस लिंगके दर्शनमात्रसे ही नष्ट हो जायेंगे, इसमें संदेह नहीं है । जबतक पर्वत स्थित रहेंगे, जबतक यह पृथ्वी रहेगी और जबतक यह सेतु रहेगा, तबतक मैं गुसरूपसे यहाँ प्रतिष्ठित रहूँगा । यहाँ किया गया स्नान, दान, जप तथा श्राद्ध अक्षय होगा । इस (रामेश्वर) लिंगके स्मरण करने मात्रसे ही दिनभरका पाप नष्ट हो जायगा ॥ ४७—५२ ॥

ऐसा कहकर भगवान् शम्भुने रघुवंशी रामका आलिंगन किया और नन्दी तथा अपने गणोंके साथ वे रुद्र (शम्भु) वहीं अन्तर्धान हो गये । भरतके द्वारा अभिषिक्त होकर महाबली, महातेजस्वी तथा धर्मपरायण रामने भी राज्यका पालन किया ॥ ५३—५४ ॥

विशेषाद् ब्राह्मणान् सर्वान् पूजयामास चेश्वरम्।  
यज्ञेन यज्ञहन्तारमश्वमेधेन शंकरम्॥ ५५ ॥

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः।  
लवश्च सुमहाभागः सर्वतत्त्वार्थवित् सुधीः॥ ५६ ॥

अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तसुतोऽभवत्।  
नलस्तु निषधस्याभून्नभस्तस्मादजायत॥ ५७ ॥

नभसः पुण्डरीकाख्यः क्षेमधन्वा च तत्सुतः।  
तस्य पुत्रोऽभवद् वीरो देवानीकः प्रतापवान्॥ ५८ ॥

अहीनगुस्तस्य सुतो सहस्वांस्तसुतोऽभवत्।  
तस्माच्चन्द्रावलोकस्तु तारापीडस्तु तत्सुतः॥ ५९ ॥

तारापीडाच्चन्द्रगिरिर्भानुवित्सत्ततोऽभवत्।  
श्रुतायुरभवत् तस्मादेते इक्ष्वाकुवंशजाः।

सर्वे प्राधान्यतः प्रोक्ताः समासेन द्विजोत्तमाः॥ ६० ॥

य इमं शृणुयान्नित्यमिक्ष्वाकोर्वशमुत्तमम्।  
सर्वपापविनिर्मुक्तो स्वर्गलोके महीयते॥ ६१ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्राणां संहितायां पूर्वविभागे विंशोऽध्यायः॥ २० ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २० ॥

विशेष रूपसे उन्होंने सभी ब्राह्मणोंकी पूजा की और अश्वमेध यज्ञके द्वारा यज्ञहन्ता\* ईश्वर शंकरकी अर्चना की॥ ५५ ॥

रामके 'कुश' नामसे विख्यात तथा सुन्दर महान् भाग्यशाली, सभी तत्त्वार्थोंको जाननेवाले बुद्धिमान् 'लव' नामसे विख्यात दो पुत्र हुए। कुशसे अतिथि उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र निषध हुआ। निषधका पुत्र नल और उसका पुत्र नभस हुआ। नभससे पुण्डरीक नामवाला पुत्र हुआ और क्षेमधन्वा उसका पुत्र था। उस क्षेमधन्वाका देवानीक नामक वीर एवं प्रतापी पुत्र हुआ। उस (देवानीक)-का पुत्र अहीनगु और उसका पुत्र सहस्वान् हुआ। उससे चन्द्रावलोक तथा उसका पुत्र तारापीड हुआ। तारापीडसे चन्द्रगिरि तथा चन्द्रगिरिका भानुवित्त हुआ। उस (भानुवित्त)-से श्रुतायु नामक पुत्र हुआ। ये सभी इक्ष्वाकुके वंशज हैं। द्विजोत्तमो! संक्षेपमें इनमें प्रधान-प्रधान (राजाओं)-को बताया गया है॥ ५६—६० ॥

जो इस श्रेष्ठ इक्ष्वाकुवंशके वर्णनको सुनेगा, वह सभी पापोंसे निर्मुक्त होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होगा॥ ६१ ॥

## इक्ष्वाकुसवाँ अध्याय

चन्द्रवंशके राजाओंका वृत्तान्त, यदुवंश-वर्णनमें कार्तवीर्यार्जुनके पाँच पुत्रोंका आख्यान,  
परम विष्णुभक्त राजा जयध्वजकी कथा, विदेह दानवका पराक्रम तथा जयध्वजद्वारा  
विष्णुके अनुग्रहसे उसका वध, विश्वामित्रद्वारा विष्णुकी आराधनाका जयध्वजको  
उपदेश करना और जयध्वजको विष्णुका दर्शन

रोमहर्षण उवाच

ऐलः पुरुरवाश्वाथ राजा राज्यमपालयत्।  
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रसमतेजसः॥ १ ॥  
आयुर्मायुरमावायुर्विश्वायुश्चैव वीर्यवान्।  
शतायुश्च श्रुतायुश्च दिव्याश्चैवोर्वशीसुताः॥ २ ॥  
आयुषस्तनया वीराः पञ्चवासन् महौजसः।  
स्वर्भानुतनयायां वै प्रभायामिति नः श्रुतम्॥ ३ ॥  
नहुषः प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविश्रुतः।  
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः॥ ४ ॥

रोमहर्षणने कहा—इलाका पुत्र राजा पुरुरवा राज्यका पालन करने लगा। उसको इन्द्रके समान तेजस्वी आयु, मायु, अमावायु, वीर्यवान् विश्वायु, शतायु तथा श्रुतायु नामवाले छः पुत्र हुए। ये उर्वशीके दिव्य पुत्र थे॥ १-२ ॥

हमने सुना है कि आयुको स्वर्भानु (राहु)-की कन्या प्रभासे पाँच महान् ओजस्वी पुत्र हुए थे। उनमें नहुष प्रथम (पुत्र) था, जो धर्मज्ञ और लोकमें विख्यात था।

\* भगवान् शंकरने दक्षके यज्ञका विध्वंस कराया था इसलिये उनको यज्ञहन्ता कहा जाता है।

उत्पन्नः पितृकन्यायां विरजायां महाबलाः।  
यतिर्यथातिः संयातिरायतिः पञ्चकोऽश्वकः॥ ५ ॥

तेषां ययातिः पञ्चानां महाबलपराक्रमः।  
देवयानीभुशनसः सुतां भार्यामवाप सः।  
शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः॥ ६ ॥  
यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत।  
द्वुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा चाप्यजीजनत्॥ ७ ॥

सोऽध्यष्ठिञ्चदतिक्रम्य ज्येष्ठं यदुमनिन्दितम्।  
पूरुमेव कनीयांसं पितुर्वचनपालकम्॥ ८ ॥  
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं पुत्रमादिशत्।  
दक्षिणापरयो राजा यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत्।  
प्रतीच्यामुत्तरायां च द्वुह्युं चानुमकल्पयत्॥ ९ ॥  
तैरियं पृथिवी सर्वा धर्मतः परिपालिता।  
राजापि दारसहितो वनं प्राप महायशाः॥ १० ॥

यदोरप्यभवन् पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः।  
सहस्रजित् तथा ज्येष्ठः क्रोष्टुर्नीलोऽजितो रघुः॥ ११ ॥  
सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिन्नाम पार्थिवः।  
सुताः शतजितोऽप्यासंस्त्रयः परमधार्मिकाः॥ १२ ॥  
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयः परः।  
हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्म इत्यभिविश्रुतः॥ १३ ॥  
तस्य पुत्रोऽभवद् विग्रा धर्मनेत्रः प्रतापवान्।  
धर्मनेत्रस्य कीर्तिस्तु संजितस्तसुतोऽभवत्॥ १४ ॥  
महिष्मान् संजितस्याभूद् भद्रश्रेण्यस्तदन्वयः।  
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम पार्थिवः॥ १५ ॥  
दुर्दमस्य सुतो धीमान् धनको नाम वीर्यवान्।  
धनकस्य तु दायादाश्वत्वारो लोकसम्मताः॥ १६ ॥  
कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च।  
कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत् कार्तवीर्योऽर्जुनोऽभवत्॥ १७ ॥  
सहस्रबाहुर्द्युतिमान् धनुर्वेदविदां वरः।  
तस्य रामोऽभवन्मृत्युर्जामिदगन्यो जनार्दनः॥ १८ ॥

तस्य पुत्रशतान्यासन् पञ्च तत्र महारथाः।  
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो मनस्विनः॥ १९ ॥

पितरोंकी कन्या विरजासे नहुषको यति, ययाति, संयाति, आयाति तथा पाँचवें अश्वक नामवाले इन्द्रके समान तेजस्वी महाबलशाली पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। इन पाँचोंमें से ययाति महान् बलशाली और पराक्रमी था। उसने शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी तथा वृषपर्वाकी असुर-वंशमें उत्पन्न शर्मिष्ठा नामकी कन्याको पलीरूपमें प्राप किया ॥ ३—६ ॥

देवयानीने यदु तथा तुर्वसुको जन्म दिया। इसी प्रकार शर्मिष्ठाने भी द्वृहु, अनु तथा पूरुको उत्पन्न किया। उस (ययाति)-ने अनिन्दित ज्येष्ठ पुत्र यदुका अतिक्रमणकर पिताके वचनका पालन करनेवाले छोटे पुत्र पूरुको ही (राजपदपर) अभिषिक्त किया ॥ ७—८ ॥

राजा ययातिने दक्षिण-पूर्व दिशामें तुर्वसु नामक पुत्रको, दक्षिण-पश्चिम दिशामें ज्येष्ठ पुत्र यदुको, पश्चिममें द्वृहुको और उत्तर दिशामें अनुको (राजाके रूपमें) नियुक्त किया। उन्होंने इस सम्पूर्ण पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया। महायशस्वी राजा (ययाति) भी पलीसहित वन चले गये। यदुके भी देवपुत्रोंके समान सहस्रजित्, क्रोष्ट, नील, अजित तथा रघु नामक पाँच पुत्र हुए, उनमें सहस्रजित् सबसे बड़ा था ॥ ९—११ ॥

सहस्रजित्का उसीके समान शतजित् नामका पुत्र राजा था। शतजित्के भी हैह्य, हय और वेणुहय नामक परम धार्मिक तीन पुत्र थे। हैहयका पुत्र ‘धर्म’ नामसे विख्यात हुआ ॥ १२—१३ ॥

विप्रो! उसका (धर्मका) धर्मनेत्र नामवाला प्रतापी पुत्र हुआ। धर्मनेत्रका कीर्ति और उसका पुत्र संजित हुआ। संजितका महिष्मान् हुआ और उसका पुत्र भद्रश्रेण्य था। भद्रश्रेण्यका दुर्दम नामका पुत्र राजा था। दुर्दमका धनक नामवाला बुद्धिमान् और वीर्यवान् पुत्र था। धनकके लोकमें सम्मानित चार पुत्र हुए—कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा तथा चौथा कृतौजा। कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन हुआ। वह हजार बाहुओंवाला, द्युतिमान् तथा धनुर्वेद जानेवालोंमें श्रेष्ठ था। जमदग्निके पुत्र जनार्दन परशुराम उस (सहस्रार्जुन)-के लिये मृत्युरूप हुए। (अर्थात् परशुरामके द्वारा वह मारा गया) ॥ १४—१८ ॥

उस (सहस्रबाहु)-के सौ पुत्र थे, जिनमें पाँच पुत्र महारथी, अस्त्र-सम्पन्न, बली, शूर, धर्मात्मा तथा मनस्वी थे ॥ १९ ॥

शूरश्च शूरसेनश्च धृष्णः कृष्णस्तथैव च ।  
जयध्वजश्च बलवान् नारायणपरो नृपः ॥ २० ॥

शूरसेनादयः सर्वे चत्वारः प्रथितौजसः ।  
रुद्रभक्ता महात्मानः पूजयन्ति स्म शंकरम् ॥ २१ ॥

जयध्वजस्तु मतिमान् देवं नारायणं हरिम् ।  
जगाम शरणं विष्णुं दैवतं धर्मतत्परः ॥ २२ ॥

तमूचुरितरे पुत्रा नायं धर्मस्तवानघ ।  
ईश्वराराधनरतः पितास्माकमभूदिति ॥ २३ ॥

तानब्रवीन्महातेजा एष धर्मः परो मम ।  
विष्णोरंशेन सम्भूता राजानो यन्महीतले ॥ २४ ॥

राज्यं पालयतावश्यं भगवान् पुरुषोत्तमः ।  
पूजनीयो यतो विष्णुः पालको जगतो हरिः ॥ २५ ॥

सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च स्वयम्भुवः ।  
तिस्वस्तु मूर्तयः प्रोक्ताः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः ॥ २६ ॥

सत्त्वात्मा भगवान् विष्णुः संस्थापयति सर्वदा ।  
सृजेद् ब्रह्मा रजोमूर्तिः संहरेत् तामसो हरः ॥ २७ ॥

तस्मान्महीपतीनां तु राज्यं पालयतामयम् ।  
आराध्यो भगवान् विष्णुः केशवः केशिमर्दनः ॥ २८ ॥

निशम्य तस्य वचनं भ्रातरोऽन्ये मनस्त्वनः ।  
प्रोचुः संहारकृद् रुद्रः पूजनीयो मुमुक्षुभिः ॥ २९ ॥

अयं हि भगवान् रुद्रः सर्वं जगदिदं शिवः ।  
तमोगुणं समाश्रित्य कल्पान्ते संहरेत् प्रभुः ॥ ३० ॥

या सा घोरतरा मूर्तिरस्य तेजोमयी परा ।  
संहरेद् विद्यया सर्वं संसारं शूलभृत् तया ॥ ३१ ॥

ततस्तानब्रवीद् राजा विचिन्त्यासौ जयध्वजः ।  
सत्त्वेन मुच्यते जन्तुः सत्त्वात्मा भगवान् हरिः ॥ ३२ ॥

तमूचुभ्रातरो रुद्रः सेवितः सात्त्विकैर्जनैः ।  
मोचयेत् सत्त्वसंयुक्तः पूजयेशं ततो हरम् ॥ ३३ ॥

अथाब्रवीद् राजपुत्रः प्रहसन् वै जयध्वजः ।  
स्वधर्मो मुक्तये पन्था नान्यो मुनिभिरिष्यते ॥ ३४ ॥

शूर, शूरसेन, धृष्ण, कृष्ण तथा पाँचवाँ पुत्र राजा जयध्वज बलवान् तथा नारायणका भक्त था। शूरसेन आदि चार पुत्र महात्मा एवं अति तेजस्वी और रुद्रके भक्त थे। वे सभी शंकरकी पूजा करते थे। धर्मपरायण एवं बुद्धिमान् जयध्वज नारायण देव हरि विष्णु देवताकी शरणमें गया। अन्य पुत्रों (उसके चार भाइयों)-ने उससे कहा—अनघ! यह तुम्हारा धर्म नहीं है। हमारे पिता शंकरकी आराधना करते थे ॥ २०—२३ ॥

इसपर महातेजस्वी (जयध्वज)-ने उनसे कहा—यही मेरा श्रेष्ठ धर्म है। पृथ्वीपर जो भी राजा हुए हैं, वे सभी विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। राज्यका परिपालन करनेवालोंको चाहिये कि भगवान् पुरुषोत्तमकी अवश्य आराधना करें। क्योंकि हरि विष्णु संसारके पालनकर्ता हैं। स्वयम्भू (विष्णु)-की सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी—ये तीन मूर्तियाँ कही गयी हैं, जो क्रमशः सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाली हैं। सत्त्वगुणसम्पन्न भगवान् विष्णु नित्य पालन करते हैं। रजोमूर्ति ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और तमोगुणात्मक हर संहार करते हैं। अतएव राज्यका पालन करनेवाले राजाओंके लिये केशीका मर्दन करनेवाले केशव भगवान् विष्णु आराधनीय हैं ॥ २४—२८ ॥

उस (जयध्वज)-का वचन सुनकर उसके दूसरे मनस्वी भाइयोंने कहा—मुक्तिप्राप्तिकी इच्छा करनेवालोंके लिये संहार करनेवाले रुद्र ही पूजनीय हैं। ये ही कल्याणकारी प्रभु भगवान् रुद्र कल्पान्तमें तमोगुणका आश्रय लेकर इस सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं। इनकी जो अति घोर तेजोमयी परा मूर्ति है, वही विद्या (ज्ञान-विवेक)-स्वरूप है। शक्ति-रूपमें उसीके द्वारा त्रिशूल धारण करनेवाले शंकर सम्पूर्ण संसारका संहार करते हैं ॥ २९—३१ ॥

तब वह राजा जयध्वज कुछ विचार करके उनसे बोला—सत्त्वगुणद्वारा ही प्राणी मुक्त होता है और वे भगवान् सत्त्वात्मक हैं ॥ ३२ ॥

इसपर भाइयोंने उससे कहा—सात्त्विकजनोंके द्वारा सेवित रुद्र सत्त्वगुणसे सम्पन्न होकर मुक्त करते हैं, अतः ईश्वर हरकी पूजा करो। तब राजपुत्र जयध्वजने हँसते हुए कहा—मुक्तिके लिये स्वधर्म-पालन ही एकमात्र मार्ग है। मुनिलोग अन्य (धर्म)-की इच्छा नहीं करते ॥ ३३—३४ ॥

तथा च वैष्णवी शक्तिरूपाणां देवता सदा ।  
आराधनं परो धर्मो मुरारेमितौजसः ॥ ३५ ॥

तमब्रवीद् राजपुत्रः कृष्णो मतिमतां वरः ।  
यदर्जुनोऽस्मज्जनकः स्वधर्मं कृतवानिति ॥ ३६ ॥

एवं विवादे वितते शूरसेनोऽब्रवीद् वचः ।  
प्रमाणमृषयो ह्यत्र ब्रूयुस्ते यत् तथैव तत् ॥ ३७ ॥  
ततस्ते राजशार्दूलाः पप्रच्छुर्ब्रह्मवादिनः ।  
गत्वा सर्वे सुसंरब्धाः सप्तर्षीणां तदाश्रमम् ॥ ३८ ॥  
तानब्रुवंस्ते मुनयो वसिष्ठाद्या यथार्थतः ।  
या यस्याभिमता पुंसः सा हि तस्यैव देवता ॥ ३९ ॥

किन्तु कार्यविशेषेण पूजिताश्चेष्टदा नृणाम् ।  
विशेषात् सर्वदा नायं नियमो ह्यन्यथा नृपाः ॥ ४० ॥

नृपाणां दैवतं विष्णुस्तथैव च पुरंदरः ।  
विग्राणामग्निरादित्यो ब्रह्मा चैव पिनाकधृक् ॥ ४१ ॥

देवानां दैवतं विष्णुदर्शनवानां त्रिशूलभृत् ।  
गन्धर्वाणां तथा सोमो यक्षाणामपि कथ्यते ॥ ४२ ॥  
विद्याधराणां वागदेवी साध्यानां भगवान् रविः ।  
रक्षसां शंकरो रुद्रः किंनराणां च पार्वती ॥ ४३ ॥  
ऋषीणां दैवतं ब्रह्मा महादेवश्च शूलभृत् ।  
मनुनां स्यादुमा देवी तथा विष्णुः सभास्करः ॥ ४४ ॥  
गृहस्थानां च सर्वे स्वर्ब्रह्मा वै ब्रह्मचारिणाम् ।  
वैखानसानामर्कः स्याद् यतीनां च महेश्वरः ॥ ४५ ॥  
भूतानां भगवान् रुद्रः कूष्माण्डानां विनायकः ।  
सर्वेषां भगवान् ब्रह्मा देवदेवः प्रजापतिः ॥ ४६ ॥  
इत्येवं भगवान् ब्रह्मा स्वयं देवोऽभ्यभाषत ।  
तस्माज्यथ्वजो नूनं विष्णवाराधनमर्हति ॥ ४७ ॥

तान् प्रणाम्याथ ते जग्मुः पुरीं परमशोभनाम् ।  
पालयाञ्छक्रिरे पृथ्वीं जित्वा सर्वरिपून् रणे ॥ ४८ ॥

साथ ही राजाओंके लिये वैष्णवी शक्ति ही सदा देवता-रूप है। अमित तेजस्वी मुरारिकी आराधना करना परम धर्म है ॥ ३५ ॥

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ राजपुत्र कृष्ण (जयध्वजके भाई)–ने उससे (जयध्वजसे) कहा—हम लोगोंके पिता अर्जुनने (सहस्रार्जुन या कार्तवीर्यार्जुनने) जिसे स्वधर्म माना है (वही हम लोगोंको भी मान्य होना चाहिये)। इस प्रकार विवादके बढ़ जानेपर शूरसेन (जयध्वजके दूसरे भाई)–ने यह बात कही—इस विषयमें ऋषि ही प्रमाण हैं, अतः वे जैसा कहेंगे, हम लोगोंको वैसा ही करना चाहिये ॥ ३६—३७ ॥

तदनन्तर वे सभी राजश्रेष्ठ तैयार होकर सप्तर्षियोंके आश्रममें गये और (उन) ब्रह्मवादियोंसे पूछा—वसिष्ठ आदि उन मुनियोंने तत्त्वकी बात बताते हुए उनसे कहा—जिस पुरुषको जो देवता अभिमत हो, वही उसका अभीष्ट देवता है। किंतु किसी विशेष कार्यसे पूजित (तत्तद्-देवता) मनुष्योंको अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। राजाओ! विशेष अर्थात् किसी उद्देश्यसे की जानेवाली पूजा सदा नहीं की जाती, क्योंकि कामनापरक आराधनाके नियम दूसरे प्रकारके होते हैं (वे सदा सब स्थितियोंमें पालनीय नहीं हो सकते)। राजाओंके देवता विष्णु और इन्द्र हैं। ब्राह्मणोंके देवता अग्नि, सूर्य, ब्रह्मा तथा पिनाकधारी शिव हैं। देवताओंके देवता विष्णु और दानवोंके त्रिशूलधारी शिव हैं। गन्धर्वों और यक्षोंके देवता सोम कहे गये हैं ॥ ३८—४२ ॥

विद्याधरोंके देवता वागदेवी तथा साध्योंके भगवान् सूर्य हैं। राक्षसोंके शंकर रुद्र और किंनरोंकी देवता पार्वती हैं। ऋषियोंके देवता ब्रह्मा और त्रिशूलधारी महादेव हैं। मनुष्योंके देवता उमा देवी, विष्णु तथा सूर्य हैं। गृहस्थोंके लिये सभी देवता (पूज्य) हैं। ब्रह्मचारियोंके देवता ब्रह्मा, वैखानसोंके सूर्य तथा सन्त्यासियोंके महेश्वर देवता हैं। भूतोंके भगवान् रुद्र, कूष्माण्डोंके विनायक और देवाधि-देव प्रजापति भगवान् ब्रह्मा सभीके देवता हैं ॥ ४३—४६ ॥

(सप्तर्षियोंने कहा) स्वयं भगवान् ब्रह्माने ही यह कहा है, इसलिये निश्चित ही जयध्वज विष्णुकी आराधना करनेके योग्य हैं। तब वे सभी उन्हें प्रणामकर परम सुन्दर अपनी पुरीको चले गये और युद्धमें सभी शत्रुओंको जीतकर पृथ्वीका पालन करने लगे ॥ ४७—४८ ॥

ततः कदाचिद् विप्रेन्द्रा विदेहो नाम दानवः ।  
भीषणः सर्वसत्त्वानां पुरीं तेषां समाययौ ॥ ४९ ॥

दंष्ट्राकरालो दीपात्मा युगान्तदहनोपमः ।  
शूलमादाय सूर्याभं नादयन् वै दिशो दश ॥ ५० ॥

तत्रादश्रवणान्मत्यास्तत्र ये निवसन्ति ते ।  
तत्यजुर्जीवितं त्वन्ये दुद्धुवर्भयविह्वलाः ॥ ५१ ॥

ततः सर्वे सुसंयत्ताः कार्तवीर्यात्मजास्तदा ।  
युयुधुर्दानवं शक्तिगिरिकूटासिमुद्गरैः ॥ ५२ ॥

तान् सर्वान् दानवो विप्राः शूलेन प्रहसन्निव ।  
वारयामास घोरात्मा कल्पान्ते भैरवो यथा ॥ ५३ ॥

शूरसेनादयः पञ्च राजानस्तु महाबलाः ।  
युद्धाय कृतसंरम्भा विदेहं त्वभिदुद्धुवुः ॥ ५४ ॥

शूरोऽस्त्रं प्राहिणोद रौद्रं शूरसेनस्तु वारुणम् ।  
प्राजापत्यं तथा कृष्णो वायव्यं धृष्णा एव च ॥ ५५ ॥

जयध्वजश्च कौबेरमैन्द्रमाग्नेयमेव च ।  
भञ्जयामास शूलेन तान्यस्त्राणि स दानवः ॥ ५६ ॥

ततः कृष्णो महावीर्यो गदामादाय भीषणाम् ।  
स्पृष्टा मन्त्रेण तरसा चिक्षेप च ननाद च ॥ ५७ ॥

सम्प्राप्य सा गदाऽस्योरो विदेहस्य शिलोपमम् ।  
न दानवं चालयितुं शशाकान्तकसंनिभम् ॥ ५८ ॥

दुद्धुवुस्ते भयग्रस्ता दृष्टा तस्यातिपौरुषम् ।  
जयध्वजस्तु मतिमान् सस्मार जगतः पतिम् ॥ ५९ ॥

विष्णुं ग्रसिष्णुं लोकादिमप्रमेयमनामयम् ।  
त्रातारं पुरुषं पूर्वं श्रीपतिं पीतवाससम् ॥ ६० ॥

ततः प्रादुरभूच्यकं सूर्यायुतसमप्रभम् ।  
आदेशाद् वासुदेवस्य भक्तानुग्रहकारणात् ॥ ६१ ॥

जग्राह जगतां योनिं स्मृत्वा नारायणं नृपः ।  
प्राहिणोद वै विदेहाय दानवेभ्यो यथा हरिः ॥ ६२ ॥

सम्प्राप्य तस्य घोरस्य स्कन्धदेशं सुदर्शनम् ।  
पृथिव्यां पातयामास शिरोऽद्विशिखराकृतिः ॥ ६३ ॥

तस्मिन् हते देवरिपौ शूराद्या भ्रातरो नृपाः ।  
समाययुः पुरीं रम्यां भ्रातरं चाप्यपूजयन् ॥ ६४ ॥

श्रुत्वाजगाम भगवान् जयध्वजपराक्रमम् ।  
कार्तवीर्यसुतं द्रष्टुं विश्वामित्रो महामुनिः ॥ ६५ ॥

विप्रेन्द्रो ! तदनन्तर किसी दिन सभी प्राणियोंके लिये भयंकर विदेह नामका दानव उनकी पुरीमें चला आया । भयंकर दाढ़ोंवाला, प्रलयकालीन अग्निके समान उद्दीप (वह दानव) सूर्यके समान चमकते हुए शूलको लेकर दसों दिशाओंमें गरजने लगा । उसकी (भयंकर) गर्जनाको सुनकर वहाँ रहनेवाले कुछ मनुष्योंने प्राण त्याग दिये और दूसरे भयसे विह्वल होकर भाग पड़े ॥ ४९—५१ ॥

तब कार्तवीर्यके सभी पुत्र सावधान होकर शक्ति (सेना), पर्वतशिला, तलवार तथा मुद्गरोंसे उस दानवके साथ युद्ध करने लगे । ब्राह्मणो ! उस भयंकर दानवने शूलसे उन सभीका हँसते हुए वैसे ही निवारण कर दिया जैसे प्रलयकालमें भैरव करते हैं । तब महाबली शूरसेन आदि वे पाँच राजा युद्धके लिये तैयारी कर विदेह दानवपर ठूट पड़े ॥ ५२—५४ ॥

शूरने रौद्रास्त्र, शूरसेनने वारुणास्त्र, कृष्णने प्राजापत्यास्त्र, धृष्णने वायव्यास्त्र और जयध्वजने कौबेर, ऐन्द्र तथा आग्नेयास्त्र चलाया, किंतु उस दानवने शूलसे उन सभी अस्त्रोंको तोड़ डाला । तब महावीर्यशाली कृष्णने भीषण गदा लेकर मन्त्रसे उसे अभिमन्त्रित कर वेगपूर्वक फेंका और गर्जना की । वह गदा उस विदेहकी पथरके समान छातीपर लगकर भी यमराज-तुल्य उस दानवको विचलित करनेमें समर्थ न हो सकी ॥ ५५—५८ ॥

उसके महान् पौरुषको देखकर भयग्रस्त हो वे सभी भागने लगे । तब बुद्धिमान् जयध्वजने अप्रमेय, अनामय, लोकादि, ग्रसिष्णु, त्राणकर्ता, पूर्वपुरुष, श्रीपति और पीताम्बरधारी जगत्पति विष्णुका स्मरण किया । स्मरण करते ही भक्तपर अनुग्रह करनेके लिये वासुदेवकी आज्ञासे दस हजार सूर्योंके समान प्रकाशमान चक्र प्रकट हुआ । राजा (जयध्वज)-ने जगद्योनि नारायणका ध्यानकर उस चक्रको ग्रहण किया और विदेह (दानव)-पर उसी प्रकार चलाया जैसे विष्णु दानवोंपर चलाते हैं ॥ ५९—६२ ॥

सुदर्शनचक्र उस भयंकर दानवके कंधेपर लगा और उसने उसके पर्वत-शिखरके समान सिरको पृथ्वीपर गिरा दिया । देवताओंके शत्रु उस (विदेह दानव)-के मारे जानेपर राजा शूर आदि सभी भाई अपनी रमणीय पुरीमें चले आये और उन्होंने भाई (जयध्वज)-की पूजा की । महामुनि भगवान् विश्वामित्र जयध्वजके पराक्रमको सुनकर उस कीर्तवीर्यपुत्रको देखने आये ॥ ६३—६५ ॥

तमागतमथो दृष्ट्वा राजा सम्भ्रान्तमानसः ।  
समावेश्यासने रम्ये पूजयामास भावतः ॥ ६६ ॥

उवाच भगवान् घोरः प्रसादाद् भवतोऽसुरः ।  
निपातितो मया संख्ये विदेहो दानवेश्वरः ॥ ६७ ॥

त्वद्वाक्याच्छ्रवसंदेहो विष्णुं सत्यपराक्रमम् ।  
प्रपन्नः शरणं तेन प्रसादो मे कृतः शुभः ॥ ६८ ॥

यक्ष्यामि परमेशानं विष्णुं पद्मदलेक्षणम् ।  
कथं केन विधानेन सम्पूज्यो हरिरीश्वरः ॥ ६९ ॥

कोऽयं नारायणो देवः किम्प्रभावश्च सुव्रतः ।  
सर्वमेतन्ममाचक्षव परं कौतूहलं हि मे ॥ ७० ॥

विश्वामित्र उवाच

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां यस्मिन् सर्वमिदं जगत् ।  
स विष्णुः सर्वभूतात्मा तमाश्रित्य विमुच्यते ॥ ७१ ॥

स्ववर्णाश्रमधर्मेण पूज्योऽयं पुरुषोत्तमः ।  
अकामहतभावेन समाराध्यो न चान्यथा ॥ ७२ ॥

एतावदुक्त्वा भगवान् विश्वामित्रो महामुनिः ।  
शूराद्यैः पूजितो विप्रा जगामाथ स्वमालयम् ॥ ७३ ॥

अथ शूरादयो देवमयजन्त महेश्वरम् ।  
यज्ञेन यज्ञगम्यं तं निष्कामा रुद्रमव्ययम् ॥ ७४ ॥

तान् वसिष्ठस्तु भगवान् याजयामास सर्ववित् ।  
गौतमोऽत्रिरगस्त्यश्च सर्वे रुद्रपरायणाः ॥ ७५ ॥

विश्वामित्रस्तु भगवान् जयध्वजमर्दिमम् ।  
याजयामास भूतादिमादिदेवं जनार्दनम् ॥ ७६ ॥

तस्य यज्ञे महायोगी साक्षात् देवः स्वयं हरिः ।  
आविरासीत् स भगवान् तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७७ ॥

य इमं शृणुयान्नित्यं जयध्वजपराक्रमम् ।  
सर्वपापविमुक्तात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ७८ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्राणां संहितायां पूर्वविभागे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २१ ॥

उनको (विश्वामित्रको) आया देखकर आश्वर्यचकित मनवाले राजा (जयध्वज)-ने सुन्दर आसनपर उन्हें बिठाया और भक्तिभावसे उनकी पूजा की तथा कहा— भगवन्! आपकी ही कृपासे मैंने युद्धमें भयंकर असुर दानवेश्वर विदेहको मार गिराया। आपके कहनेसे मैं संशयमुक्त होकर सत्यपराक्रमी विष्णुकी शरणमें गया और उन्होंने मेरे ऊपर शुभ अनुग्रह किया। कमलदलके समान नेत्रबाले, परम ईशान विष्णुका मैं पूजन करूँगा, उन ईश्वर हरिका किस विधानसे किस प्रकार पूजन किया जाना चाहिये। सुन्दर! ये नारायण देव कौन हैं? उनका क्या प्रभाव है? यह सब मुझे बतलाइये, मुझे (इस विषयमें) अत्यधिक कौतूहल है ॥ ६६—७० ॥

विश्वामित्रने कहा—जिनसे सभी प्राणियोंकी प्रवृत्ति होती है और जिनमें यह सम्पूर्ण जगत् (प्रतिष्ठित) है, वे विष्णु सभी प्राणियोंके आत्मरूप हैं, उनका आश्रय ग्रहण करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। अपने-अपने वर्ण और आश्रमधर्ममें स्थित रहते हुए केवल निष्कामभावसे उन पुरुषोत्तम (विष्णु)-का पूजन करना चाहिये अन्य किसी भावसे नहीं ॥ ७१-७२ ॥

इतना कहकर महामुनि भगवान् विश्वामित्र उन शूरसेन आदिके द्वारा पूजित होकर अपने निवास-स्थानको छले गये। तदनन्तर शूरसेन आदिने यज्ञके द्वारा कामनारहित होकर यज्ञ-गम्य उन अव्यय रुद्रदेव महेश्वरका यजन किया ॥ ७३-७४ ॥

सर्वज्ञ भगवान् वसिष्ठ तथा रुद्रभक्त, गौतम, अत्रि तथा अगस्त्यने उन लोगोंका यज्ञ कराया। भगवान् विश्वामित्रने शत्रुओंका दमन करनेवाले जयध्वजसे प्राणियोंके आदि कारण आदिदेव जनार्दन-सम्बस्थी (विष्णु) यज्ञ कराया। उस (जयध्वज)-के यज्ञमें महायोगी देव स्वयं भगवान् हरि साक्षात् प्रकट हुए। यह एक अद्भुत बात हुई ॥ ७५—७७ ॥

जो जयध्वजके इस पराक्रमको नित्य सुनेगा, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त करेगा ॥ ७८ ॥

## बाईंसवाँ अध्याय

जयध्वजके वंश-वर्णनमें राजा दुर्जयका आख्यान, महामुनि कणवद्वारा दुर्जयको  
वाराणसीके विश्वेश्वर-लिंगका माहात्म्य बतलाना, दुर्जयका वाराणसी  
जाकर पाप-मुक्त होना तथा सहस्रजित्-वंशका वर्णन

सूत उवाच

जयध्वजस्य पुत्रोऽभूत् तालजङ्घे इति स्मृतः ।  
शतपुत्रास्तु तस्यासन् तालजङ्घाः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥  
तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृपः ।  
वृषप्रभृतयश्चान्ये यादवाः पुण्यकर्मिणः ॥ २ ॥  
वृषो वंशकरस्तेषां तस्य पुत्रोऽभवन्नधुः ।  
मधोः पुत्रशतं त्वासीद् वृषणस्तस्य वंशभाक् ॥ ३ ॥  
वीतिहोत्रसुतश्चापि विश्रुतोऽनन्त इत्युत ।  
दुर्जयस्तस्य पुत्रोऽभूत् सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ४ ॥  
तस्य भार्या रूपवती गुणैः सर्वैरलंकृता ।  
पतिव्रतासीत् पतिना स्वर्धर्मपरिपालिका ॥ ५ ॥  
स कदाचिन्महाभागः कालिन्दीतीरसंस्थिताम् ।  
अपश्यदुर्वशीं देवीं गायन्तीं मधुरस्वनाम् ॥ ६ ॥

ततः कामाहतमनास्तत्समीपमुपेत्य वै ।  
प्रोवाच सुचिरं कालं देवि रन्तुं मयार्हसि ॥ ७ ॥

सा देवी नृपतिं दृष्ट्वा रूपलावण्यसंयुतम् ।  
रेमे तेन चिरं कालं कामदेवमिवापरम् ॥ ८ ॥  
कालात् प्रबुद्धो राजा तामुर्वशीं प्राह शोभनाम् ।  
गमिष्यामि पुरीं रम्यां हसन्ती सान्नदीद् वचः ॥ ९ ॥

न ह्यनेनोपभोगेन भवता राजसुन्दर ।  
प्रीतिः संजायते महां स्थातव्यं वत्सरं पुनः ॥ १० ॥  
तामन्नदीत् स मतिमान् गत्वा शीघ्रतरं पुरीम् ।  
आगमिष्यामि भूयोऽत्र तन्मेऽनुज्ञातुमर्हसि ॥ ११ ॥

तमन्नदीत् सा सुभगा तथा कुरु विशाम्पते ।  
नान्याप्सरसा तावद् रन्तव्यं भवता पुनः ॥ १२ ॥

ओमित्युक्त्वा ययौ तूर्णं पुरीं परमशोभनाम् ।  
गत्वा पतिव्रतां पत्नीं दृष्ट्वा भीतोऽभवन्नृपः ॥ १३ ॥

सूतजीने कहा—जयध्वजका एक पुत्र था जो तालजङ्घे नामसे प्रसिद्ध था। उसके सौ पुत्र हुए जो तालजङ्घे ही कहलाते थे। उनमें वीतिहोत्र नामका महान् बलवान् राजा सबसे बड़ा था। दूसरे वृष इत्यादि नामवाले यादव पुण्यकर्मा थे। उनमें वृष वंशको बढ़ानेवाला था, उसका मधु नामक पुत्र हुआ। मधुके सौ पुत्र हुए किंतु उनमें वृषण ही उस (मधु)-का वंशधर हुआ। वीतिहोत्रका भी विश्रुत अथवा अनन्त नामवाला एक पुत्र हुआ। उसका पुत्र दुर्जय हुआ जो सभी शास्त्रोंका ज्ञाता था। उसकी भार्या रूपवती तथा सभी गुणोंसे अलंकृत तथा पतिव्रता थी, वह पति दुर्जयके साथ अपने धर्मका पालन करती थी ॥ १—५ ॥

किसी समय उस महाभाग्यशाली (दुर्जय)-ने कालिन्दी नदीके किनारे बैठी हुई मधुर स्वरमें गीत गाती हुई देवी उर्वशीको देखा। तब कामके द्वारा विचलित मनवाला वह उसके समीपमें गया और कहने लगा—‘देवि ! चिरकालतक मेरे साथ रमण करो’। रूप और लावण्यसे सम्पन्न तथा दूसरे कामदेवके समान उस राजाको देखकर उस देवीने चिरकालतक उसके साथ रमण किया ॥ ६—८ ॥

बहुत समयके बाद ज्ञान होनेपर राजाने उस रमणीय उर्वशीसे कहा—‘अब मैं अपनी सुन्दर पुरीको जाऊँगा।’ इसपर वह हँसते हुए कहने लगी—राजसुन्दर ! आपके साथ इतने उपभोगसे मुझे प्रसन्नता (संतुष्टि) नहीं हुई है, अतः पुनः एक वर्षतक यहाँ और ठहरें ॥ ९—१० ॥

इसपर बुद्धिमान् (राजा)-ने उस (उर्वशी)-से कहा—मैं अपनी पुरीमें जाकर पुनः शीघ्र ही यहाँ वापस लौटूँगा, इसलिये मुझे जानेकी आज्ञा दो। उस सुभगाने उससे कहा—राजन् ! वैसा ही कीजिये, किंतु तबतक आप पुनः किसी अन्य अप्सराके साथ रमण न करें। ‘अच्छा’ ऐसा कहकर वह शीघ्र ही परम शोभन अपनी पुरीको चला गया। (पुरीमें) जाकर अपनी पतिव्रता पत्नीको देखकर वह राजा भयभीत हो गया ॥ ११—१३ ॥

सम्प्रेक्ष्य सा गुणवती भार्या तस्य पतिव्रता ।  
भीतं प्रसन्नया प्राह वाचा पीनपयोधरा ॥ १४ ॥

स्वामिन् किमत्र भवतो भीतिरद्य प्रवर्तते ।  
तद् ब्रूहि मे यथा तत्त्वं न राज्ञां कीर्तये त्विदम् ॥ १५ ॥  
स तस्या वाक्यमाकर्ण्य लज्जावनतचेतनः ।  
नोवाच किंचित्प्रतिज्ञानदृष्ट्या विवेद सा ॥ १६ ॥

न भेतव्यं त्वया स्वामिन् कार्यं पापविशोधनम् ।  
भीते त्वयि महाराज राष्ट्रं ते नाशमेष्यति ॥ १७ ॥  
तदा स राजा द्युतिमान् निर्गत्य तु पुरात् ततः ।  
गत्वा कण्वाश्रमं पुण्यं दृष्ट्वा तत्र महामुनिम् ॥ १८ ॥

निशम्य कण्ववदनात् प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ।  
जगाम हिमवत्पृष्ठं समुद्दिश्य महाबलः ॥ १९ ॥

सोऽपश्यत् पथि राजेन्द्रो गन्धर्ववरमुत्तमम् ।  
भ्राजमानं श्रिया व्योम्नि भूषितं दिव्यमालया ॥ २० ॥

वीक्ष्य मालाममित्रघ्नः सस्माराप्सरसां वराम् ।  
उर्वशीं तां मनश्चक्रे तस्या एवेयमर्हति ॥ २१ ॥  
सोऽतीव कामुको राजा गन्धर्वेणाथ तेन हि ।  
चकार सुमहद् युद्धं मालामादातुमुद्यतः ॥ २२ ॥  
विजित्य समरे मालां गृहीत्वा दुर्जयो द्विजाः ।  
जगाम तामप्सरसं कालिन्दीं द्रष्टुमादरात् ॥ २३ ॥  
अदृष्टाप्सरसं तत्र कामबाणाभिपीडितः ।  
बभ्राम सकलां पृथ्वीं समद्वीपसमन्विताम् ॥ २४ ॥  
आक्रम्य हिमवत्याशर्वमुर्वशीदर्शनोत्सुकः ।  
जगाम शैलप्रवरं हेमकूटमिति श्रुतम् ॥ २५ ॥  
तत्र तत्राप्सरोवर्या दृष्ट्वा तं सिंहविक्रमम् ।  
कामं संदधिरे घोरं भूषितं चित्रमालया ॥ २६ ॥

संस्मरनुर्वशीवाक्यं तस्यां संसक्तमानसः ।  
न पश्यति स्म ताः सर्वा गिरिशृङ्गाणि जग्मिवान् ॥ २७ ॥

उस राजाकी पीन पयोधरोंवाली उस गुणवती तथा पतिव्रता भार्याने डरे हुए (पति)-को देखकर प्रसन्न वाणीसे कहा—स्वामिन्! आज आप डर क्यों रहे हैं, जो भी बात हो मुझे सत्य-सत्य बतलायें। इस प्रकारका भय राजाओंके लिये कीर्तिकर नहीं है ॥ १४-१५ ॥

उसकी बात सुनकर उस (राजा)-का मन लज्जासे झुक गया। राजा कुछ भी नहीं बोला, किंतु उस (रानी)-ने ज्ञानदृष्टिसे (सब कुछ) जान लिया। (वह बोली—) स्वामिन्! आपको डरना नहीं चाहिये। पापका प्रायश्चित्त (शोधन) करना चाहिये। हे महाराज! आपके भयभीत रहनेसे आपका राष्ट्र नष्ट हो जायगा ॥ १६-१७ ॥

तब वह द्युतिमान् राजा अपने नगरसे बाहर निकलकर पवित्र कण्वके आश्रममें गया। वहाँ महामुनि (कण्व)-का दर्शनकर तथा कण्वके मुखसे प्रायश्चित्तकी कल्याणकारी विधि सुनकर प्रायश्चित्तके द्वारा आत्मशुद्धिके उद्देश्यसे वह महाबलवान् (राजा दुर्जय) हिमालय पर्वतकी ओर गया। उस राजेन्द्रने मार्गमें (जाते समय) आकाशमें अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए गन्धर्वश्रेष्ठोंमें उत्तम एक गन्धर्वको देखा, जो दिव्य मालासे विभूषित था। मालाको देखकर शत्रुओंका विनाश करनेवाले (उस राजाको) श्रेष्ठ अप्सरा उर्वशीका स्मरण हो आया। उसने मनमें विचार किया कि यह (माला) तो उस (उर्वशी)-के ही योग्य है ॥ १८—२१ ॥

तब माला प्राप्त करनेको उद्यत उस अत्यन्त कामुक राजाने उस गन्धर्वके साथ महान् युद्ध किया। ब्राह्मणो! युद्धमें गन्धर्वोंको जीतकर और माला लेकर वह दुर्जय उस अप्सराको देखनेके लिये आदरपूर्वक कालिन्दीके किनारे गया। वहाँ अप्सराको न देखकर कामदेवके बाणसे अत्यन्त पीड़ित वह सात द्वीपोंसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वीपर घूमने लगा। उर्वशीके दर्शनके लिये उत्सुक वह हिमालयके पार्श्वभागको पारकर उस श्रेष्ठ पर्वतपर पहुँचा जो 'हेमकूट' नामसे विख्यात है ॥ २२—२५ ॥

वहाँ उन-उन स्थानोंमें रहनेवाली वे श्रेष्ठ अप्सराएँ उस विचित्र मालासे विभूषित एवं सिंहके समान पराक्रमवाले राजाको देखकर अत्यन्त कामासक्त हो गयीं। उर्वशीके वाक्यका स्मरण करते हुए और उसीमें आसक्त मनवाले उस राजाने उन सभी (अप्सराओं)-को नहीं देखा और वह पर्वतोंके शिखरोंपर चला गया ॥ २६-२७ ॥

तत्राप्यप्सरसं दिव्यामदृष्टा कामपीडितः।  
देवलोकं महामेरुं ययौ देवपराक्रमः ॥ २८ ॥

स तत्र मानसं नाम सरस्त्रैलोक्यविश्रुतम्।  
भेजे शृङ्गाण्यतिक्रम्य स्वबाहुबलभावितः ॥ २९ ॥

स तस्य तीरे सुभगां चरन्तीमतिलालसाम्।  
दृष्टवाननवद्याङ्गीं तस्यै मालां ददौ पुनः ॥ ३० ॥

स मालया तदा देवीं भूषितां प्रेक्ष्य मोहितः।  
रेमे कृतार्थमात्मानं जानानः सुचिरं तथा ॥ ३१ ॥

अथोर्वशी राजवर्यं रतान्ते वाक्यमब्रवीत्।  
किं कृतं भवता पूर्वं पुरीं गत्वा वृथा नृप ॥ ३२ ॥

स तस्यै सर्वमाचष्ट पत्न्या यत् समुदीरितम्।  
कण्वस्य दर्शनं चैव मालापहरणं तथा ॥ ३३ ॥

श्रुत्वैतद् व्याहृतं तेन गच्छेत्याह हितैषिणी।  
शापं दास्यति ते कण्वो ममापि भवतः प्रिया ॥ ३४ ॥

तथासकृन्महाराजः प्रोक्तोऽपि मदमोहितः।  
न तत्याजाथ तत्पाश्वं तत्र संन्यस्तमानसः ॥ ३५ ॥

तदोर्वशी कामरूपा राज्ञे स्वं रूपमुत्कटम्।  
सरोमशं पिङ्गलाक्षं दर्शयामास सर्वदा ॥ ३६ ॥

तस्यां विरक्तचेतस्कः सृत्वा कण्वाभिभाषितम्।  
धिङ्मामिति विनिश्चित्य तपः कर्तुं समारभत् ॥ ३७ ॥

संवत्सरद्वादशकं कन्दमूलफलाशनः।  
भूय एव द्वादशकं वायुभक्षोऽभवन्नृपः ॥ ३८ ॥

गत्वा कण्वाश्रमं भीत्या तस्मै सर्वं न्यवेदयत्।  
वासमप्सरसा भूयस्तपोयोगमनुत्तमम् ॥ ३९ ॥

वीक्ष्य तं राजशार्दूलं प्रसन्नो भगवानृषिः।  
कर्तुकामो हि निर्बीजं तस्याधमिदमब्रवीत् ॥ ४० ॥

वहाँ भी दिव्य अप्सरा (उर्वशी)-को न देखकर देवताओंके समान पराक्रमवाला वह कामपीडित (राजा) देवताओंके स्थान महामेरुपर गया। अपने बाहुबलके प्रभावसे गिरिशिखरोंको पार करता हुआ वह तीनों लोकोंमें विख्यात 'मानस' नामक सरोवरपर पहुँचा। उसने उसके (मानसरोवरके) किनारेपर विचरण करती हुई सुन्दर अङ्गोंवाली अत्यन्त स्नेहमयी सुन्दरी (उर्वशी)-को देखा और वह माला उसे दे दी ॥ २८—३० ॥

तब उस देवीको मालासे विभूषित देखकर वह मोहित हो गया तथा अपनेको कृतार्थ समझते हुए उसने चिरकालतक उसके साथ रमण किया। अनन्तर उर्वशीने श्रेष्ठ राजासे कहा—राजन्! आपने पहले पुरीमें जाकर क्या किया, व्यर्थ ही आप वहाँ गये ॥ ३१—३२ ॥

तब उसने पलीद्वारा कही गयी वह बात, कण्व ऋषिका दर्शन तथा मालाका अपहरण—सभी कुछ उसे बता दिया ॥ ३३ ॥

उसके द्वारा कही गयी इन बातोंको सुनकर हित चाहनेवाली (उस उर्वशी)-ने 'आप चले जायँ'—ऐसा कहा। अन्यथा आपको कण्व शाप दे देंगे और आपकी प्रिया भी मुझे शाप दे देगी। बार-बार उसके कहनेपर भी (कामरूपी) मदसे मोहित हुए महाराजने उसका साथ नहीं छोड़ा, उसमें ही मन लगाये रखा ॥ ३४—३५ ॥

तदनन्तर इच्छानुसार रूप धारण कर लेनेवाली उर्वशी राजाको रोमोंसे युक्त, पिङ्गल वर्णके नेत्रोंवाला अपना उत्कट रूप सदा दिखलाने लगी। (उसका वह वीभत्स रूप देखकर) उसके प्रति विरक्त मनवाले राजाने कण्व (मुनि)-द्वारा कही गयी बातका स्मरणकर 'मुझे धिक्कार है' ऐसा निश्चयकर तप करना प्रारम्भ किया। राजाने बारह वर्षतक कन्द-मूल और फलका आहार किया और पुनः बारह वर्षोंतक केवल वायुका ही भक्षण किया ॥ ३६—३८ ॥

कण्वके आश्रममें जाकर राजाने डरते-डरते अप्सराके साथ निवास करने और पुनः उत्तम तपस्या करनेकी सारी बातें उन्हें बता दीं। उस श्रेष्ठ राजाको देखकर प्रसन्न हुए भगवान् ऋषि (कण्व)-ने उसके पापको समूल नष्ट करनेकी इच्छासे यह कहा— ॥ ३९—४० ॥

कण्व उवाच

गच्छ वाराणसीं दिव्यामीश्वराध्युषितां पुरीम्।  
आस्ते मोचयितुं लोकं तत्र देवो महेश्वरः ॥ ४१ ॥

स्नात्वा संतर्ष्य विधिवद् गङ्गायां देवताः पितृन्।  
दृष्ट्वा विश्वेश्वरं लिङ्गं किल्बिषान्मोक्ष्यसेऽखिलात् ॥ ४२ ॥

प्रणम्य शिरसा कण्वमनुज्ञाप्य च दुर्जयः।  
वाराणस्यां हरं दृष्ट्वा पापान्मुक्तोऽभवत् ततः ॥ ४३ ॥

जगाम स्वपुरीं शुभ्रां पालयामास मेदिनीम्।  
याजयामास तं कण्वो याचितो घृणया मुनिः ॥ ४४ ॥

तस्य पुत्रोऽथ मतिमान् सुप्रतीक इति श्रुतः।  
बभूव जातमात्रं तं राजानमुपतस्थिरे ॥ ४५ ॥

उर्वश्यां च महावीर्याः सप्त देवसुतोपमाः।  
कन्या जगृहिरे सर्वा गन्धर्वदयिता द्विजाः ॥ ४६ ॥

एष वः कथितः सम्यक् सहस्रजित उत्तमः।  
वंशः पापहरो नृणां क्रोष्टोरपि निबोधत ॥ ४७ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २२ ॥

## तेझ्सवाँ अध्याय

यदुवंश-वर्णनमें क्रोष्टुवंशी राजाओंका वृत्तान्त, राजा नवरथकी कथा, सात्त्वतवंश-वर्णनमें अक्लूरकी उत्पत्ति, राजा आनकदुन्दुभिका आख्यान, कंस एवं वसुदेव-देवकीकी उत्पत्ति, वसुदेवका वंश-वर्णन, देवकीके अन्य पुत्रोंकी उत्पत्ति, रोहिणीसे संकर्षण-बलराम तथा देवकीसे श्रीकृष्णका आविर्भाव, वासुदेव कृष्णका वंश-वर्णन

सूत उवाच

क्रोष्टोरेकोऽभवत् पुत्रो वृजिनीवानिति श्रुतिः।  
तस्य पुत्रो महान् स्वातिरुशदगुस्तत्सुतोऽभवत् ॥ १ ॥  
उशदगोरभवत् पुत्रो नामा चित्ररथो बली।  
अथ चैत्ररथिलोंके शशबिन्दुरिति स्मृतः ॥ २ ॥  
तस्य पुत्रः पृथुयशा राजाभूद् धर्मतत्परः।  
पृथुकर्मा च तत्पुत्रस्तस्मात् पृथुजयोऽभवत् ॥ ३ ॥

कण्व बोले—(राजन्! तुम) ईश्वर जहाँ विशेषरूपसे निवास करते हैं, उस दिव्य वाराणसीपुरीमें जाओ। संसारको मुक्त करनेके लिये महेश्वर देव वहाँ रहते हैं। गङ्गामें स्नानकर विधिपूर्वक देवताओं एवं पितरोंका तर्पणकर विश्वेश्वर लिङ्गका दर्शन करनेसे तुम सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाओगे ॥ ४१-४२ ॥

इसके बाद कण्वको सिरसे प्रणामकर और उनकी आज्ञा प्राप्तकर वह दुर्जय वाराणसीमें गया और भगवान् शंकरका दर्शनकर पापसे मुक्त हो गया ॥ ४३ ॥

(तदनन्तर वह) अपनी सुन्दर पुरीमें जाकर पृथ्वीका पालन करने लगा। प्रार्थना करनेपर कण्व मुनिने कृपा करके उसका यज्ञ कराया। उसका बुद्धिमान् पुत्र 'सुप्रतीक' इस नामसे विख्यात हुआ। उत्पत्र होते ही उसे (लोगोंने) राजा मान लिया। ब्राह्मणो! उर्वशीसे देवपुत्रोंके समान महान् वीर्यवान् सात पुत्र हुए। उन्होंने गन्धर्वोंकी कन्याओंको अपनी पत्नी बनाया ॥ ४४-४६ ॥

आप लोगोंसे (मैंने) यह मनुष्योंके पापको नष्ट करनेवाला सहस्रजितका उत्तम वंश भलीभाँति बतलाया। अब क्रोष्टुके वंशको भी सुनें ॥ ४७ ॥

पृथुकीर्तिरभूत् तस्मात् पृथुदानस्ततोऽभवत्।  
पृथुश्रवास्तस्य पुत्रस्तस्यासीत् पृथुसत्तमः॥ ४ ॥

उशना तस्य पुत्रोऽभूत् सितेषुस्तसुतोऽभवत्।  
तस्याभूद् रुक्मकवचः परावृत् तस्य सत्तमाः॥ ५ ॥

परावृतः सुतो जज्ञे ज्यामघो लोकविश्रुतः।  
तस्माद् विदर्भः संज्ञे विदर्भात् क्रथकैशिकौ॥ ६ ॥

रोमपादस्तृतीयस्तु बभूस्तस्यात्मजो नृपः।  
धृतिस्तस्याभवत् पुत्रः संस्तस्तस्याप्यभूत् सुतः॥ ७ ॥

संस्तस्य पुत्रो बलवान् नामा विश्वसहस्तु सः।  
तस्य पुत्रो महावीर्यः प्रजावान् कौशिकसत्तः।  
अभूत् तस्य सुतो धीमान् सुमन्तुस्तसुतोऽनलः॥ ८ ॥

कैशिकस्य सुतश्चेदिश्चैद्यास्तस्याभवन् सुताः।  
तेषां प्रधानो ज्योतिष्मान् वपुष्मांस्तसुतोऽभवत्॥ ९ ॥

वपुष्मतो बृहन्मेधा श्रीदेवस्तसुतोऽभवत्।  
तस्य वीतरथो विप्रा रुद्रभक्तो महाबलः॥ १० ॥

क्रथस्याप्यभवत् कुन्तिवृष्णिस्तस्याभवत् सुतः।  
वृष्णोर्निवृत्तिरुत्पन्नो दशार्हस्तस्य तु द्विजाः॥ ११ ॥

दशार्हपुत्रोऽप्यारोहो जीमूतस्तसुतोऽभवत्।  
जैमूतिरभवद् वीरो विकृतिः परवीरहा॥ १२ ॥

तस्य भीमरथः पुत्रः तस्मान्नवरथोऽभवत्।  
दानधर्मरतो नित्यं सम्यक्शीलपरायणः॥ १३ ॥

कदाचिन्मृगयां यातो दृष्ट्वा राक्षसमूर्जितम्।  
दुद्राव महताविष्टो भयेन मुनिपुंगवाः॥ १४ ॥

अन्वधावत् संकुद्धो राक्षसस्तं महाबलः।  
दुर्योधनोऽग्निसंकाशः शूलासत्तमहाकरः॥ १५ ॥

राजा नवरथो भीत्या नातिदूरादनुत्तमम्।  
अपश्यत् परमं स्थानं सरस्वत्या सुगोपितम्॥ १६ ॥

स तद्वेगेन महता सम्प्राप्य मतिमान् नृपः।  
ववन्दे शिरसा दृष्ट्वा साक्षाद् देवीं सरस्वतीम्॥ १७ ॥

उससे पृथुकीर्ति और उससे पृथुदान हुआ। उसका पुत्र पृथुश्रवा और उसका पुत्र था—पृथुसत्तम॥ ४ ॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उस (पृथुसत्तम)-का पुत्र उशना हुआ और उसका सितेषु पुत्र हुआ। फिर उसका रुक्मकवच और उस (रुक्मकवच)-का परावृत् हुआ॥ ५ ॥

परावृत् ने संसारमें विख्यात ज्यामघ नामक पुत्र उत्पन्न किया। उससे विदर्भ उत्पन्न हुआ और विदर्भसे क्रथ, कैशिक और तीसरा रोमपाद नामक पुत्र हुआ। उस (रोमपाद)-का पुत्र बभू राजा था। धृति उसका पुत्र हुआ और उसका भी संस्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। संस्तका विश्वसह नामवाला बलवान् पुत्र था। उसका पुत्र महान् पराक्रमी प्रजावान् और उसका पुत्र कौशिक हुआ। उस (कौशिक)-का बुद्धिमान् सुमन्तु नामक पुत्र था और उसका पुत्र अनल था। कैशिकका पुत्र चेदि था और उस चेदिके पुत्र चैद्य हुए। उन चैद्योंमें ज्योतिष्मान् प्रधान था और वपुष्मान् उसका पुत्र हुआ। वपुष्मान्-से बृहन्मेधा और श्रीदेव उसका पुत्र हुआ। ब्राह्मणो! उसका वीतरथ नामक पुत्र महान् बलशाली और रुद्रका भक्त था॥ ६—१० ॥

ब्राह्मणो! क्रथका पुत्र कुन्ति और उसका पुत्र वृष्णि हुआ। वृष्णिसे निवृत्ति उत्पन्न हुआ और दशार्ह उसका पुत्र हुआ। दशार्हका पुत्र आरोह था और उसका जीमूत पुत्र हुआ। जीमूतका विकृति नामक बलवान् पुत्र शत्रु-वीरोंका नाशक था। उसका भीमरथ नामक पुत्र हुआ, उससे नवरथ हुआ, जो नित्य दानधर्ममें परायण तथा पूर्णरूपसे शील-सम्पन्न था॥ ११—१३ ॥

श्रेष्ठ मुनियो! किसी समय आखेटके लिये जाते हुए वह (नवरथ) एक बलवान् राक्षसको देखकर अत्यन्त भयभीत होकर भागने लगा। अग्निके समान प्रज्वलित वह महाबलवान् दुर्योधन नामक राक्षस कुद्ध होकर अपने विशाल हाथमें शूल लेकर उसके पीछे दौड़ा॥ १४—१५ ॥

भयभीत राजा नवरथने समीपमें ही (देवी) सरस्वतीसे रक्षित एक परम श्रेष्ठ स्थान देखा। वह बुद्धिमान् राजा अति शीघ्र ही वहाँ पहुँचा और साक्षात् देवी सरस्वतीका दर्शन करके उसने सिर झुकाकर प्रणाम किया॥ १६—१७ ॥

तुष्टाव वाग्भिरष्टभिर्बद्धाव्यजलिरमित्रजित्।  
पपात दण्डवद् भूमौ त्वामहं शरणं गतः ॥ १८ ॥

नमस्यामि महादेवीं साक्षाद् देवीं सरस्वतीम्।  
वाग्देवतामनाद्यनामीश्वरीं ब्रह्मचारिणीम् ॥ १९ ॥

नमस्ते जगतां योनिं योगिनीं परमां कलाम्।  
हिरण्यगर्भमहिषीं त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् ॥ २० ॥

नमस्ये परमानन्दां चित्कलां ब्रह्मरूपिणीम्।  
पाहि मां परमेशानि भीतं शरणमागतम् ॥ २१ ॥

एतस्मिन्नतरे कुब्जो राजानं राक्षसेश्वरः ।  
हन्तुं समागतः स्थानं यत्र देवी सरस्वती ॥ २२ ॥

समुद्यम्य तदा शूलं प्रवेष्टुं बलदर्पितः ।  
त्रिलोकमातुस्तत्स्थानं शशाङ्कादित्यसंनिभम् ॥ २३ ॥

तदन्तरे महद् भूतं युगान्तादित्यसंनिभम्।  
शूलेनोरसि निर्भिद्य पातयामास तं भुवि ॥ २४ ॥

गच्छेत्याह महाराज न स्थातव्यं त्वया पुनः ।  
इदानीं निर्भयस्तूर्णं स्थानेऽस्मिन् राक्षसो हतः ॥ २५ ॥

ततः प्रणम्य हृष्टात्मा राजा नवरथः पराम्।  
पुरीं जगाम विप्रेन्द्राः पुरंदरपुरोपमाम् ॥ २६ ॥

स्थापयामास देवेशीं तत्र भक्तिसमन्वितः ।  
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्मैदेवीं सरस्वतीम् ॥ २७ ॥

तस्य चासीद् दशरथः पुत्रः परमधार्मिकः ।  
देव्या भक्तो महातेजाः शकुनिस्तस्य चात्मजः ॥ २८ ॥

तस्मात् करस्थः सम्पूर्तो देवरातोऽभवत् ततः ।  
ईजे स चाश्वमेधेन देवक्षत्रश्च तत्सुतः ॥ २९ ॥

मधुस्तस्य तु दायादस्तस्मात् कुरुवशोऽभवत्।  
पुत्रद्वयमभूत् तस्य सुत्रामा चानुरेव च ॥ ३० ॥

अनोस्तु पुरुकुत्सोऽभूदंशुस्तस्य च रिकथभाक्।  
अथांशोः सत्त्वतो नाम विष्णुभक्तः प्रतापवान् ॥

महात्मा दाननिरतो धनुर्वेदविदां वरः ॥ ३१ ॥

स नारदस्य वचनाद् वासुदेवार्चनान्वितम्।  
शास्त्रं प्रवर्तयामास कुण्डगोलादिभिः श्रुतम् ॥ ३२ ॥

उस शत्रुजयीने हाथ जोड़ते हुए अभीष्ट स्तुतियोंद्वारा स्तुति की, वह भूमिपर दण्डवत् गिर पड़ा और कहा—‘मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप अनादि, अनन्त, ब्रह्मचारिणी, ईश्वरी, महादेवी, वाग्देवता साक्षात् देवी सरस्वतीको नमस्कार करता हूँ। जगत्की मूल कारणरूपा, परम कलास्वरूपा, तीन नेत्रवाली, मस्तकपर चन्द्रमाको धारण करनेवाली एवं हिरण्यगर्भकी महिषी योगिनीको नमस्कार है ॥ १८—२० ॥

चित्कलारूप, परमानन्दस्वरूपा ब्रह्मरूपिणीको नमस्कार है। परमेशानि! भयभीत होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा करो ॥ २१ ॥

इसी बीच कुब्ज वह राक्षसराज राजाको मारनेके लिये उसी स्थानपर आ पहुँचा, जहाँ देवी सरस्वती थीं। बलसे दर्पित वह राक्षस शूल उठाकर तीनों लोकोंकी जननीके उस सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशित स्थानमें प्रवेश करनेकी चेष्टा करने लगा। इसी बीच किसी प्रलयकालीन सूर्यके समान महान् बलशालीने शूलसे उसके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर पृथ्वीपर गिरा दिया और कहा—महाराज! आप अब निर्भय होकर शीघ्र ही इस स्थानसे चले जायें, यहाँ अब फिर रुकेनहीं, राक्षस मारा जा चुका है ॥ २२—२५ ॥

ब्राह्मणो! तब प्रसन्न मनवाला वह नवरथ उन परादेवीको प्रणामकर इन्द्रकी नगरीके समान अपनी नगरीको चला गया। वहाँ उसने भक्तियुक्त होकर देवेश्वरी सरस्वतीकी स्थापना की और विविध यज्ञों तथा होमोंके द्वारा उन देवीका यजन किया। उसका दशरथ नामक परम धार्मिक पुत्र था। वह महातेजस्वी देवीका भक्त था। उसका पुत्र शकुनि था। उससे करम्भ हुआ, उसका देवरात हुआ, उसने अश्वमेध यज्ञ किया (जिसके फलस्वरूप) उसको देवक्षत्र नामक पुत्र हुआ। उस (देवक्षत्र)-का पुत्र मधु हुआ, उससे कुरुवश हुआ। उसके सुत्रामा तथा अनु नामक दो पुत्र हुए ॥ २६—३० ॥

अनुका पुरुकुत्स हुआ तथा उसका पुत्र अंशु था। अंशुका पुत्र सत्त्वत था, जो विष्णुभक्त, प्रतापी, महात्मा, दानशील और धनुर्वेद जानेवालोंमें श्रेष्ठ था। उसने नारदजीके कहनेपर वासुदेवकी पूजासे युक्त शास्त्रका प्रवर्तन किया, जिसे कुण्डगोलकोंने\* सुना ॥ ३१—३२ ॥

\* कुण्डगोलक—कुण्ड—पतिके जीवित रहते हुए परपुरुषसे उत्पन्न पुत्र। गोलक—पतिके मर जानेपर परपुरुषसे उत्पन्न पुत्र।

तस्य नाम्ना तु विख्यातं सात्त्वतं नाम शोभनम्।  
प्रवर्तते महाशास्त्रं कुण्डादीनां हितावहम्॥ ३३ ॥

सात्त्वतस्तस्य पुत्रोऽभूत् सर्वशास्त्रविशारदः।  
पुण्यश्लोको महाराजस्तेन वै तत्प्रवर्तितम्॥ ३४ ॥

सात्त्वतः सत्त्वसम्पन्नः कौशल्यां सुषुवे सुतान्।  
अन्धकं वै महाभोजं वृष्णिं देवावृथं नृपम्।  
ज्येष्ठं च भजमानाख्यं धनुर्वेदविदां वरम्॥ ३५ ॥

तेषां देवावृथो राजा चचार परमं तपः।  
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति प्रभुः॥ ३६ ॥

तस्य बभूरिति ख्यातः पुण्यश्लोकोऽभवनृपः।  
धार्मिको रूपसम्पन्नस्तत्त्वज्ञानरतः सदा॥ ३७ ॥

भजमानस्य सृज्जय्यां भजमाना विजिन्ने।  
तेषां प्रथानौ विख्यातौ निमिः कृकण एव च॥ ३८ ॥

महाभोजकुले जाता भोजा वैमार्तिकास्तथा।  
वृष्णोः सुमित्रो बलवाननमित्रः शिनिस्तथा॥ ३९ ॥

अनमित्रादभूत्रिष्ठो निघस्य द्वौ बभूवतुः।  
प्रसेनस्तु महाभागः सत्राजिन्नाम चोत्तमः॥ ४० ॥

अनमित्राच्छिन्निर्जन्मे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात्।  
सत्यवान् सत्यसम्पन्नः सत्यकस्तत्सुतोऽभवत्॥ ४१ ॥

सात्यकिर्युयुधानस्तु तस्यासङ्गोऽभवत् सुतः।  
कुणिस्तस्य सुतो धीमांस्तस्य पुत्रो युगंधरः॥ ४२ ॥

माक्रया वृष्णोः सुतो जज्ञे पृश्निर्वै यदुनन्दनः।  
जज्ञाते तनयौ पृश्नेः श्वफल्कश्चित्रकश्च ह॥ ४३ ॥

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामिविन्दत।  
तस्यामजनयत् पुत्रमक्षुरं नाम धार्मिकम्।  
उपमङ्गुस्तथा मङ्गुरन्ये च बहवः सुताः॥ ४४ ॥

अक्षुरस्य स्मृतः पुत्रो देववानिति विश्रुतः।  
उपदेवश्च पुण्यात्मा तयोर्विश्वप्रमाथिनौ॥ ४५ ॥

चित्रकस्याभवत् पुत्रः पृथुर्विपृथुरेव च।  
अश्वग्रीवः सुबाहुश्च सुपाश्वकगवेषणौ॥ ४६ ॥

अन्धकात् काश्यदुहिता लेभे च चतुरः सुतान्।  
कुकुरं भजमानं च शुचिं कम्बलबर्हिषम्॥ ४७ ॥

कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णोस्तु तनयोऽभवत्।  
कपोतरोमा विपुलस्तस्य पुत्रो विलोमकः॥ ४८ ॥

उसके नामसे सात्त्वत ऐसा विख्यात कुण्डादिकोंके लिये कल्याणकारी सुन्दर शास्त्र प्रवर्तित हुआ। उस (सत्त्वत)-का सभी शास्त्रोंमें पारंगत सात्त्वत नामक पुत्र हुआ, वह महाराज पुण्यश्लोक था। उसने उस सात्त्वत शास्त्रका प्रवर्तन किया। सत्त्वसम्पन्न सात्त्वतकी पत्नी कौशल्याने अन्धक, महाभोज, वृष्णि, राजा देवावृथ तथा धनुर्वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ भजमान नामक ज्येष्ठ पुत्रको जन्म दिया॥ ३३—३५ ॥

उनमेंसे राजा देवावृथने 'मुझे सभी गुणोंसे सम्पन्न शक्तिशाली पुत्र हो' इस आशयसे परम तप किया। उसका पुत्र बधु नामसे विख्यात पुण्यश्लोक राजा हुआ। वह धर्मात्मा, रूप-सम्पन्न तथा सदा तत्त्वज्ञान-परायण रहता था। भजमानके सृज्जयी (पत्नी)-से भजमान ही नामवाले (अनेक) पुत्र हुए। उनमेंसे निमि तथा कृकण—ये दो प्रधान तथा विख्यात थे। महाभोजके वंशमें भोज तथा वैमार्तिक उत्पन्न हुए। वृष्णिके बलवान् सुमित्र, अनमित्र तथा शिनि हुए। अनमित्रसे निघ्र हुआ और निघ्रके महाभाग्यवान् प्रसेन तथा श्रेष्ठ सत्राजित् नामवाले दो पुत्र हुए॥ ३६—४० ॥

कनिष्ठ वृष्णिनन्दन अनमित्रसे शिनि उत्पन्न हुआ। उसका सत्यक नामक पुत्र हुआ जो सत्य बोलनेवाला तथा सत्यसम्पन्न था। सत्यकका पुत्र युयुधान और उसका पुत्र असङ्ग हुआ। उसका पुत्र बुद्धिमान् कुणि था और युगंधर उसका पुत्र हुआ। वृष्णिको माद्रीसे यदुनन्दन पृश्नि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पृश्निको श्वफल्क तथा चित्रक नामवाले दो पुत्र हुए। श्वफल्कने काशिराजकी पुत्रीको अपनी भार्या बनाया और उससे अक्षुर नामक धार्मिक पुत्र उत्पन्न किया। उपमङ्गु तथा मङ्गु नामवाले उनके बहुतसे पुत्र थे। अक्षुरका देववान् इस नामसे प्रसिद्ध पुत्र कहा गया है। पुण्यात्मा उपदेव भी उसका पुत्र हुआ। उन दोनोंको विश्व तथा प्रमाथी नामक दो पुत्र हुए॥ ४१—४५ ॥

चित्रकके पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, सुबाहु, सुपार्थक तथा गवेषण नामक पुत्र हुए। काशयकी पुत्रीने अन्धकसे कुकुर, भजमान, शुचि तथा कम्बलबर्हिष नामक चार पुत्रोंको प्राप्त किया। कुकुरका पुत्र वृष्णि हुआ और वृष्णिका पुत्र कपोतरोमा विपुल हुआ। उसका पुत्र विलोमक हुआ॥ ४६—४८ ॥

तस्यासीत् तुम्बुरुसखा विद्वान् पुत्रो नलः किल ।  
ख्यायते तस्य नामानुरनोरानकदुन्दुभिः ॥ ४९ ॥

स गोवर्धनमासाद्य तताप विपुलं तपः ।  
वरं तस्मै ददौ देवो ब्रह्मा लोकमहेश्वरः ॥ ५० ॥

वंशस्य चाक्षयां कीर्ति गानयोगमनुत्तमम् ।  
गुरोरभ्यधिकं विप्राः कामरूपित्वमेव च ॥ ५१ ॥  
स लब्ध्वा वरमव्यग्रो वरेण्यं वृषवाहनम् ।  
पूजयामास गानेन स्थाणुं त्रिदशपूजितम् ॥ ५२ ॥

तस्य गानरतस्याथ भगवानम्बिकापतिः ।  
कन्यारलं ददौ देवो दुर्लभं त्रिदशैरपि ॥ ५३ ॥

तथा स सङ्गते राजा गानयोगमनुत्तमम् ।  
अशिक्षयदमित्रघ्नः प्रियां तां भ्रान्तलोचनाम् ॥ ५४ ॥

तस्यामुत्पादयामास सुभुजं नाम शोभनम् ।  
रूपलावण्यसम्पन्नं हीमतीमपि कन्यकाम् ॥ ५५ ॥  
ततस्तं जननी पुत्रं बाल्ये वयसि शोभनम् ।  
शिक्षयामास विधिवद् गानविद्यां च कन्यकाम् ॥ ५६ ॥

कृतोपनयनो वेदानधीत्य विधिवद् गुरोः ।  
उद्धवाहात्मजां कन्यां गन्धर्वाणां तु मानसीम् ॥ ५७ ॥

तस्यामुत्पादयामास पञ्च पुत्राननुत्तमान् ।  
वीणावादनतत्त्वज्ञान् गानशास्त्रविशारदान् ॥ ५८ ॥  
पुत्रैः पौत्रैः सप्त्नीको राजा गानविशारदः ।  
पूजयामास गानेन देवं त्रिपुरनाशनम् ॥ ५९ ॥

हीमती चापि या कन्या श्रीरिवायतलोचना ।  
सुबाहुर्नाम गन्धर्वस्तामादाय ययौ पुरीम् ॥ ६० ॥

तस्यामव्यभवन् पुत्रा गन्धर्वस्य सुतेजसः ।  
सुषेणवीरसुग्रीवसुभोजनरवाहनाः ॥ ६१ ॥

अथासीदभिजित् पुत्रो वीरस्त्वानकदुन्दुभेः ।  
पुनर्वसुशाभिजितः सम्बभूवाहुकः सुतः ॥ ६२ ॥

उस (विलोमक)-का विद्वान् नल नामक पुत्र हुआ जो तुम्बुरुका मित्र था, अनु भी उसका नाम हुआ। अनुका पुत्र आनकदुन्दुभि हुआ ॥ ४९ ॥

ब्राह्मणो ! उसने गोवर्धन पर्वतपर जाकर महान् तप किया। तब लोकमहेश्वर देव ब्रह्माने उसे वर प्रदान किया और कहा—तुम्हरे वंशकी अक्षय कीर्ति होगी तथा तुम्हें गुरुसे भी अधिक श्रेष्ठ गानयोग (संगीत-कलाकी स्वाभाविक प्रतिभा) और इच्छानुसार रूप धारण करनेकी योग्यता प्राप्त होगी ॥ ५०-५१ ॥

वर प्राप्तकर प्रशान्त (मनवाले) उसने देवताओंद्वारा पूजित, वरणीय और वृषवाहन स्थाणु (शंकर)-की गान (संगीत)-द्वारा पूजा की। गानमें रत उस (आनकदुन्दुभि)-को भगवान् देव अम्बिकापति (शंकर)-ने देवताओंके लिये भी दुर्लभ विवाह करने योग्य कन्यारूपी रत प्रदान किया। भार्या-रूपमें उसका साथ प्राप्तकर शत्रुनाशक राजाने उस चञ्चल आँखोंवाली अपनी प्रिया भ्रान्तलोचनाको श्रेष्ठ गानयोग सिखलाया। (राजाने) उससे सुन्दर भुजावाले शोभन नामक पुत्र तथा रूप और लावण्यसे सम्पन्न हीमती नामकी कन्याको उत्पन्न किया ॥ ५२-५५ ॥

तब माता (भ्रान्तलोचना)-ने बाल्यावस्थामें ही उस शोभन नामक पुत्रको तथा कन्या (हीमती)-को भी विधिवत् गानविद्याकी शिक्षा प्रदान की। उपनयन होनेके अनन्तर विधिपूर्वक गुरुसे वेदोंका अध्ययनकर (शोभनने) गन्धर्वोंकी मानसी नामक कन्यासे विवाह किया और उससे वीणा बजानेका तत्त्व जाननेवाले तथा संगीतशास्त्रमें पारंगत पाँच श्रेष्ठ पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ५६-५८ ॥

पुत्र-पौत्र तथा पतीसहित गानविद्यामें पारंगत उस राजाने गायनद्वारा त्रिपुरका नाश करनेवाले देव (शंकर)-की पूजा की। लक्ष्मीके सदृश विशाल नेत्रोंवाली जो हीमती नामकी कन्या थी, सुबाहु नामक गन्धर्व उसे लेकर अपनी पुरीमें चला गया। अत्यन्त तेजस्वी गन्धर्वको भी उस (हीमती)-से सुषेण, वीर, सुग्रीव, सुभोज तथा नरवाहन नामके पुत्र हुए ॥ ५९-६१ ॥

आनकदुन्दुभिका अभिजित् नामक एक वीर पुत्र था। अभिजित्का पुनर्वसु और उससे आहुकका जन्म हुआ ॥ ६२ ॥

आहुकस्योग्रसेनश्च देवकश्च द्विजोन्तमा: ।  
 देवकस्य सुता वीरा जज्ञेरे त्रिदशोपमा: ॥ ६३ ॥  
 देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः ।  
 तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ ॥ ६४ ॥  
 वृकदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता ।  
 श्रीदेवा शान्तिदेवा च सहदेवा च सुव्रता ।  
 देवकी चापि तासां तु वरिष्ठाभूत् सुमध्यमा ॥ ६५ ॥  
 उग्रसेनस्य पुत्रोऽभून्यग्रोधः कंस एव च ।  
 सुभूमी राष्ट्रपालश्च तुष्टिमाञ्छङ्कुरेव च ॥ ६६ ॥  
 भजमानादभूत् पुत्रः प्रख्यातोऽसौ विदूरथः ।  
 तस्य शूरः शमिस्तस्मात् प्रतिक्षत्रस्ततोऽभवत् ॥ ६७ ॥  
 स्वयम्भोजस्ततस्तस्माद् हृदिकः शत्रुतापनः ।  
 कृतवर्माथ तत्पुत्रो देवरस्तसुतः स्मृतः ।  
 स शूरस्तसुतो धीमान् वसुदेवोऽथ तत्सुतः ॥ ६८ ॥  
 वसुदेवान्महाबाहुर्वासुदेवो जगदगुरुः ।  
 बभूव देवकीपुत्रो देवैरभ्यर्थितो हरिः ॥ ६९ ॥  
 रोहिणी च महाभागा वसुदेवस्य शोभना ।  
 असूत पली संकर्षं रामं ज्येष्ठं हलायुधम् ॥ ७० ॥  
 स एव परमात्मासौ वासुदेवो जगन्मयः ।  
 हलायुधः स्वयं साक्षात्त्वेषः संकर्षणः प्रभुः ॥ ७१ ॥  
 भृगुशापच्छलेनैव मानयन् मानुषीं तनुम् ।  
 बभूव तस्यां देवक्यां रोहिण्यामपि माधवः ॥ ७२ ॥  
 उमादेहसमुद्भूता योगनिद्रा च कौशिकी ।  
 नियोगाद् वासुदेवस्य यशोदातनया ह्यभूत् ॥ ७३ ॥  
 ये चान्ये वसुदेवस्य वासुदेवाग्रजाः सुताः ।  
 प्रागेव कंसस्तान् सर्वान् जघान मुनिपुंगवाः ॥ ७४ ॥  
 सुषेणश्च तथोदायी भद्रसेनो महाबलः ।  
 ऋजुदासो भद्रदासः कीर्तिमानपि पूर्वजः ॥ ७५ ॥  
 हतेष्वेतेषु सर्वेषु रोहिणी वसुदेवतः ।  
 असूत रामं लोकेशं बलभद्रं हलायुधम् ॥ ७६ ॥  
 जातेऽथ रामे देवानामादिमात्मानमच्युतम् ।  
 असूत देवकी कृष्णं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥ ७७ ॥  
  
 रेवती नाम रामस्य भार्यासीत् सुगुणान्विता ।  
 तस्यामुत्पादयामास पुत्रौ द्वौ निशठोल्मुकौ ॥ ७८ ॥

द्विजोन्तमो ! आहुकके दो पुत्र हुए—उग्रसेन और देवक । देवकके देवताओंके समान देववान्, उपदेव, सुदेव तथा देवरक्षित नामवाले चार वीर पुत्र हुए । इनकी सात बहनें थीं—वृकदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा, सुव्रता तथा देवकी । इनमें सुन्दर मध्यभागवाली देवकी सबसे बड़ी थी । ये सभी वसुदेवको दी गयीं ॥ ६३—६५ ॥

उग्रसेनके न्यग्रोध, कंस, सुभूमि, राष्ट्रपाल, तुष्टिमान् तथा शङ्ख नामवाले पुत्र थे । भजमानका प्रख्यात विदूरथ नामवाला पुत्र हुआ । उसका पुत्र शूर, उससे शमि और शमिका प्रतिक्षत्र नामक पुत्र हुआ । उस (प्रतिक्षत्र)-से स्वयम्भोज और उससे शत्रुओंको ताप पहुँचानेवाला पुत्र हृदिक हुआ । उसका पुत्र कृतवर्मा और उसका पुत्र देवर कहलाया । उस शूरसे धीमान् हुआ और उसका पुत्र वसुदेव था ॥ ६६—६८ ॥

देवताओंके प्रार्थना करनेपर महाबाहु जगदगुरु वासुदेव विष्णु वसुदेवसे देवकी-पुत्रके रूपमें प्रकट हुए । वसुदेवकी महाभाग्यशालिनी सुन्दर रोहिणी नामक पत्नीने हलको आयुधके रूपमें धारण करनेवाले ज्येष्ठ पुत्र संकर्षण राम (बलराम)-को जन्म दिया । वह परमात्मा (विष्णु) ही ये जगन्मय (वसुदेवपुत्र) वासुदेव हैं । हलायुध (बलराम) संकर्षण स्वयं साक्षात् प्रभु शेष हैं ॥ ६९—७१ ॥

भृगुके शापके कारण वे माधव विष्णु भी मनुष्य-शरीर स्वीकार कर उन देवकी तथा रोहिणीसे उत्पन्न हुए । उमाकी देहसे उत्पन्न योगनिद्रारूप कौशिकीदेवी वासुदेवकी आज्ञासे यशोदाकी पुत्री हुई ॥ ७२-७३ ॥

मुनिश्रेष्ठो ! वसुदेवके अन्य जो वासुदेव नामवाले ज्येष्ठ पुत्र थे उन सबको कंसने पहले ही मार डाला । सुषेण, उदायी, भद्रसेन, महाबल, ऋजुदास, भद्रदास और पूर्वमें उत्पन्न कीर्तिमान्—इन सभी (वासुदेवके बड़े भाइयों)-के मारे जानेपर रोहिणीने वसुदेवसे संसारके स्वामी हलायुध बलभद्र राम (बलराम)-को जन्म दिया ॥ ७४—७६ ॥

राम (बलराम)-के उत्पन्न होनेके पश्चात् देवकीने देवताओंके आदि कारण, आत्मरूप, श्रीवत्स-चिह्नसे सुशोभित वक्षःस्थलवाले अच्युत कृष्णको जन्म दिया ॥ ७७ ॥

बलरामकी सुन्दर गुणोंसे युक्त रेवती नामकी भार्या थीं । उन्होंने उनसे निशठ तथा उल्मुक नामक दो पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ७८ ॥

षोडशस्त्रीसहस्राणि कृष्णास्याक्लिष्टकर्मणः ।  
 बभूवरात्मजास्तासु शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७९ ॥  
 चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेषो यशोधरः ।  
 चारुश्रवाश्चारुयशा: प्रद्युम्नः शंख एव च ॥ ८० ॥  
 रुक्मिण्यां वासुदेवस्य महाबलपराक्रमाः ।  
 विशिष्टाः सर्वपुत्राणां सम्बभूवुरिमे सुताः ॥ ८१ ॥  
 तान् दृष्ट्वा तनयान् वीरान् रौक्मिणेयाज्जनार्दनम् ।  
 जाम्बवत्यब्रवीत् कृष्णं भार्या तस्य शुचिस्मिता ॥ ८२ ॥  
 मम त्वं पुण्डरीकाक्ष विशिष्टं गुणवत्तमम् ।  
 सुरेशसदृशं पुत्रं देहि दानवसूदन ॥ ८३ ॥  
 जाम्बवत्या वचः श्रुत्वा जगन्नाथः स्वयं हरिः ।  
 समारेभे तपः कर्तुं तपोनिधिरिदमः ॥ ८४ ॥  
 तच्छृणुध्वं मुनिश्रेष्ठो यथासौ देवकीसुतः ।  
 दृष्ट्वा लेखे सुतं रुद्रं तप्त्वा तीव्रं महत् तपः ॥ ८५ ॥

(वसुदेव-देवकीसे उत्पन्न साक्षात् विष्णु) अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्णकी सोलह हजार पत्रियाँ थीं और उनसे सैकड़ों हजारों पुत्र हुए। वासुदेव श्रीकृष्णकी पत्नी रुक्मिणीसे चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेष, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयशा, प्रद्युम्न तथा शङ्ख नामवाले महान् बलशाली और पराक्रम-सम्पन्न पुत्र हुए। ये पुत्र सभी पुत्रोंमें विशिष्ट हुए ॥ ७९—८१ ॥

रुक्मिणीसे उत्पन्न इन वीर पुत्रोंको देखकर पवित्र मुसकानवाली पत्नी जाम्बवतीने अपने पति जनार्दन श्रीकृष्णसे कहा—पुण्डरीकाक्ष! दानवसूदन! आप मुझे इन्द्रके समान विशिष्ट गुणवानोंमें श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करें। जाम्बवतीका कथन सुनकर शत्रुओंका दमन करनेवाले तपोनिधि जगन्नाथ स्वयं हरिने तप करना प्रारम्भ किया ॥ ८२—८४ ॥

मुनिश्रेष्ठो! उन देवकीपुत्र (श्रीकृष्ण)-ने जिस प्रकार अत्यन्त तीव्र महान् तपके द्वारा रुद्रका दर्शनकर पुत्र प्राप्त किया, उस (वृत्तान्त)-को आपलोग सुनें ॥ ८५ ॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्राणं संहितायां पूर्वविभागे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें तैर्सवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

## चौबीसवाँ अध्याय

पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्या करने-हेतु भगवान् श्रीकृष्णका महामुनि उपमन्युके आश्रममें जाना,  
 महामुनि उपमन्युद्वारा उन्हें पाशुपत-योग प्रदान करना, तपस्यामें निरत कृष्णको  
 शिव-पार्वतीका दर्शन और श्रीकृष्णद्वारा उनकी स्तुति करना, शिवद्वारा  
 पुत्रप्राप्तिका वर देना तथा माता पार्वतीद्वारा अनेक वर देना  
 और शिवके साथ श्रीकृष्णका कैलास-गमन

सूत उवाच

अथ देवो हृषीकेशो भगवान् पुरुषोत्तमः ।  
 तताप घोरं पुत्रार्थं निदानं तपसस्तपः ॥ १ ॥  
 स्वेच्छाप्यवतीर्णोऽसौ कृतकृत्योऽपि विश्वधृक् ।  
 चचार स्वात्मनो मूलं बोधयन् भावमैश्वरम् ॥ २ ॥  
 जगाम योगिभिर्जुष्टं नानापक्षिसमाकुलम् ।  
 आश्रमं तूपमन्योर्वै मुनीन्द्रस्य महात्मनः ॥ ३ ॥  
 पतत्विराजमारुढः सुपर्णमतितेजसम् ।  
 शङ्खचक्रगदापाणिः श्रीवत्सकृतलक्षणः ॥ ४ ॥

सूतजी बोले—हृषीकेश भगवान् पुरुषोत्तम देवने पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्याके निदान\*-रूपमें (सर्वोत्कृष्ट) घोर तपस्या की। अपनी इच्छासे ही अवतीर्ण कृतकृत्य, विश्वको धारण करनेवाले ये श्रीकृष्ण (अपने) स्वरूपके मूल ईश्वर-भावका परिज्ञान करानेके लिये (उत्तम तपः—स्थलके अन्वेषणके बहाने पक्षिराज गरुड़पर आरूढ़ होकर) विचरण करने लगे। हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा लिये तथा श्रीवत्सके चिह्नसे चिह्नित (श्रीकृष्ण) योगियोंद्वारा सेवित, अनेक प्रकारके पक्षिसमूहोंसे व्याप्त मुनीन्द्र महात्मा उपमन्युके आश्रममें पहुँचे ॥ १—४ ॥

\* जो तपस्या उत्कृष्ट तपस्याके लिये दृष्टान्त होती है, तपस्याकी सत्यताका निकाय (कसौटी) होती है, उसे तपस्याका निदान कहते हैं।

नानाद्रुमलताकीर्ण नानापुष्पोपशोभितम्।  
ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं वेदघोषनिनादितम्॥ ५ ॥

सिंहक्षर्षाभाकीर्ण शार्दूलगजसंयुतम्।  
विमलस्वादुपानीयैः सरोभिसुपशोभितम्॥ ६ ॥

आरामैर्विविधैर्जुष्टं देवतायतनैः शुभैः।  
ऋषिकैर्ऋषिपुत्रैश्च महामुनिगणैस्तथा॥ ७ ॥

वेदाध्ययनसम्पन्नैः सेवितं चाग्निहोत्रिभिः।  
योगिभिर्धर्याननिरतैर्नासाग्रगतलोचनैः॥ ८ ॥

उपेतं सर्वतः पुण्यं ज्ञानिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।  
नदीभिरभितो जुष्टं जापकैर्ब्रह्मवादिभिः॥ ९ ॥

सेवितं तापसैः पुण्यैरीशाराधनतत्परैः।  
प्रशान्तैः सत्यसंकल्पैर्निःशोकैर्निरुपद्रवैः॥ १० ॥

भस्मावदातसर्वाङ्गैः रुद्रजाप्यपरायणौ।  
मुण्डतेर्जटिलैः शुद्धैस्तथान्यैश्च शिखाजटैः।

सेवितं तापसैर्नित्यं ज्ञानिभिर्ब्रह्मचारिभिः॥ ११ ॥

तत्राश्रमवरे रथ्ये सिद्धाश्रमविभूषिते।  
गङ्गा भगवती नित्यं वहत्येवाघनाशिनी॥ १२ ॥

स तानन्विष्य विश्वात्मा तापसान् वीतकल्पषान्।  
प्रणामेनाथ वचसा पूजयामास माधवः॥ १३ ॥

तं ते दृष्ट्वा जगद्योनि शङ्खचक्रगदाधरम्।  
प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनां परमं गुरुम्॥ १४ ॥

स्तुवन्ति वैदिकैर्मन्त्रैः कृत्वा हृदि सनातनम्।  
प्रोचुरन्योन्यमव्यक्तमादिदेवं महामुनिम्॥ १५ ॥

अयं स भगवानेकः साक्षात्त्रायणः परः।  
आगच्छत्यधुना देवः पुराणपुरुषः स्वयम्॥ १६ ॥

अयमेवाव्ययः स्वष्टा संहर्ता चैव रक्षकः।  
अमूर्तो मूर्तिमान् भूत्वा मुनीन् द्रष्टुमिहागतः॥ १७ ॥

एष धाता विधाता च समागच्छति सर्वगः।  
अनादिरक्षयोऽनन्तो महाभूतो महेश्वरः॥ १८ ॥

श्रुत्वा श्रुत्वा हरिस्तेषां वचांसि वचनातिगः।  
यद्यौ स तूर्णं गोविन्दः स्थानं तस्य महात्मनः॥ १९ ॥

वह आश्रम विविध प्रकारके वृक्ष और लताओंसे व्यास, अनेक प्रकारके पुष्टोंसे सुशोभित, ऋषियोंके आश्रमोंसे युक्त तथा वेदमन्त्रोंकी ध्वनियोंसे निनादित था। सिंह, भालू, शरभ, व्याघ्र और हाथियोंसे व्यास था; स्वच्छ, स्वादयुक्त, पीने योग्य जलवाले सरोवरोंसे सुशोभित था; विविध प्रकारके उद्यानों तथा शुभ देवमन्दिरोंसे सम्पन्न था। ऋषियों, ऋषिपुत्रों, महामुनिगणों, वेदाध्ययनसम्पन्न तथा अग्निहोत्र करनेवालोंसे सेवित था। नासिकाके अग्रभागमें जिनकी दृष्टि लगी हुई है, ऐसे ध्यानपरायण योगियोंसे युक्त, सभी प्रकारसे पवित्र, तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंसे सेवित और चारों ओर नदियोंसे धिरा था। वह आश्रम ब्रह्मवादी जापकों, शंकरकी आराधनामें निरत पवित्र तपस्वियोंसे सेवित, सत्यसंकल्पवाले, परम शान्त, शोक तथा उपद्रवरहित, यथाविधि सभी अङ्गोंमें भस्म लगाये हुए रुद्रके जपमें परायण, मुण्डित या मात्र जटा रखे हुए तथा जटाके समान शिखावाले अन्य तपस्वियों, ज्ञानियों और ब्रह्मचारियोंसे नित्य सेवित था॥ ५—१९ ॥

वहाँ सिद्धोंके आश्रमोंसे सुशोभित उस रमणीय श्रेष्ठ आश्रममें पापोंका नाश करनेवाली भगवती गङ्गा नित्य प्रवाहित रहती थीं। उन विश्वात्मा माधवने उन कल्पषरहित तपस्वियोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर उनके समीप जाकर उन्हें सविधि प्रणाम किया और स्तुतिपूर्वक उनकी पूजा की॥ १२-१३ ॥

उन शङ्ख, चक्र, गदाधारी, योगियोंके परम गुरु, जगद्योनि (श्रीकृष्ण)-को देखकर उन्होंने (तपस्वियोंने) भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और अव्यक्त, आदिदेव, महामुनि तथा उन सनातन (देव)-का हृदयमें ध्यानकर वैदिक मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे और आपसमें कहने लगे—॥ १४-१५ ॥

ये वही अद्वितीय परम साक्षात् नारायण भगवान् हैं। स्वयं पुराणपुरुष देव ही इस समय आये हुए हैं। ये ही अव्यय हैं, सृष्टि करनेवाले, संहार करनेवाले तथा पालन करनेवाले ये ही हैं। अमूर्त होते हुए भी ये मूर्तिमान् होकर मुनियोंको देखनेके लिये यहाँ आये हुए हैं। ये धाता, विधाता और सर्वव्यापी ही आ रहे हैं। ये अनादि, अक्षय, अनन्त, महाभूत और महेश्वर हैं॥ १६-१८ ॥

वाणीके अगोचर गोविन्द हरि उन (तपस्वियों)-के वचनोंको सुनते हुए शीघ्र ही उन महात्मा (उपमन्यु)-के स्थानपर गये॥ १९ ॥

उपसृष्ट्याथ भावेन तीर्थे तीर्थे स यादवः।  
चकार देवकीसूनुर्देवर्षिपितृतर्पणम्॥ २०॥

नदीनां तीरसंस्थानि स्थापितानि मुनीश्वरैः।  
लिङ्गानि पूजयामास शम्भोरमिततेजसः॥ २१॥  
दृष्टा दृष्टा समायान्तं यत्र यत्र जनार्दनम्।  
पूजयाञ्चक्रिरे पुष्यैरक्षतैस्तत्र वासिनः॥ २२॥

समीक्ष्य वासुदेवं तं शार्ङ्गशङ्कुसिधारिणम्।  
तस्थिरे निश्चलाः सर्वे शुभाङ्गं तत्रिवासिनः॥ २३॥

यानि तत्रारुक्ष्यूणां मानसानि जनार्दनम्।  
दृष्टा समाहितान्यासन् निष्क्रामन्ति पुरा हरिम्॥ २४॥  
अथावगाह्य गङ्गायां कृत्वा देवादितर्पणम्।  
आदाय पुष्यवर्याणि मुनीन्द्रस्याविशद् गृहम्॥ २५॥

दृष्टा तं योगिनां श्रेष्ठं भस्मोद्भूलितविग्रहम्।  
जटाचीरधरं शान्तं ननाम शिरसा मुनिम्॥ २६॥

आलोक्य कृष्णमायान्तं पूजयामास तत्त्ववित्।  
आसने चासयामास योगिनां प्रथमातिथिम्॥ २७॥

उवाच वचसां योनिं जानीमः परमं पदम्।  
विष्णुमव्यक्तसंस्थानं शिष्यभावेन संस्थितम्॥ २८॥

स्वागतं ते हृषीकेश सफलानि तपांसि नः।  
यत् साक्षादेव विश्वात्मा मद्गेहं विष्णुरागतः॥ २९॥

त्वां न पश्यन्ति मुनयो यतन्तोऽपि हि योगिनः।  
तादृशस्याथ भवतः किमागमनकारणम्॥ ३०॥  
श्रुत्वोपमन्योस्तद् वाक्यं भगवान् केशिमर्दनः।  
व्याजहार महायोगी वचनं प्रणिपत्य तम्॥ ३१॥

श्रीकृष्ण उवाच

भगवन् द्रष्टुमिच्छामि गिरीशं कृत्तिवाससम्।  
सम्प्राप्तो भवतः स्थानं भगवद्दर्शनोत्सुकः॥ ३२॥  
कथं स भगवानीशो दृश्यो योगविदां वरः।  
मयाचिरेण कुत्राहं द्रक्ष्यामि तमुमापत्तिम्॥ ३३॥

उन यदुवंशी देवकीपुत्र श्रीकृष्णने प्रत्येक तीर्थमें श्रद्धापूर्वक आचमनकर (मार्जनकर) देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण किया और मुनीश्वरोंके द्वारा नदियोंके किनारे स्थापित अमिततेजस्वी शंकरके लिङ्गोंकी पूजा की॥ २०-२१॥

वहाँके निवासियोंने जहाँ-जहाँ भी जनार्दनको आते हुए देखा, वहाँ-वहाँ पुष्पों तथा अक्षतोंसे उनकी पूजा की। शार्ङ्गधनुष, शङ्क तथा असि धारण करनेवाले एवं शुभ अङ्गोंवाले उन वासुदेवका दर्शनकर वहाँ रहनेवाले सभी निश्चल-से खड़े हो गये। वहाँ (योगमें) आरुढ़ होनेके इच्छुक जिन लोगोंके मन समाधिस्थ थे, वे भी जनार्दन हरिको अपने सम्मुख देखकर उनका दर्शन करनेके लिये अपनी इन्द्रियोंको बहिर्मुख कर लिये॥ २२—२४॥

इधर श्रीकृष्णने गङ्गामें अवगाहन करनेके पश्चात् देवताओं, पितरों आदिका दर्शन, तर्पण आदि कर उत्तमोत्तम पुष्प आदि लेकर श्रेष्ठ मुनि (उपमन्यु)-के गृहमें प्रवेश किया। योगियोंमें श्रेष्ठ, भस्मसे अवलिप्त शरीरवाले, जटा और चीरधारी उन शान्त मुनिको देखकर (श्रीकृष्णने) सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया॥ २५-२६॥

कृष्णको आते हुए देखकर तत्त्वज्ञ उन मुनिने योगियोंके प्रथम पूज्य उन्हें आसनपर बिठाया और उनकी पूजा की॥ २७॥

(मुनिने कहा—)हम जानते हैं कि वाणीके उत्पत्ति-स्थान, परमपदरूप, अव्यक्त शरीरवाले विष्णु शिष्यके रूपमें उपस्थित हुए हैं। हृषीकेश! आपका स्वागत है, हमारे तप सफल हुए जो साक्षात् विश्वात्मा विष्णु ही मेरे घर आये हैं। प्रयत्न करते हुए भी योगी तथा मुनिजन आपको देख नहीं पाते, ऐसे आपके यहाँ आनेका प्रयोजन क्या है? उपमन्युके उस वाक्यको सुनकर केशीका मर्दन करनेवाले महायोगी भगवान् ने उन्हें प्रणामकर कहा—॥ २८—३१॥

श्रीकृष्ण बोले— भगवन्! भगवान् शंकरके दर्शनोंके लिये उत्सुक मैं आया हूँ। कृत्तिवासा गिरीश (भगवान् शंकर)-का दर्शन करनेकी मेरी उत्कट इच्छा है। योगविदोंमें श्रेष्ठ भगवान् ईशका शीघ्र ही कैसे दर्शन कर सकता हूँ, उन उमापतिको मैं कहाँ देख पाऊँगा॥ ३२-३३॥



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with  
By  
  
Avinash/Shashi

Icreator of  
hinduism  
server



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with  
By  
  
Avinash/Shashi

Icreator of  
hinduism  
server

इत्याह भगवानुक्तो दृश्यते परमेश्वरः ।  
भक्त्या चोग्रेण तपसा तत्कुरुष्वेह यत्तः ॥ ३४ ॥

इहेश्वरं देवदेवं मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः ।  
ध्यायन्तोऽत्रासते देवं जापिनस्तापसाश्च ये ॥ ३५ ॥

इह देवः सपत्नीको भगवान् वृषभध्वजः ।  
क्रीडते विविधैर्भूतैर्योगिभिः परिवारितः ॥ ३६ ॥

इहाश्रमे पुरा रुद्रात् तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ।  
लेभे महेश्वराद् योगं वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ ३७ ॥

इहैव भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।  
दृष्ट्वा तं परमं ज्ञानं लब्धवानीश्वरेश्वरम् ॥ ३८ ॥

इहाश्रमवरे रम्ये तपस्तप्त्वा कपर्दिनः ।  
अविन्दत् पुत्रकान् रुद्रात् सुरभिर्भक्तिसंयुता ॥ ३९ ॥

इहैव देवताः पूर्वं कालाद् भीता महेश्वरम् ।  
दृष्टवन्तो हरं श्रीमन्निर्भया निर्वृतिं ययुः ॥ ४० ॥

इहाराध्य महादेवं सावर्णिस्तपतां वरः ।  
लब्धवान् परमं योगं ग्रन्थकारत्वमुत्तमम् ॥ ४१ ॥

प्रवर्तयामास शुभां कृत्वा वै संहितां द्विजः ।  
पौराणिकां सुपुण्यार्था सच्छिष्येषु द्विजातिषु ॥ ४२ ॥

इहैव संहितां दृष्ट्वा कापेयः शांशपायनः ।  
महादेवं चकारेमां पौराणीं तन्नियोगतः ।  
द्वादशैव सहस्राणि श्लोकानां पुरुषोत्तम ॥ ४३ ॥

इह प्रवर्तिता पुण्या द्व्यष्टसाहस्रिकोत्तरा ।  
वायवीयोत्तरं नाम पुराणं वेदसम्मितम् ।

इहैव ख्यापितं शिष्यैः शांशपायनभाषितम् ॥ ४४ ॥

याज्ञवल्क्यो महायोगी दृष्ट्वात् तपसा हरम् ।  
चकार तन्नियोगेन योगशास्त्रमनुत्तमम् ॥ ४५ ॥

इहैव भृगुणा पूर्वं तप्त्वा वै परमं तपः ।  
शुक्रो महेश्वरात् पुत्रो लब्धो योगविदां वरः ॥ ४६ ॥

तस्मादिहैव देवेशं तपस्तप्त्वा महेश्वरम् ।  
द्रष्टुपर्हसि विश्वेशमुग्रं भीमं कपर्दिनम् ॥ ४७ ॥

एवमुक्त्वा ददौ ज्ञानमुपमन्युर्महामुनिः ।  
व्रतं पाशुपतं योगं कृष्णायाक्लिष्टकर्मणे ॥ ४८ ॥

ऐसा कहे जानेपर भगवान् (उपमन्यु)-ने कहा—  
तीव्र भक्ति एवं तपस्याके द्वारा वे परमेश्वर देखे जा  
सकते हैं, इसलिये ऐसा ही प्रयत्न करो। ब्रह्मवादी  
मुनीन्द्र, जप करनेवाले तथा जो तपस्वी हैं वे, यहाँ उन  
देव ईश्वर देवाधिदेवका ध्यान करते हुए निवास कर रहे  
हैं। यहाँ भगवान् देव वृषभध्वज पत्नी (पार्वती)-सहित  
तथा विविध भूतों और योगियोंसे घिरे हुए सदा क्रीड़ा  
करते हैं ॥ ३४—३६ ॥

प्राचीन कालमें इस आश्रममें कठोर तप करके  
भगवान् वसिष्ठ ऋषिने महेश्वर रुद्रसे योग प्राप्त किया  
था। यहाँ प्रभु कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासने उन ईश्वरोंके  
भी ईश्वर (भगवान् शंकर)-का दर्शनकर परम ज्ञान प्राप्त  
किया था। इसी रमणीय श्रेष्ठ आश्रममें सुरभिने भक्तिपूर्वक  
तपस्या करके जटाधारी रुद्रसे पुत्रोंको प्राप्त किया था।  
पूर्वकालमें कालसे भयभीत देवताओंने यहाँपर श्रीमान्  
हर (महाकाल)-का दर्शनकर भयसे रहित होकर शान्ति  
प्राप्त की थी। तपस्वियोंमें श्रेष्ठ द्विज सावर्णिने यहाँपर महादेवकी  
आराधना करके परम योग तथा उत्तम ग्रन्थरचनाकी शक्ति  
प्राप्त की थी। तभी उन्होंने कल्याणकारिणी सुन्दर पुण्य  
प्रदान करनेवाली पुराणसंहिताका निर्माणकर सत्-शिष्यों  
और द्विजातियोंमें उसका प्रवर्तन किया ॥ ३७—४२ ॥

पुरुषोत्तम ! इसी स्थानपर कापेय शांशपायनने महादेवका  
दर्शनकर उनकी आज्ञा प्राप्त करके बाहु हजार श्लोकोंवाली  
इस (कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णुके द्वारा वर्णित)  
पुराणसंहिताका निर्माण किया। वेदसम्मत पुण्य  
वायवीयपुराणसंहिताका सोलह हजार श्लोकोंवाला उत्तरभाग  
यहाँपर प्रवर्तित हुआ। यहाँपर शांशपायनद्वारा कही गयी  
पुराणसंहिताका प्रचार उनके शिष्योंने किया ॥ ४३—४४ ॥

महायोगी याज्ञवल्क्यने यहाँपर तपस्याद्वारा शंकरका  
दर्शन करके उनकी आज्ञासे श्रेष्ठ योगशास्त्रका निर्माण  
किया था। पूर्वकालमें भृगुने यहाँ परम तप करके  
महेश्वरसे योगज्ञोंमें श्रेष्ठ शुक्र नामक पुत्रको प्राप्त किया  
था। इसलिये यहाँपर तपस्या करके देवताओंके ईश,  
महेश्वर विश्वेश, उग्र, भीम कपर्दिका आप दर्शन करें।  
ऐसा कहकर महामुनि उपमन्युने सुन्दर कर्म करनेवाले  
कृष्णको पाशुपत-योग, पाशुपत-व्रत और पाशुपत-ज्ञान  
प्रदान किया ॥ ४५—४८ ॥